पाप का प्रतिकार

प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका मेरी कारेली के लोक-प्रिय

उपन्यास 'वेंडेट्टा' का हिंदी-रूपांतर

रूपांतरकार—

प्रो० बैजनाथ कोटी

('योगी'-संपादक)

मिलने का पता—

भारती (भाषा)-भवन

दिल्ली

१९५४] प्रथमावृत्ति [मूल्य ४।)

प्रकाशिका—
श्रीमती सावित्री दुलारेलाल एम्० ए०
अध्यक्षा भारती (भाषा)-भवन
३८१०, चर्खेवालाँ, दिल्ली

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१—गंगा-पुस्तकमाला, ३६, गौतम बुद्ध-मार्ग, लखनऊ
२—राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, पटना
३—सुधा-प्रकाशन, लखनऊ
४—लाहौर बुक-शॉप, लुधियाना
५—इंडियन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

इनके अतिरिक्त भारत के सभी प्रधान बुकसेलरों के यहाँ हमारी सभी पुस्तकें मिलती हैं। जहाँ न मिलें, हमें लिखें। हम वहाँ भी उपलब्ध कराएँगे।

मुद्रक—
गणेशचंद्र गुप्त
शिक्षकबंधु-प्रेस, अलीगढ़

दो शब्द

अँगरेज़ी-साहित्य में श्रीमती मेरी कॉरेली का स्थान बहुत ही ऊँचा है। आपने बीसों उपन्यास लिखे हैं, और उनमें एक भी ऐसा नहीं है, जिसकी कम-से-कम एक लाख प्रतियाँ न खप चुकी हों। आपके बहुतेरे उपन्यासों के पचपन-छप्पन संस्करण केवल इँगलैंड ही में प्रकाशित हो चुके हैं, और अब तक नए संस्करण धड़ाधड़ प्रकाशित होते ही जा रहे हैं। आपके उपन्यास बड़े चाव से पढ़े जाते हैं। विद्वानों का मत है कि उपन्यासों के लिखने में जैसी सफलता कॉरेली महोदया को हुई है, वैसी कदाचित् ही किसी भाग्यवान् लेखक को प्राप्त हो। योरप की प्रायः सभी भाषाओं में कॉरेली महोदया के उपन्यास अनुवादित होकर प्रकाशित हो चुके हैं। आपके उपन्यासों के आधार पर नाटककारों ने नाटक लिखे हैं, और वे योरपीय रंगभूमि पर बड़े सफल हुए हैं। आपके उपन्यासों के आधार पर फ़िल्मकारों ने लाखों रुपए खर्च करके फ़िल्में तैयार की हैं, और वे सारे योरप में धड़ाधड़ दिखाई जा रही हैं। वास्तव में श्रीमती कॉरेली ने साहित्य-संसार में एक हलचल मचा दी है, और अपने लिये साहित्यकारों की उच्चतम श्रेणी में अत्यंत ही महत्व-पूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है।

आश्चर्य है कि अब तक हिंदी-लेखकों का ध्यान कॉरेली महोदया की चामत्कारिक कृतियों पर नहीं पड़ा। प्रस्तुत पुस्तक का लेखक हिंदी-भाषा के ऐसे-ऐसे कतिपय विद्वान् एवं प्रभावशाली लेखकों से परिचित है, जिन्होंने कॉरेली महोदया के उपन्यास बड़े चाव से पढ़े हैं, और उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। परंतु उन्होंने श्रीमतीजी के उपन्यासों से हिंदी-भाषा-भाषियों को, न-जाने, क्यों वंचित रक्खा। इसका कारण, मेरी समझ में तो, यही हो सकता है कि कॉरेली महोदया के उपन्यासों में अधिकांश उपन्यास अँगरेज़ी-भाषा के साथ-ही-साथ किसी अन्य योरपीय भाषा का भी यथेष्ट सम्मिश्रण रखते हैं, जिसके कारण केवल अँगरेज़ी भाषा जाननेवालों को उनका अनुवाद करना असाध्य नहीं, तो दुस्साध्य अवश्य ही है। फिर, एक बात और भी है, और वह यह कि हमारे देश में अभी साहित्य की वैसी उन्नति नहीं होने पाई है, जैसी पाश्चात्य देशों में है। यहाँ तो प्रायः 'सभी धान बाइस पंसेरी' की तुलती है। अस्तु, जिन्हें इस लेखन-कला से ही जीवन-निर्वाह करना है, उन्हें यह विशेष सुविधाप्रद एवं लाभदायक है कि वे हिंदी की भगिनी भाषाओं से ही अनुवाद करके थोड़े समय में ही अधिक द्रव्योपार्जन कर लें। यही कारण है कि आज हिंदी में बंगभाषा के अनुवादों की भरमार दीख रही है, और सुदूरवर्ती भाषाओं से अनुवाद किए हुए ग्रंथ बहुत ही कम दृष्टिगोचर होते हैं। हमारा और बंगवासियों का धर्म एक है, रीति-भाँति भी एक ही-सी है, और जीवन का आदर्श भी एक ही है। फिर हिंदी तथा बंगाली एक ही माता की दो पुत्री हैं। अस्तु, केवल विभक्तियाँ आदि बदल देने से ही एक अच्छा-खासा अनुवाद तैयार हो जाता है। यह कार्य विशेष कष्ट-साध्य भी नहीं

है। तिस पर भी लेखकों को वही रक़म मिल जाती है, जो वे अन्य गुरुतर एवं कष्ट-साध्य अनुवादों द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। फिर ऐसी दशा में व्यावसायिक हानि कोई क्यों सहन करे ? पुस्तक-प्रकाशकों से मेरी यही प्रार्थना है कि वे इस ओर ध्यान दें, और 'सभी धान बाइस पंसेरी' की न माँगा करें।

कॉरेली महोदया के सभी उपन्यास बड़े श्रेष्ठ हैं, परंतु उनमें 'वेंडेट्टा'-नामक उपन्यास एक विशेष स्थान रखता है। प्रस्तुत पुस्तक इसी 'वेंडेट्टा' के आधार पर लिखी गई है। पाठकों को आश्चर्य होगा कि 'वेंडेट्टा' एक सत्य घटना के आधार पर लिखी गई है। ईसवी सन् १८८४ में योरप के अंतर्गत इटली प्रदेश के प्रख्यात नगर नेपल्स में महामारी (हैज़ा की बीमारी) पड़ी थी। उसी समय एक विचित्र घटना घटी, जिसका रेखाचित्र 'वेंडेट्टा' में श्रीमती कॉरेली ने ऐसी योग्यता-पूर्वक अंकित किया है। उस समय का समाचार-साहित्य इस घटना का साक्षी है। अस्तु, ऐतिहासिक दृष्टि से 'वेंडेट्टा' का स्थान उपन्यास-संसार में और भी अधिक उच्च हो गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक की इच्छा 'वेंडेट्टा' के अनुवाद करने की थी, न कि केवल विद्यार्थियों की भाँति उसका निरा भावांतर करने की। अस्तु, यह आवश्यक हो गया कि हिंदी-भाषा-भाषियों की रुचि के अनुसार देश-भेष, रीति-भाँति तथा पात्रादि को भारतीय आवरण में पाठकों के समक्ष उपस्थित किया जाय; क्योंकि योरपीय सभ्यता तथा नामादि हिंदी-भाषा-भाषियों के लिये असुविधाजनक हो जाते। परंतु साथ ही, ऐसे परिवर्तन से, उपन्यासांतर्गत घटना के ऐतिहासिक महत्त्व को क्षति

पहुँचने की संभावना थी। इस कारण 'एक ही गुल्ले से दो शिकार'-वाली कहावत के अनुसार प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है। अनुवाद सार्थक करने के लिये देश-भेष, रीति-भाँति और पात्रों के नामादि बदल दिए गए हैं, और साथ ही मौलिक तथा परिवर्तित पात्र-सूची एवं स्थान-सूची आदि लगा दी गई है, जिससे घटना के ऐतिहासिक महत्त्व की रक्षा बनी रहे, और साथ ही ऐसे पाठकों को विशेष सुविधा रहे, जो मूल तथा अनुवाद, दोनो ही का रसास्वादन करना चाहते हों। आशा है, प्रिय पाठकों को यह क्रम पसंद आवेगा, और प्रस्तुत लेखक का यह प्रयत्न सार्थक होगा।

अंत में मुझे यह अपना कर्तव्य प्रतीत होता है कि मैं परम कृपालु श्रीपंडित दुलारेलाल भार्गव महोदय को हृदय से धन्यवाद दूँ, जिनकी असीम कृपा से हिंदी-भाषा-भाषियों को यह अवसर प्राप्त हुआ है कि वे श्रीमती कॉरेली की लेखनी से परिचय प्राप्त कर रहे हैं।

इसके लिये मैं भार्गवजी का अत्यंत ही कृतज्ञ हूँ।

कृपेच्छु—
बैजनाथ कोटी
('योगी'-संपादक)

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र

मूल-पुस्तक में पात्रों के नाम और व्याख्या	प्रस्तुत पुस्तक में उनके परिवर्तित नाम और व्याख्या
काउंट फ़ैबियो रोमानी (इटली के मुख्य नगर नेपल्स का एक धनी-मानी सज्जन)	शहादतअलीख़ाँ (दिल्ली-नगर का विख्यात रईस)
ल्यूडो फ़ेरारी (एक साधारण चित्रकार, काउंट फ़ैबियो रोमानी का सहपाठी मित्र)	अमीरुद्दीन (एक साधारण चित्रकार, शहादतअलीख़ाँ का सहपाठी मित्र)
गिया कोमो (काउंट फ़ैबियो रोमानी का वृद्ध ख़ानसामाँ)	ज़फ़र (शहादतअलीख़ाँ का वृद्ध ख़ानसामाँ)
फ़्रा साइप्रिआनो ऑफ़ दी बेनीडिक्टाइंस (एक परोपकारी महंत)	फ़क़ीर पीरमुहम्मद (एक परोपकारी फ़क़ीर)
पीट्रो (फ़्रा साइप्रिआनो का एक शिष्य)	हकीम (फ़क़ीर पीरमुहम्मद का एक शिष्य)
कारमेलो नेरी (सिसली प्रदेश का एक डाकू)	अब्दुलग़फ़ूर उर्फ़ शैतानजंग (उत्तरी भारत का एक भयंकर दस्यु)
ऐंड्रिया लुज़ियानी (व्यापारी नौका 'लारा' का कप्तान)	टंडैल (एक नौकापति)

काउंट सिज़ारे ओलिवा (वेशांतर करने के उपरांत काउंट फ़ैबियो रोमानी का कल्पित नाम)	नवाब पीरबख़्श (वेशांतर करने के उपरांत शहादतअलीख़ाँ का कल्पित नाम)
विंसेंज़ो फ्लैमा (काउंट सिज़ारे ओलिवा का विश्वासपात्र नौकर)	ग़फ़ूर (नवाब पीरबख़्श का विश्वासपात्र नौकर)

स्त्री-पात्र

मूल-पुस्तक में पात्रों के नाम और व्याख्या	प्रस्तुत पुस्तक में उनके परिवर्तित नाम और व्याख्या
नीना (काउंट फ़ैबियो रोमानी की पत्नी)	दिलारा (शहादतअलीख़ाँ की पत्नी)
स्टेला (काउंट फ़ैबियो रोमानी तथा नीना की इकलौती बेटी)	मरीना (दिलारा के गर्भ से शहादतअलीख़ाँ की इकलौती पुत्री)
असंता (स्टेला की आया)	बुड्ढी दाई (मरीना को खेलाने-वाली बुढ़िया)
टरेसा (कारमेलो नेरी की पत्नी)	रोशनआरा (दस्युराज शैतान-जंग की पत्नी)

अन्य पात्र

वाइविस (काउंट फ़ैबियो रोमानी का प्यारा कुत्ता)	बाघा (शहादतअलीख़ाँ का नमकहलाल कुत्ता)

अतिरिक्त

इष्टमित्र, नौकर-चाकर, सखी-सहेली, दास-दासी इत्यादि-इत्यादि ।

स्थान-सूची

मौलिक—नेपल्स, फ्लोरेंस, पलेरमो, रोम, अननज़िएटा।

परिवर्तित (क्रम से)—दिल्ली, फ़तेहपुर सीकरी, मुर्शिदाबाद, लखनऊ, अजमेर।

पाप का प्रतिकार

पहला प्रकरण

बालिका का अपराध

मैं अपने जीवन के शेष दिवस मक्का-जैसे पवित्र स्थान में व्यतीत कर रहा था। मक्का में मेरा किसी के साथ विशेष परिचय न था। कारण, मुझे वहाँ गए हुए अधिक दिन न हुए थे। मक्का में मैं बड़ी सादगी से फ़क़ीरी वेष में रहता था। मेरे रोब और फ़क़ीर के जैसे वेष का मिश्रण देखकर बहुतों को बड़ा आश्चर्य होता था, और कितने ही तो बड़ी जिज्ञासा से कितने ही प्रश्न पूछते; किंतु मैंने अपना भेद खोलने के लिये मानों होंठ ही सी रक्खे थे। धीरे-धीरे वहाँ के कितने ही फ़क़ीरों के साथ मेरा परिचय बढ़ता गया, और इनमें से चार फ़क़ीरों के साथ तो मेरी इतनी गहरी मित्रता हो गई कि मेरे और उनके बीच कोई 'मेरा-तेरा' न रह गया था। वैसे तो "मिल गया तो मीर, नहीं तो फ़क़ीर" वाली कहावत के अनुसार यहाँ बहुतेरे फ़क़ीर थे; परंतु हम पाँचो फ़क़ीरों के जीवन में कुछ-न-कुछ अद्भुत रहस्य होने के कारण, हममें से प्रत्येक को एक-दूसरे की आत्मकथा सुनने की सहज ही अधिक उत्कंठा हुई, और इसीलिये जब वे चारो फ़क़ीर अपनी-अपनी राम-कहानी सुना चुके, तो मुझे भी आप-बीती सुनानी पड़ी। निश्चय तो मेरा ऐसा ही था कि मैं अपना इतिहास किसी पर भी प्रकट न करूँगा; किंतु जब इन चारो मित्रों ने विशेष आग्रह किया, और मुझे उसके

छिपाए रखने का कोई उपाय न देख पड़ा, तो फिर मैंने भी उनसे अपनी आत्मकथा कहना आरंभ किया—

मित्रो ! मैं आपसे प्रथम ही कहे देता हूँ कि मैं मृत मनुष्य हूँ। आप यह न समझें कि मेरे जीवन का अब कोई मूल्य नहीं रहा, इसलिये मैं अपने को मृत कहता हूँ; परंतु नहीं, मैं सचमुच ही मृत हूँ। ये शब्द सुनकर आपको बड़ा आश्चर्य होता होगा। आप समझते होंगे, मैं झूठ बोल रहा हूँ; अथवा कदाचित् आप कोई अन्य शंका करके मुझे उन्मत्त समझते होंगे। परंतु मैं जो कहता हूँ, उस पर विश्वास रक्खो। मैं शपथ-पूर्वक कहता हूँ कि मैं मृत मनुष्य हूँ। किंतु ठहरो, देखो, डरो नहीं; विश्वास रक्खो, मैं भूत-प्रेत नहीं हूँ। फिर भी, आप लोगों को मेरी बात झूठ प्रतीत होती हो, तो हिंदुस्थान के प्रसिद्ध शहर दिल्ली में जाकर पूछो कि शहादतअलीख़ाँ कहाँ है? वहाँ के लोग निःशंक मन से आप लोगों को मेरे कुटुंब के एक अलग क़ब्रस्तान में ले जायँगे, और कुशल कारीगरों द्वारा बनाई हुई एक क़ब्र की ओर उँगली उठाकर कहेंगे कि यह है शहादतअलीख़ाँ की क़ब्र। मेरी मृत्यु का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण आपको चाहिए?

मैं मर चुका हूँ, इस बात की साक्षी देने के लिये जिस प्रकार सारा दिल्ली शहर तैयार है, उसी प्रकार मैं अब तक जीवित हूँ, इस बात के साक्षी-स्वरूप आपके सम्मुख बैठा हुआ व्यक्ति स्वयं शहादतअलीख़ाँ तैयार है। मैं हँसता हूँ, बोलता हूँ, खाता हूँ, पीता हूँ; फिर मैं नहीं समझता कि आप लोगों को मेरे जीवित होने के विषय में कोई भी शंका होगी। मेरी मृत्यु हो चुकी है—ऐसा जो सर्व-साधारण का विश्वास है, सो स्थिर रहे, यही मुझे श्रेयस्कर प्रतीत होता है, और मुझे विश्वास है कि आप लोग भी इस लोक-भ्रम को स्थिर रक्खेंगे। भले ही लोगों की समझ में शहादतअलीख़ाँ क़ब्रस्तान में सोता हो; पर मैं जीवित हूँ। लोग चाहे जितने विश्वास के साथ मानते हों कि मैं मर गया हूँ, किंतु मेरी प्रत्येक नाड़ी में अब भी उष्ण रक्त प्रवाहित हो रहा है, और मेरी

प्रत्येक इंद्रिय अपना कार्य उत्तम रीति से कर रही है। मैं सारे संसार को देख रहा हूँ, परंतु संसार मुझे नहीं देख रहा है। बेचारे बहुतेरे लोग मेरी मृत्यु के अंध-विश्वास के कारण मेरा विरह सहन कर रहे हैं। लोगों में फैला हुआ यह मृत्यु-भ्रम ज्यों-का-त्यों विद्यमान है, तो भी मैं स्वयं इस भ्रम में नहीं फँसता, नहीं तो कदाचित् स्वयं मुझे भी कभी शंका होती कि कहीं मैं भूत तो नहीं हूँ ? इस समय मेरी आयु तीस-बत्तीस वर्ष की है, ऐसी भरी-जवानी में मनचाहे भोग-विलास और सुख भोगने के लिये मुझे संपूर्ण अनुकूलता है; किंतु, फिर भी, मुझे तो मेरा यह मृत्यु-संवाद ही विशेष भला लगता है। मैं इस लोक-भ्रम के क़ब्रस्तान में से बाहर निकलने की कभी भी इच्छा नहीं करता। मेरा मन, बुद्धि इत्यादि सब जाग्रत् हैं, देह चैतन्य-युक्त है, और सब इंद्रियाँ भी स्वव्यापार में लिप्त हैं; फिर भी, ऐसी अवस्था में, यदि लोग मुझे मृतक गिनें, तो मैं किसलिये खेद मानूँ ? लोग मुझे जो समझें, मैं उसी में संतोष मानता हूँ।

परंतु आप यह न समझिए कि मृत्यु ने मुझे अपना चमत्कार नहीं दिखाया। अरे, मृत्यु का तो अवतार ही इसीलिये हुआ है। जीवित प्राणी के जीवन पर झपाटा मारना ही तो मृत्यु का धंधा है। जिस प्रकार घोड़े की लगाम सवार के हाथ में होती है, उसी प्रकार जीवन की बागडोर मृत्यु के हाथ में है। अस्तु, यदि मृत्यु ने मेरे जीवन पर झपाटा मारा, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? किंतु जिस प्रकार लक्ष्य चूक जाने पर या हाथ बहक जाने पर, शिकारी की गोली शिकार के शरीर को छूती हुई चली जाती है, परंतु शिकार का अंग छिन्न-भिन्न नहीं करती, उसी प्रकार मेरे जीवन पर मृत्यु का वह आक्रमण विफल हुआ; किंतु हाँ, थोड़े समय के लिये मैं संज्ञा-हीन अवश्य हो गया था, और यही मेरी तात्कालिक मृत्यु थी। इस रीति से पुनर्जन्म-प्राप्त व्यक्ति को प्रथम का ही संसार दृष्टि-गोचर होता है; परंतु मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों मैं नए संसार में पुनः जीवित हुआ हूँ। मुझे स्वयं ऐसी कल्पना ही न थी

कि इतने थोड़े-से समय में दुनिया का रंग मेरी दृष्टि में इस तरह से बदल जायगा। दुनिया का वह विचित्र दृश्य देखकर सहज ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों मैं पुनर्जन्म के साथ ही नई दुनिया में आया हूँ। यह नई दुनिया मेरे लिये सुखदायक नहीं, किंतु दुःखदायक हो पड़ी; और इसीलिये मैं अपने पूर्वाश्रम को छोड़ इस पवित्र एवं रमणीय मक्का में आकर रहा हूँ। अब जो बात मैं आपसे कहने को हूँ, वह यही कि दिल्ली-शहर के सभी मनुष्य मानते हैं कि मैं मर गया हूँ, फिर भी मैं जीवित किस प्रकार हूँ! यह बात सत्य है कि अपनी आत्मकथा कहने से मेरे जीवन और मृत्यु के रहस्य खुल जायँगे; परंतु मेरी धारणा है कि आप-जैसे सुहृद् मित्रों के सामने हृदय खोलकर अपनी पूर्ण कहानी सुना देने से मेरा दुःख हलका हो जायगा। आपको अपनी आत्मकथा सुनाना मानों आपके समक्ष अपना अंतःकरण खोलकर रख देना है। आप समझेंगे, यह कौन-सी बड़ी बात है? यद्यपि अपना अपमान, अपना दुःख और अपना हृदय-शल्य, ये सब दूसरों के समक्ष खोलना मानों अपने अंतःकरण को लज्जा की छुरी से चीरकर खोल देना है, तो भी मैं आपको अपनी आत्मकथा खुले दिल से सुनाता हूँ। ऐसा करने से मेरी ढकी हुई मुट्ठी खुल जायगी; परंतु उससे संसार का उपकार अवश्य ही होगा। 'प्रेम—स्वर्गीय प्रेम'—कह-कहकर प्रेम के गीत गानेवाला एकाध प्रेमांध, सभ्यता—स्वर्गीय सभ्यता—की दुहाई देकर चौपट्ट मिटानेवाला एकाध सज्जन और 'विश्वास! स्वर्गीय विश्वास!' की रागिनी अलापते हुए गहरे गड्ढे में गिराकर मारनेवाला एकाध मोहांध, मेरी इस आत्मकथा को सुनकर यदि प्रेम का आलिंगन त्याग देगा, सभ्यता से दूर रहेगा, और यदि विश्वास पर इतना अधिक विश्वास न रक्खेगा, तो मैं समझूँगा कि आपसे मेरा आत्मकथा कहना सार्थक हुआ। मेरे हृदय के अंतर्भाग में जो शल्य पैठा है, और जिसके कारण मेरे हृदय से रक्त-धारा सदा बहा करती है, उसे देखकर यदि संसार का एक व्यक्ति भी शिक्षा ग्रहण करेगा, तो भी मैं संतोष मानूँगा।

मेरा कुटुंब पहले से ही श्रीमान् था, और मेरे पिताजी तो लक्षाधीश थे। परंपरा से मेरा कुटुंब बादशाही कुटुंब के साथ साहूकारी करता आ रहा है। आजकल दिल्ली के राज्य-सिंहासन पर बादशाह औरंगज़ेब हैं, उन पर मेरा लाखों रुपयों का ऋण है। बस, केवल इतनी ही बात से आप लोग मेरी स्थिति की कल्पना कर सकते हैं। अथाह संपत्ति, सेवा के लिये सैकड़ों दास-दासियाँ, और फिर अपने माता-पिता का मैं एकलौता पुत्र, ऐसी स्थिति होने के कारण मेरी बाल्यावस्था अत्यंत ही सुख-चैन में बीती। मैं अपना परंपरागत धंधा भली भाँति कर सकूँ, और मैं ज्ञानी तथा चतुर बनूँ, इसी सदिच्छा से मेरे पिताजी ने मेरे लिये एक अच्छे शिक्षक की नियुक्ति की थी। इस शिक्षक के पास मेरे-जैसे अन्य कितने ही लड़के पढ़ने आते थे। इनमें अमीरुद्दीन नाम के एक लड़के से मेरा बड़ा स्नेह हो गया, और यह मित्रता यहाँ तक बढ़ी कि मेरे और उसके बीच कोई भी भेद-भाव न रहा। अमीरुद्दीन के माता-पिता उसकी बाल्यावस्था में ही परलोक सिधार गए थे, और कोई दूर का नातेदार उसके पढ़ाने-लिखाने में ख़र्च करता था। छुटपन से ही अमीरुद्दीन को चित्रकला में विशेष अनुराग था, और यही चित्रकला हमारी गाढ़ी मित्रता का आधार थी। मुझे भी चित्रकला से थोड़ा-बहुत अनुराग था; किंतु आगे चलकर मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि इस कला में मुझे विशेष यश-प्राप्ति न होगी, इसलिये फिर मैं उसके सीखने के झंझट में नहीं पड़ा। अमीरुद्दीन इस कला में दिनोंदिन उन्नति करता गया, और अपनी वय के सोलहवें-सत्रहवें वर्ष में वह दिल्ली में एक कुशल चित्रकार समझा जाने लगा। मेरी और अमीरुद्दीन की मित्रता होने के बाद मैंने उसे चित्रकला सीखने के लिये रुपए-पैसे से अच्छी सहायता दी थी। मेरा बाईसवाँ वर्ष चल रहा था कि पिताजी का स्वर्गवास हो गया; तेईसवें वर्ष माताजी ने भी इस संसार से कूच कर दिया। इसलिये तरुणावस्था में ही मैं अपनी अथाह संपत्ति का मालिक बन गया। ऐसे समय में सहपाठियों, संगी-साथियों और भोग-विलास आदि की कोई

कमी नहीं रहती है, यह अनुभव की बात है; परंतु मैं तो पहले ही से निर्व्यसनी था। मेरा रहन-सहन भले प्रकार का था, इसलिये लोगों ने मुझे 'अरसिक' ठहराकर मेरे पीछे लगना छोड़ दिया था।

केवल अमीरुद्दीन का और मेरा स्नेह चामत्कारिक रीति से बढ़ता ही गया। अमीरुद्दीन भी मेरी ही तरह निर्व्यसनी था। उसके भी मा-बाप न थे, और न मेरे ही। ऐसे ही अनेकों कारणों से उसका और मेरा पारस्परिक स्नेह बढ़ता ही गया। हम दोनो में अंतर केवल इतना ही था कि वह दरिद्र था, और मैं श्रीमान्; परंतु मेरे साथ उसका स्नेह इस दृष्टि से न था कि मैं धनी हूँ, वरन् वह मुझसे सच्चे मित्र की नाई स्नेह करता था। मुझे धनी समझकर वह कभी मुझसे मुरव्वत न करता था, और उसका यही बर्ताव मुझे विशेष भला लगता था। अमीरुद्दीन अपने धंधे से कमाई भी अच्छी कर लेता था। मुझे इसके लिये किसी दिन भी खेद नहीं हुआ कि मेरे कोई सगे-संबंधी नहीं हैं। कारण, अमीरुद्दीन ने यह सभी अभाव दूर कर रक्खे थे। अमीरुद्दीन मेरे साथ ही रहता था, इसलिये सुख-चैन में समय व्यतीत होता था। यदि कभी मैं अकेला ही रह जाता, तो भी मेरा जी न घबराता था; क्योंकि व्यवहार और सृष्टि-सौंदर्य, ये दोनो ही मुझे आलस्य में समय न बिताने देते थे। कदाचित् किसी समय जी न लगता, तो यमुना-किनारे चला जाता और घंटों वहीं बैठा हुआ सृष्टि का सौंदर्य देखा करता; परंतु किसी के साथ व्यर्थ की गप-शप लड़ाने और समय को व्यर्थ गँवाने का प्रयत्न न करता था। ऐसे एकांत बर्ताव के कारण मेरी प्रत्यक्ष जान-पहचान बहुत ही थोड़े लोगों से है। सारा दिल्ली-शहर मेरे कुटुंब को पहचानता था; किंतु अब तो मैं समझता हूँ, दिल्ली-शहर में मुझे पहचाननेवाले दस ही पाँच मनुष्य निकलेंगे।

चौबीस-पच्चीस वर्ष की पूर्ण युवावस्था, उत्कृष्ट सौंदर्य, उत्तम शरीर-संपत्ति और भरपूर द्रव्य—ये सभी मुझमें थे, इसी कारण बड़े-बड़े सरदारों की लड़कियाँ मेरे साथ विवाह करने का उद्योग किया

करती थीं। चाहे कोई कारण हो, इन सांसारिक सुखों के संबंध में मैं बहुत ही उदासीन था, और इसी कारण अपने विवाह के लिये मैं कभी भी उत्सुक नहीं हुआ। यदि कोई मेरे विवाह की बात छेड़ता, तो मैं उस ओर दुर्लक्ष्य करके मौन धारण कर लिया करता। मेरे पिता के समय के बहुतेरे नौकरों में दो-चार नौकर वृद्ध थे, और उनका दर्जा ऊँचा था। विवाह न करने का मेरा विचार सुनकर उन्हें बहुत बुरा लगा, और वे मेरे ऊपर क्रुद्ध भी हुए। अमीरुद्दीन तो मेरा मित्र ही था, उसे भी मेरे विवाह न करने के विचार पर बड़ा आश्चर्य हुआ, वह मेरा मन फेरने के लिये अनेक रीति से प्रयत्न करने लगा। "सुंदर स्त्री को देखकर जिस हृदय में प्रेम नहीं उत्पन्न होता, वह हृदय नहीं, किंतु मरुभूमि है", "रमणी के नेत्र-कटाक्ष से जो मोहित नहीं होता, वह अरसिक है", "सुंदरी के हास्य से जिसका अंतःकरण चलायमान नहीं होता, वह निरा चेतन-शून्य है", "ऐसा नीरस हृदय तो अंधकारमय पत्थर की गुफा के सदृश है"—ऐसी-ही-ऐसी अनेकानेक बातें अमीरुद्दीन कह-कहकर मुझे विवाह के लिये उत्तेजना देने लगा। परंतु मुझे तो यह सब कवि-कल्पना प्रतीत होता था। मैं जानता तो था ही कि जब कवियों की प्रतिभा उदय होती है, तो वह इसी प्रकार बक जाते हैं, और जब विषय ही प्रेम का होता है, तब तो उनकी ज़बान पर दूना रंग चढ़ जाता है। मैंने कोई ऐसी प्रतिज्ञा न की थी कि मैं विवाह करूँगा ही नहीं; परंतु हाँ, इतना तो मैं निश्चय कर ही चुका था कि जब तक कुछ वर्ष इस दुनिया का भली भाँति निरीक्षण न कर लूँगा, तब तक मैं विवाह के झंझट में न पड़ूँगा। और, यदि सचमुच मैंने अपने इस निश्चय का पालन किया होता और दुनिया का भले प्रकार से निरीक्षण करने के बाद विवाह की खटपट में पड़ा होता, तो मेरे जीवन की यह गति न होती। आप कदाचित् कहेंगे कि ऐसे तो बहुतेरों के विवाह संसार-निरीक्षण करने के पहले ही हो जाते हैं, तो फिर उनके जीवन की दुर्दशा क्यों नहीं होती? इस प्रश्न का उत्तर 'उनके बड़े भाग्य', सिवा इसके और कुछ नहीं हो

सकता। साधारण लोगों के हृदय में कवियों की नाईं प्रेम की सुंदर कल्पनाएँ नहीं उठतीं, लैला-मजनू के जैसे प्रेम के सुंदर वर्णन उनके कानों में प्रवेश नहीं करते, प्रेम के नयन-मनोहर चित्रपट उनके नेत्रों में नहीं दिखाते, इसीलिये वे सुखी और संसार-व्यवहार एवं हरि-भजन में मग्न रहते हैं। परंतु वे, जो 'प्रेम-प्रेम' करते हुए, उसी प्रेम की स्वर्गीय कल्पनाओं की तरंगों के साथ तान भरते रहते हैं, अंत में स्वर्ग छोड़ नरक के ही दर्वाज़े के दर्शन करते हैं। कितनों ही का कथन है कि 'प्रेम तो ईश्वरीय उपहार है।' वे भले ही ऐसा कहें, मैं तो यही समझता हूँ कि नरकपुरी से कोई चोर इस विष के पौदे को चुरा लाया और उसे इस पृथ्वीलोक में लगा दिया है। जो हो, इतना तो सत्य ही है कि इस विषय में मैं बहुत ही विलंब से सावधान हुआ। इस प्रेम की कल्पना के कारण ही मेरे अंतःकरण में ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई थी कि विवाह करूँगा, तो किसी अत्यंत सुंदर स्त्री के साथ। और, इसीलिये मैं अपना विवाह करने की किसी को अनुमति न देता था।

बाहर-गाँव के एक सरदार की ओर से कितने ही चित्रों के बनाने के लिये अमीरुद्दीन का बुलावा आया था, और वह वहाँ गया भी था। मैं जानता था कि अमीरुद्दीन को दो-तीन महीने वहीं रहना पड़ेगा, इसलिये मैंने भी मन-बहलाव के लिये वहीं बाहर-गाँव जाने का निश्चय किया। यह भी जानता था कि फ़तेहपुर-सीकरी में बादशाही कुटुंब का एक बहुत बड़ा एवं अति रमणीय बाग़ है, और फ़तेहपुर-सीकरी के आसपास भी कितने ही स्थान देखने योग्य हैं। अस्तु, मैं बादशाही दरबार में गया, वहाँ उस बाग़ के मुख्य अधिकारी से मिलकर कुछ दिन वहाँ रहने के लिये परवाना ले आया, और दो-चार नौकरों को साथ लेकर फ़तेहपुर-सीकरी में जा रहा। फ़तेहपुर-सीकरी में नैसर्गिक रमणीयपन है। फ़तेहपुर-सीकरी को शहंशाह अकबर ने बनवाया था, और उन्हीं ने वहाँ यह अनुपम बाग़ लगवाया था। बादशाह सलामत के बाद भी इस बाग़ में सुधार किए गए थे, इसीलिये यह बाग़ सदा प्रेक्षणीय बना रहा। मैं इस बाग़ में

बादशाह के अतिथि की नाईं मान-सम्मान से रहता था। यह बड़ा ही विशाल है, और उसमें बड़ी दूर-दूर से लाए हुए फल-फूल के वृक्ष लगे हैं। बाग़ की सुंदरता बढ़ाने के लिये उसमें जगह-जगह नाना प्रकार के फ़व्वारे लगाए गए हैं, चित्र-विचित्र कुंजें और एक-से-एक सुंदर लता-मंडप सजाए गए हैं। इस बाग़ में एक सुंदर सरोवर भी बना है। यहीं रह-कर मैं अपने दिन बड़े आनंद से बिताने लगा। प्रतिदिन प्रातःकाल घोड़े पर बैठकर दूर तक सैर करने के लिये निकल जाया करता और शेष दिन बाग़ में ही नाना प्रकार की सुख-सामग्रियों के बीच में व्यतीत करता था। संध्या-समय अन्य कितने ही लोग बाग़ देखने के लिये वहाँ आया करते थे। इनमें कितने ही लोग मुझसे अपनी जान-पहचान कर लेने का प्रयत्न भी करते थे, परंतु जब उन्होंने जाना कि मैं 'अरसिक' हूँ, तो फिर उसके बाद वे मेरे साथ बात तक करने का उद्योग न करते थे। एक दिन दोप-हर को, तीन-चार बजे के समय, घर में जी ऊब उठने के कारण मैं बाग़ में चला गया, और ठंडी छाया में इधर-उधर घूमने लगा। इस समय बाग़ में कोई भी न था—निरा एकांत था। दूर पर एक लता-मंडप था, उसी में जाकर मैं बैठ गया, और अपने सामने ही चलते हुए एक फ़व्वारे की बहार देखने लगा। ठंडी हवा चल रही थी। अचानक किसी के अलापने का शब्द मेरे कान में पड़ा। चित्रकला की भाँति संगीत का भी मुझे बड़ा अनुराग है, एक अच्छे गवैए से मैंने थोड़ा-बहुत गाना-बजाना भी सीखा है। यह अलाप सचमुच ही मेरे कानों को बड़ी मधुर प्रतीत हुई। मैं उठ पड़ा, और जिस ओर से अलापने का शब्द आ रहा था, उसी ओर को सीधा चल पड़ा। एक सुंदर लता-मंडप में एक अठारह-बीस वर्ष की अत्यंत लावण्यमयी युवती बैठी हुई गाने में तल्लीन हो रही थी। आसपास कोई था नहीं, और न उस समय कोई बाग़ में आने ही वाला था, यही समझकर वह स्त्री मुँह पर से बुरक़ा हटाए हुए बैठी थी। उस लता-मंडप में एक बैठक पर वह स्त्री सरल आसन से बैठी थी, इसलिये वह अनुपम सुंदरी प्रतीत होती थी। इससे पहले मैंने अनेक

सुंदर स्त्रियाँ देखी थीं, किंतु मेरा मन इस प्रकार पहले कभी भी चंचल न हुआ था। केवल आज ही मुझे पहलेपहल अपने मन की इस नई स्थिति का अनुभव हुआ। इतने दिन तक मुझे यही प्रतीत होता था कि कवियों की कल्पना तो एक प्रकार की स्वप्न-सृष्टि है; परंतु उस कल्पना की सत्यता का अनुभव मुझे आज हुआ। रमणी के नेत्र अपने नेत्रों के सदृश नहीं होते; उसके नेत्रों में सचमुच ही बाण-जैसी शक्ति होती है, और ये नयन-बाण पुरुषों के हृदय को विद्ध कर डालते हैं। रमणी का हास्य भी हमारे-आपके हास्य के सदृश नहीं होता, परंतु रमणी-हास्य वस्तुतः पुरुषों को उन्मत्त बना डालनेवाला एक मोहिनी मंत्र है। रमणी के मुख को कवि अरविंद की उपमा देते हैं, सो उसमें भी कोई अतिशयोक्ति नहीं; अन्यथा मुझ-सा मलिंद उसके बंधन में कैसे पड़ जाता? एक तो मैं गान-लुब्ध, फिर उसका सौंदर्य मुझे आकर्षित कर रहा था, ऐसी दुहरी डोरी से खिंचा हुआ मैं एकदम उस रमणी के सामने हो जा खड़ा होता; किंतु मुझे डर था कि कहीं वह सुआनना अपने चंद्रानन को बुरक़ा-घन में न छिपा ले कि फिर मैं कुछ भी न देख पाऊँ। इसलिये मैं बड़ी साव-धानी से धीरे-धीरे उस लता-मंडप के पास जाकर एक वृक्ष की आड़ में खड़ा हो गया। कवियों की कल्पनानुसार उस समय मैंने अपने नेत्रों को प्याला बनाया, और उन्हीं के द्वारा उस रमणी का सौंदर्य पान करने लगा। किंतु मेरी वह तृषा कैसे शांत हो? ऐसी इच्छा होती है कि सौंदर्य का आकंठ पान करें; किंतु जो वृत्ति सौंदर्य-पान करती है, उसके कंठ होता ही कहाँ है? धीरे-धीरे मेरी तृष्णा बढ़ने लगी, और मेरे अंतःकरण में एक बड़ा चमत्कार होने लगा। थोड़ी देर के बाद वह तरुणी अपना गायन समाप्त करके वहाँ से उठी। मैं न तो रसिया था और न प्रेमी ही, किंतु तो भी उस युवती के साथ बातचीत करने के लिये मेरे हृदय में बड़ी प्रबल उत्कंठा हुई। मैं उस ललना के सामने जा खड़ा हुआ, और बोला—"मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ, इसीलिये आप उठकर जा रही हैं क्या? यदि ऐसा ही है, तो आप बैठें, मैं दूसरी ओर जाता हूँ।"

अकस्मात् एक सुंदर, तरुण और रोबदार अपरिचित व्यक्ति को अपने सामने देखकर उसे सहज ही आश्चर्य हुआ। मैं समझता था कि मुझे देखते ही वह ललना अपने मुँह को बुरक़े से छिपा लेगी; किंतु उसने ऐसा नहीं किया, प्रत्युत उसने अपने बुरक़े को सहज ही थोड़ा और खिसकाकर अपने अधर-पल्लवों द्वारा मुझे यह दिखला दिया कि तरुणी का हास्य कैसा सुंदर होता है। उसका सकुचना, मधुर हास्य करना, कनखियों से दृष्टिपात करना, कोमल शरीर को लचका देना और साथ ही थोड़ी देर के लिये स्वीकार की हुई उसकी मुग्धावस्था आदि को देखकर जिस प्रकार मैं लुब्ध हो गया था, ठीक उसी प्रकार की उसकी भी स्थिति मुझे देखकर हो गई है, ऐसा मुझे प्रतीत हुआ। अपने नाज़ुक पैरों में पहनी हुई ज़री की कामदार जूतियों की ओर देखती हुई वह मधुर कंठ से बोली—"आप आए हैं, इसलिये मैं नहीं जाती; किंतु घर जाने का समय हो गया है, इसलिये जा रही हूँ।"

इससे अधिक बोलने का कुछ कारण न था, किंतु मेरी ज़बान विवेक की लगाम से न डटी, उसे तो उस समय एक प्रकार का जोश-सा चढ़ रहा था। मैंने पूछा—"आपका मकान कहाँ है ?"

मैंने तो मूर्खता से पूछा, सो पूछा ही, किंतु उसे तो उत्तर न देकर चली ही जाना चाहिए था, परंतु नहीं, उसने तो अब मेरे ऊपर सचमुच ही नयन-बाण फेंका, और बोली—"इस बाग़ में ही।"

मैंने आश्चर्य से कहा—"इस बाग़ में ? यहाँ तो मैं पंद्रह दिन से रहता हूँ, किंतु मैंने आपको यहाँ कभी नहीं देखा !"

"न देखा होगा। कारण, मैं बाहर कम निकलती हूँ।"

"आपके घर में कौन-कौन हैं ?"

मेरे इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये वह थोड़ा अटकी, फिर कुछ खिन्नता से बोली—"घर में मामू और मामी हैं, उनके बाल-बच्चे हैं। इस बाग़ की सभी व्यवस्था मेरे मामू के हाथ में है।"

"और, आपके मा-बाप ?"

"मेरी मा बचपन में ही मर गई थीं, और पिताजी हाल में, दक्षिण की चढ़ाई में, वीर-गति पा गए हैं। इसीलिये तभी से यहाँ अपने मामू-मामी के पास रहती हूँ।"

इतना कहते ही उसके नेत्रों में आँसू भर आए। मैंने बड़ी सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"अरे रे! बहुत बुरा हुआ। ख़ुदा की मरज़ी! और क्या? आपके मामू भी बड़े अच्छे आदमी हैं। उन्होंने मेरे लिये अच्छा प्रबंध किया है, और मेरी बड़ी ख़ातिरदारी की है। मुझे यक़ीन है, वह आपको भी अपनी पुत्री की नाईं प्यार करते होंगे?"

"हाँ, मुझ पर बहुत स्नेह रखते हैं।"

वह ललना नीची नज़र किए हुए बड़ी ही नम्रता के साथ मधुर स्वर में बोल रही थी। अवश्य ही उसके नेत्रों में एक प्रकार की विलक्षण मृदुता थी, किंतु बीच-बीच में जब वह मेरे ऊपर दृष्टिपात करती थी, तो मेरी स्थिति बड़ी ही चामत्कारिक हो जाती थी। और, यह अनुभव करके मुझे बड़ा आश्चर्य होता था कि एक अबला के नेत्रों में ख़ुदा ने इतनी बड़ी शक्ति दे रक्खी है। मुझे प्रतीत हुआ कि अपनी अरसिकता के कारण जो मैं इतने दिन तरुण स्त्रियों के संबंध में उदासीन रहा, सो मेरे इसी पाप (?) के लिये वह स्त्री अपने नेत्र-संकेतों द्वारा मुझे दंड दे रही है। इतने दिन तक का मेरा जो निग्रह था, सो धीरे-धीरे ढीला पड़ने लगा। इतने दिनों तक मेरी धारणा थी कि रसिक होने की अपेक्षा मैं अरसिक ही भला; किंतु उस सुंदरानना को देखते मेरा जी पक्का रसिया बन जाने को चाहा, साथ ही मन में ऐसे विचार भी प्रबलता से उठने लगे कि बस, अब तो मैं प्रतिभा-संपन्न कवि बन जाऊँ, और अपने सारे अंतःकरण को प्रेम की सुंदर कल्पनाओं से ही भर डालूँ, परंतु रसिकता और कविता क्या गलियों में पड़ी फिरती हैं? ईश्वर-प्राप्ति के हेतु जिस प्रकार तप करने पड़ते हैं, उसी प्रकार, और कदाचित् उससे भी कहीं अधिक परिश्रम रसिक और कवि बनने के लिये करने पड़ते हैं। मेरा यह कथन सुनकर आप पूछेंगे कि फिर रसिकगण और कविगण

गलियों-गलियों क्यों दीख पड़ते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर एक रसिक कवि ने ही मुझे दिया था, और वह यह कि पूर्व जन्म के संस्कार के कारण। जो हो, किंतु यह तो सत्य है कि उस समय मेरी यही प्रबल इच्छा थी कि उस युवती के साथ कवि की भाषा में मधुर-मधुर वार्तालाप करता रहूँ; किंतु बोलूँ क्या, सो कुछ समझ नहीं पड़ता था। अंत को सिर खुजलाते-खुजलाते मुझे एक प्रश्न सूझा। मैंने पूछा—"आपका शुभ नाम क्या है ?"

वह सहज ही सकुचाकर मुस्किराती हुई बोली—"दिलारा। और आपका ?"

"शहादतअलीख़ाँ।"

"दिल्ली के वे सुप्रसिद्ध सेठ आप ही हैं क्या ?"

"हाँ, मेरे ऊपर लक्ष्मी की कृपा है सही, किंतु दिल्ली-शहर में मुझसे भी अधिक वैभववाले कितने ही लोग पड़े हैं।"

"होंगे; किंतु आप तो बादशाह के साहूकार हैं न ?"

"यह बात आपसे किसने कही ?"

"मामूजी ने। उन्होंने यह भी कहा है कि आप इस बाग़ में बादशाह के अतिथि हैं।"

मैं अब इस विचार में पड़ गया कि आगे क्या पूछूँ, अब तो मेरी प्रतिभा ही प्रकट हो चुकी है। इसी बीच दिलारा बोली—"अच्छा, अब मैं जाती हूँ।"

उसे क्या उत्तर दूँ ? मैं तो उस समय यह भी निर्धारित न कर सका कि उससे 'हाँ' कहूँ या 'न'; किंतु उसने मेरे उत्तर की प्रतीक्षा न की, और वहाँ से चली गई। रास्ता चलते हुए बीच-बीच में वह युवती पीछे फिरकर देखती जाती थी कि मैं कैसा उन्मत्त की नाईं खड़ा हूँ ; किसी रसिया ने यदि उस समय उसका मरोड़ भरा अंग देखा होता, तो अपने को धन्य माना होता; किंतु मुझे तो उसमें मेरे ही जैसा उन्माद दिखाई पड़ा। उस दिन के बाद से प्रतिदिन बाग़ में हम दोनों का

'मिलन' होने लगा, और मुझे उस भेंट से अधिकाधिक आनंद होने लगा। अंत में उस रमणी ही की विजय हुई। तरुण स्त्रियों के विषय में जो मेरी उदासीनता थी, सो नष्ट हो गई, और मेरे अंतःकरण में प्रेम का झरना झरने लगा। अब तक मेरा जो स्वतंत्र वृत्ति का आयुष्य क्रम था, सो वह उस तरुणी ने बदल डाला। थोड़े ही समय उपरांत उस युवती के मामू ने मुझसे विवाह की अनुमति माँगी; मैंने प्रसन्नता-पूर्वक उसकी भांजी के साथ विवाह करना स्वीकार कर लिया, और बड़े ठाट-बाट से मेरे दो हाथ से चार किए गए।

कहने की आवश्यकता न होगी कि मेरा परम प्रिय मित्र अमीरुद्दीन मेरे इस विवाह-प्रसंग पर उपस्थित था। उस समय उसने बड़ा परिश्रम उठाकर मेरे विवाह-समारंभ को अच्छे ठाट-बाट के साथ पूरा-पाड़ा था। विवाहोत्सव इत्यादि समाप्त होने पर जब हम दोनो मित्र निश्चिंत हो एकांत में बैठे, तो अमीरुद्दीन बोला—"पहले तो दोस्त, तुम्हें अमीरुद्दीन का कहना झूठ प्रतीत होता था, किंतु अब तो वही कथन तुम्हें काव्य के जैसा मधुर लगता होगा। अरे भाई! यह लोक एक प्रेम-राज्य है। कदाचित् तुम कहोगे कि मैं यहाँ के प्रेम-दूत को फँसाकर प्रेम से सदा अलिप्त रहूँगा; किंतु यह कभी संभव नहीं हो सकता। अंत को तुम प्रेम की छत्रच्छाया के नीचे आ गए, यह देख मुझे बड़ा आनंद होता है। इतने दिन तक जो तुम ठहरे रहे, उसका पारितोषिक भी तुम्हें बहुत ही अच्छा मिला है। सत्य ही दिलारा अनुपम सुंदरी है; ऐसी सर्वांग-सुंदर रमणी मैंने कहीं भी नहीं देखी; इस विषय में तो मैं तुम्हें बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ।"

सुहृद् मित्र का यह कथन सुनकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। अमीरुद्दीन का हाथ अपने हाथ में लेकर मैं बोला—"अमीरुद्दीन! यह सब ख़ुदा की मेहरबानी है। उसकी कृपा हो, तो फिर किस बात की कमी। बस, अब यदि इस प्रेम का अंत भी ऐसा ही मधुर निकले, तो मैं सभी सार्थक समझूँगा।" अंत का यह वाक्य अनजाने ही एकदम मेरे मुँह से निकल

गया। मेरे इस वाक्य से अमीरुद्दीन को तो कुछ न हुआ, किंतु मेरा मन सहज ही कुछ उदास हो गया। थोड़े समय बाद अमीरुद्दीन मुझसे बिदा हो अपने घर चला गया। मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे पास से जाते समय अमीरुद्दीन कुछ उद्विग्न था। अमीरुद्दीन ने समझा होगा कि अब शहादतअलीख़ाँ की शादी हो गई है, इसलिये कदाचित् मेरे ऊपर उसका पहले-जैसा स्नेह न रहे। उसके मन में यह भी आया होगा कि यदि गृहिणी चतुर निकली, तो जो कुछ थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता मुझे शहादतअलीख़ाँ की ओर से मिलती रहती थी, सो वह भी बंद हो जावेगी। अमीरुद्दीन के मन में चाहे जो कल्पनाएँ-विकल्पनाएँ उठी हों, किंतु मेरे मन में तो ऐसे कुछ भी विचार न उठे थे; प्रत्युत मैं विवाह की ख़ुशी में अब अमीरुद्दीन के साथ बहुत ही खुले दिल से बर्तता था, और मेरे मन में ऐसी सदिच्छा थी कि बंधु-प्रेम अथवा मित्र-प्रेम-जैसी 'ख़ुदाई बख़्शिश' में केवल विवाह के कारण ही कोई कमी न होनी चाहिए। हाँ, केवल इतना फेर अवश्य पड़ गया था कि अब मेरा विवाह हो जाने के कारण मैं अमीरुद्दीन के साथ पहले की नाईं स्वैर-संचार न कर सकता था। मनुष्यों का ऐसा स्वभाव होता है कि मित्रों के साथ स्वैर-संचार में बीती हुई आयुष्य उन्हें बड़ी आनंदप्रद प्रतीत होती है। और उस बीती हुई आयुष्य के स्मरण-मात्र से ही उन्हें बड़ा आनंद होता है। केवल आशा के बल पर ही मनुष्य अपने भविष्य-काल की बाट हेरा करता है। यह आशा, भली हो या बुरी सदा मनुष्य-रूपी डोरी की सहायता से आकाश में चंग की नाईं उड़ती रहती है। इस कारण मनुष्य को अपना प्रत्येक कार्य इसी आशा-रूपी चंग की ओर दृष्टि रखते हुए करना पड़ता है, इसीलिये स्वभावतः उसे अपनी बीती हुई आयुष्य ही भली लगती है।

हम दोनो—दिलारा और मैं—बहुत ही जल्द एक दूसरे के साथ परस्पर प्रेम-रज्जु से आबद्ध हो गए, और हमारी संसार-यात्रा बड़े सुख से व्यतीत होने लगी। दिलारा के अनुपम सौंदर्य पर मैं मुग्ध था। उसके

सौंदर्य में मदिरा की जैसी मादकता थी, जिसके कारण मैंने अपने अंतः-करण का पूर्ण प्रेम और विश्वास उसके चरणों में अर्पण कर दिए थे। ऐसी सुंदर स्त्री पाकर मैं अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता था। उसके हँसने-बोलने से यही भाव प्रकट होता था कि उसने भी मेरे ऊपर अपना आत्मसमर्पण कर दिया है। पहले तो मैं कुछ उदासीनता का बर्ताव रखता था; किंतु अब मुझे प्रतीत होने लगा कि संसार के साथ मेरा कुछ संबंध है, इसीलिये मैंने अपने बर्ताव को उस दृष्टि से बदल दिया। आप लोगों के समक्ष मैं अपने दान, दया, धर्म आदि का बखान नहीं करना चाहता, और न लेश-मात्र अतिशयोक्ति द्वारा 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' बनना चाहता हूँ। छोटेपन से ही मेरा स्वभाव है कि रुपए-पैसे और शरीर से, जहाँ तक मुझसे हो सकता है, ग़रीबों का उपकार करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मेरी आर्थिक स्थिति अनुकूल तो थी ही, विवाहोपरांत मैं और भी अधिक दान-धर्म करने लगा, और निश्चय-पूर्वक ऐसा प्रयत्न करता था कि मेरे द्वार से कोई विमुख न जाने पावे। मेरे इस प्रयत्न में दिलारा भी यथाशक्ति मेरी सहायता करती थी। उस समय जो अतिथि-अभ्यागत मेरे यहाँ आते, सभी दिलारा की कार्य-दक्षता की प्रशंसा करते थे, जिसे सुनकर मैं बड़ा आनंदित होता था। मनोरम गृहिणी, पसीने की जगह ख़ून बहानेवाला अमीरुद्दीन-जैसा मित्र, अनुकूल संपत्ति और साथ ही शाही दरबार में पूरा मान-सम्मान—ये सभी परिस्थितियाँ इकट्ठी होने के कारण मुझे सहज ही बड़ा आनंद होता था। मेरा प्रत्येक दिन आनंद में व्यतीत होता था, और मुझे आशा थी कि मैं आगे भी ऐसा ही सुखी बना रहूँगा। विवाह के वर्ष-भर बाद दिलारा ने एक सुंदर कन्या-रत्न को जन्म दिया, इससे मेरे सुख में और भी अधिक वृद्धि हुई। कन्या का रूप-रंग मेरे ही जैसा था, और शरीर से भी वह मेरी ही नाईं पुष्ट थी। यह पुत्री मुझे बड़ी ही प्रिय थी। मेरे घर में 'बाघा' नाम का एक कुत्ता पला था। बाघा सचमुच बाघ ही था; उसका मुँह बाघ के जैसा भयानक था, और शरीर से भी वह बाघ के ही तुल्य दीर्घ

एवं हृष्ट-पुष्ट था। बाघा मुझसे बड़ा प्रेम करता था, और मेरे लिये अपने प्राण तक दे डालने को सदैव तैयार रहता था। बाघा सचमुच बड़ा ही स्वामिभक्त जानवर था। अजी साहब ! जानवर क्या था, एक मनुष्य था; किंतु हाँ, मनुष्य की नाईं कृतघ्न या विश्वासघाती न था। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि इन दोनो दुर्गुणों और पूँछ के बीच परस्पर कोई शत्रुता अवश्य है; मनुष्यों के पूँछ नहीं होती, इसलिये इस कमी की पूर्ति-स्वरूप हममें कृतघ्नता और विश्वासघात है। पशुओं के पूँछ होती है, इसलिये उनमें कृतघ्नता और विश्वासघात नहीं पाए जाते। दुर्दैव से ही मैंने अपनी कन्या का नाम मरीना रक्खा था। शीघ्र ही मरीना और बाघा की परस्पर मित्रता हो गई। मरीना यदि थोड़ी देर बाघा को न देखती थी, तो रोने लग जाती थी, उसी प्रकार बाघा भी यदि कुछ देर मरीना को न देख पाता, तो बड़ा उदास प्रतीत होता था। मरीना जब साल-भर की हुई, तो मैंने बड़े ही उत्साह से उसकी प्रथम वर्ष-गाँठ मनाई, और इस उपलक्ष में मेरे इष्ट-मित्रों ने अनेक भेंटें मरीना के लिये पहुँचाईं। इस प्रसंग पर अमीरुद्दीन भी मेरी कन्या को भेंट देने आया था। वह अपने साथ एक बड़ा चित्र भी खींचकर लाया था। इस चित्र में मैं एक कोच पर बैठा हूँ, और मरीना को गोदी में लिए हुए पास ही दिलारा खड़ी है। यह दृश्य बड़ी ही उत्तमता के साथ दिखाया गया था। यह चित्र देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ, और अमीरुद्दीन की कारीगरी को सराहने लगा। मरीना को भेंट करने के लिये सोने का एक हार भी अमीरुद्दीन लाया था। मेरे प्रिय मित्र की लाई हुई भेंट मरीना को उसी के हाथ से मिले, इस सदिच्छा से मैंने दासी को आवाज़ दी, और मरीना को ले आने की आज्ञा दी। अमीरुद्दीन ने बड़े आश्चर्य से मरीना को अपनी गोद में उठा लिया, और उसके गले में उपहार का वह हार पहना दिया। मरीना का मधुर मुख-मंडल देख अमीरुद्दीन बोला—"शहादत-अलीख़ाँ ! संसार का सच्चा सुख तो आप ही को मिला है।"

उसने ये शब्द कुछ सहज ही न कहे थे; मुझे तो इन शब्दों में

थोड़ी जड़ता प्रतीत हुई। मैंने कहा—"अमीरुद्दीन! दूसरे लोगों से मेरा भाग्य कुछ जुदा है क्या?"

"अवश्य। इतने बड़े दिल्ली-शहर में आपके-जैसे कितने हैं?"

"बहुत हैं; सैकड़ों हैं। तुम्हारा और उनका परिचय न होने के कारण तुम उनको पहचानते नहीं हो; बस, यही बात है। फिर यह भी न समझना चाहिए कि जो लोग तुम्हारी आँखों से तुम्हें सुखी दिखते हैं, वे वस्तुतः सुखी ही हैं। यह तो तुम समझते ही हो कि दूर से सुंदर दिखनेवाले कितने ही फल वस्तुतः भीतर कड़ुवे होते हैं। अस्तु, सुख-दुःख का सत्य ज्ञान उस सुख-दुःख के भोक्ता को ही हुआ करता है, दूसरे लोग तो उसकी कल्पना-मात्र कर सकते हैं।"

जो हो; किंतु मेरे इन शब्दों को सुनकर अमीरुद्दीन का मुख-मंडल सहज ही खिन्न हो गया, और बीच-बीच में वह मेरी ओर शंकित दृष्टि से देखने लगा; किंतु मैंने उसे देखा न देखा-जैसा कर दिया। थोड़ी देर बाद उसने मरीना को अपनी गोद में ले ऊँचा उठाया, और उसके कोमल-कोमल गुलाबी गाल का चुंबन लेने के लिये वह अपने ओंठ उसके गाल के समीप लाया; किंतु अमीरुद्दीन की आँखें उस समय मुझे बड़ी भीषण प्रतीत हुईं। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह उस बालिका की ओर ख़ून-भरी दृष्टि से देख रहा है। मैंने समझा, यह मेरे अति प्रेम का भ्रम है, और फिर मैंने मरीना को अमीरुद्दीन के हाथों से लेकर अपनी गोद में विश्राम दिया। मरीना बड़ी प्रसन्नवदना कन्या थी; किंतु उसके सुकोमल गाल पर अमीरुद्दीन का ओंठ पड़ते ही वह ज़ोर से रोने लगी। अमीरुद्दीन ने मरीना के रोने पर थोड़ा तिरस्कार दिखाया, और फिर वह मेरे ही घर पर भोजन करके चला गया। मरीना बड़ी शांत और हँसमुख बालिका थी; वह सभी को प्यारी लगती थी। मुझे आशा थी कि अमीरुद्दीन का भी उस पर बड़ा प्रेम होगा; किंतु आज उस प्रेम के संबंध में अचानक मुझे थोड़ा संदेह हो गया। इस बालिका का ऐसा क्या अपराध था भला?

दूसरा प्रकरण

शहर है या स्मशान ?

अरे रे ! हाय ! ! हाय ! ! ! दिल्ली-शहर में उस समय कैसा अनर्थ हो रहा था ! मैं समझता हूँ, आप सभी लोगों ने सुना होगा कि एक वर्ष दिल्ली में 'काला बुख़ार' आया था, और दिल्ली के हज़ारों मनुष्य छोटे-छोटे कीड़ों-मकोड़ों की नाईं उस काले बुख़ार के कराल गाल में पड़कर हज़रत मलिक-उल-मौत (यमराज) की भेंट हो गए थे। जिस वर्ष मेरी मरीना की प्रथम वर्ष-गाँठ थी, उसी वर्ष की यह बात है। वसंत तक तो सभी कुछ ठीक था; किंतु ग्रीष्म के प्रारंभ होते ही अचानक यह रोग उत्पन्न हुआ, और प्रतिदिन सैकड़ों मनुष्य मृत्यु पाने लगे। अच्छे-अच्छे हकीमों की भी समझ में न आता था कि यह भयंकर रोग क्यों और किस प्रकार उत्पन्न हुआ और उस पर क्या औषधोपचार करना चाहिए ? उस भयंकर रोग ने उस वर्ष दिल्ली शहर में जो छापा मारा, वह लोगों को आजन्म न बिसरेगा। उस रोग के अनर्थ से एक भी व्यक्ति न बचा था; बादशाह के महल से लगाकर रंक की झोंपड़ी पर्यंत सर्वत्र ही हाहाकार मचा था। हिंदुओं के स्मशानों में रात-दिन चिताएँ धक-धक सुलगा करती थीं, और मुसलमानों के प्रत्येक क़ब्रस्तान में मुरदों के ढेर-के-ढेर दफ़न किए जाते थे। शहर में जहाँ देखिए, वहाँ रोना-धोना और करुणाजनक नाद ही सुनाई देता था। ऐसा भयंकर दृश्य था कि आज भी याद आते कलेजा काँपता है। धीरे-धीरे दिल्ली-शहर की भारी दुर्दशा हो गई। बादशाह साहब अपने लाव-लवाज़म और सैन्य सहित दक्षिण की चढ़ाई में चले गए। अनेक सरदार और अधिकारिगण दौड़े, पर वे शिकार के लिये चले गए। बड़े-बड़े व्यापारी

और साहूकार शहर छोड़ गए। दिल्ली का उस समय सचमुच ही बुरा हाल था। कोई किसी की ख़बर न लेता था। और की तो कौन कहे, स्वयं माता अपने पुत्र से आँख चुराती थी; फिर, ऐसे समय में भाई ने भाई की और मित्र ने मित्र की कितनी सहायता की होगी, यह आप स्वयं ही विचार सकते हैं। उस समय शहर में जानेवाले को ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह साचात् हज़रत मलिक-उल-मौत के शहर में घूम रहा है। चारों ओर से आता हुआ रोगियों का आर्तनाद सुनकर, मृत व्यक्तियों के सगे-संबंधियों की दयार्द्र स्थिति एवं रास्तों में पड़े हुए प्रेतों के ढेर-के-ढेर देखकर, स्वयं धैर्यदेव का भी धैर्य छूटता था। मनुष्य का तो कहना ही क्या है! उस वर्ष गर्मी भी बड़े ही ग़ज़ब की पड़ी थी; पवन भयंकर अग्नि-ज्वाला का रूप धारण किए थी, और सूर्य देवता तो मानो पृथ्वी पर कुपित होकर उसे जला ही देना चाहते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि मनुष्यों के संहार के लिये अग्नि देवता ने स्वयं अवतार धारण किया है। दिन को आकाश प्रज्वलित अग्नि-कुंड के सदृश प्रतीत होता था।

गर्मी इतनी भयंकर थी, शहर की ऐसी दुर्दशा थी, फिर भी मैं दिल्ली-शहर छोड़ कहीं न गया था। मैं पहले ही से जानता था कि ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ मृत्यु के डर से छुटकारा मिल सकता हो; इसीलिये शहर की ऐसी दुर्दशा देखकर भी मैं विशेष न घबराया। उस समय मेरी शारीरिक दशा बहुत अच्छी थी, और मेरा मन भी शरीर ही की नाईं सुदृढ़ था। अब मैं कुछ डरपोक हो गया हूँ, सो नहीं; परंतु अब शरीर वैसा दृढ़ नहीं रह गया है, सो आप लोग स्वयं ही देख रहे हैं। उस समय मैंने अपने शरीर-बल एवं धन-बल से लोगों का अच्छा उपकार किया था; यह थोड़ी-बहुत सहायता यदि मैंने उस समय न की होती, तो मेरे मन को आगे जाकर बड़ा खेद होता। उस समय शहर की जिस भयंकर स्थिति पर मेरी दृष्टि पड़ती थी, उसे देख मेरा मन यहाँ तक द्रवीभूत हो गया था कि मैं एक कुत्ते तक को दफ़नाने

के लिये तन-मन-धन से तैयार था। फिर ऐसा कैसे हो सकता था कि मनुष्यों के प्रेतों को मैं इधर-उधर ढेर-के-ढेर पड़े देखता। मैं निडर हो शहर में जाया करता, और लोगों को यथाशक्ति सहायता देता था। मेरी धारणा थी कि मृत्यु डरपोक का ही गला पहले दबाती है, और उस समय प्रत्यक्ष देखा भी यही जा रहा था कि जो लोग इस काले बुख़ार से डरे कि उसके ग्रास बने। मैं बड़े कठिन हृदय का था, इसी-लिये मैं डरता न था। मेरे रहने का मकान एक राजमहल के जैसा सुंदर था, और वह शहर के बाहर था। इसलिये भी मुझे एक प्रकार से चिंता न थी। मेरी स्त्री दिलारा थोड़े कच्चे जी की थी, इसलिये मैं शहर में जाकर जो कुछ भी करता था सो उसे न सुनाता था। अमी-रुद्दीन तो बड़ा ही डरपोक था; शहर में काले बुख़ार के प्रकट होते ही वह कहीं दूर भाग गया, फिर भी चौथे-आठवें दिन मुझसे मिलने के लिये आया करता था। उन दिनों मेरी सच्ची दोस्ती शहर के कितने ही फ़क़ीरों और हकीमों के साथ हो गई थी। शहर में एक दरगाह है, जहाँ ये फ़क़ीर और हकीम रहते हैं। काले बुख़ार के आरंभ हो जाने के कारण ये लोग शहर छोड़कर कहीं गए नहीं, और वहीं रहकर लोगों का उपकार करने लगे। रोगियों की दवा-दारू और प्रेतों की अंतिम क्रिया इत्यादि परोपकारी कार्य ये लोग बड़े उत्साह और निःस्वार्थ बुद्धि से करते थे। इन लोगों की और मेरी थोड़े ही समय में बड़ी मित्रता हो गई। मैं बीच-बीच में इन लोगों की रुपए-पैसे से सहायता करने लगा।

छोटेपन से मेरा यह नियम है कि मैं सूर्योदय से पहले ही उठता हूँ, और स्नान करके पहले अल्लाह की इबादत करता हूँ, तब कहीं किसी काम में हाथ डालता हूँ। काले बुख़ार का रोग दिल्ली में बहुत कुछ शांत हो जाने पर एक दिन मैं अपने नित्य नियमानुसार उठा, और स्नान करके अल्लाह की बंदगी भी बजा लाया; फिर शहर का हाल-हवाल देखने की इच्छा से कपड़े बदलकर घर से बाहर जाने की तैयारी करने लगा। विवाहोपरांत मैंने यह भी नियम कर लिया था कि जब

घर से कहीं बाहर जाने को होता, तो पहले अपनी प्रियतमा दिलारा की आज्ञा ले लिया करता था। इसी नियमानुसार उस दिन भी मैं उसकी आज्ञा लेने गया, तो देखा कि दिलारा निद्रा-वश है। इंद्र-भवन के जैसे सुंदर महल, सुंदर और भारी चाँदी का पलँग, उस पर हिम-फेन-सदृश शुभ्र मुलायम गद्दा और फिर उस पर तरुण सौंदर्य-कलिका—ये सब देख मेरे युवा, अनुभवी और अंधविश्वासी हृदय में एक प्रकार का अभिमान उत्पन्न हुआ। दिलारा का वह अनुपम सौंदर्य मैं बहुत देर तक आँखें भर-भर देखा किया। इस सौंदर्य का मैं ही एकमात्र स्वामी और भोक्ता हूँ, ऐसा विचार मन में आते ही हृदय प्रेम से भर आया। मन हुआ कि पास जाकर दिलारा का दृढ़ालिंगन कर लूँ, किंतु प्रिया की निद्रा भंग हो जाने की आशंका से मैंने उस समय मन का आवेग रोक लिया, और उसके गुलाबी गाल के केवल एक चुंबन से संतोष मान, उसके सौंदर्य की शोभा देखता हुआ दिलारा के कमरे से बाहर निकला। अचानक मेरे मन में उस समय आया कि कहीं दिलारा के साथ अपनी यह अंतिम भेंट तो नहीं है? मैं फिर उसके पलँग की ओर लौटा, और एक बार दृष्टि भरकर उसके सौंदर्य को देख महल से बाहर निकल आया।

अपने महल के बाहर मैंने सुंदर बग़ीचा लगवाया था। मेरी धारणा है कि यह बग़ीचा अब तक ज्यों-का-त्यों बना होगा। मालियों ने बग़ीचे में सिंचाई ठीक की है या नहीं, यह देखता हुआ मैं सारे बग़ीचे में घूमा। सुंदर उपवन और उसके बीच में अपने भव्य गृह को देखकर उस दिन मन में बड़ा आनंद हुआ। ख़ुदा ने मुझे ऐसा वैभव दिया है, यह सोचकर मैंने उसका धन्यवाद गाया, और शहर की ओर चल पड़ा। महल से कुछ दूर जाने के बाद एक बार फिर पीछे लौटकर देखने की इच्छा हुई। मुड़कर देखा, तो उस समय मुझे अपना राजप्रासाद के जैसा गृह अत्यंत ही सुंदर प्रतीत हुआ, और अचानक मेरे मन में विभिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे। उस समय मुझे

ऐसा प्रतीत होता था, मानो मैं अपने महल से अंतिम बिदा ले रहा हूँ। अर्द्धचंद्राकृति से अलंकृत एक हरा निशान मेरे महल पर फहराया करता था। यह निशान मानो मेरे वियोग से उदास होता जा रहा है, ऐसा मुझे उस समय प्रतीत हो रहा था। मैं शीघ्र ही सावधान हो गया, और यह कहकर मन का समाधान किया कि शहर में फैली हुई बीमारी के कारण ही कदाचित् मैं घबराया हुआ हूँ, और इसीलिये मन में ऐसे विचित्र विचार उठे हैं। शहर के मुख्य फाटक से मैं शहर में प्रवेश करने ही वाला था कि इतने में मुझे एक वृक्ष के नीचे से किसी के कराहने का शब्द सुनाई दिया। शब्द सुनते ही तुरंत मैं उस वृक्ष के नीचे पहुँचा, तो देखता हूँ कि दस-बारह वर्ष का एक सुंदर लड़का पड़ा-पड़ा तड़फड़ा रहा है। उसे देखते ही मेरा हृदय द्रव उठा; मैंने मीठे स्वर से पूछा—"बेटा, तुझे क्या हो रहा है ?" मेरा यह प्रश्न सुनकर उस लड़के ने आँखें खोलीं, और थोड़ी देर मेरी ओर देखकर बोला—"सेठ साहब, आप ज़रा मुझसे दूर हटकर खड़े हों। मुझे काला बुख़ार आया है। ख़ुदा न करे, उसका नापाक हाथ आप पर पड़ जाय! देखिए, मुझे हाथ न लगाइएगा, वरना यह बीमारी आपके जिस्म में भी दाख़िल हो जायगी।"

उस लड़के के ये शब्द सुनकर मेरे हृदय में दया का झरना फूट निकला। मैं बोला—"डर मत बेटा! इस तरह नाउम्मीद न हो; धीरज रख। काले बुख़ार के बहुतेरे मरीज़ चंगे हो जाते हैं। शहादतअलीख़ाँ अपने जीते जी ऐसा हाल तो एक कुत्ते का भी नहीं देख सकता, फिर तू तो आदमी है। तू ज़रा यहीं पड़ा रह, मैं अभी हकीम को बुलाए लाता हूँ।" मेरे इन शब्दों को सुनकर उस लड़के के मुँह पर आशा के कुछ चिह्न झलके। वह कृतज्ञता से बोला—"ख़ुदा आपका भला करे।" ये शब्द पूरे होते-होते मैं जल्दी-जल्दी चलकर हकीम के पास पहुँचा। मैंने कहा—"हकीमजी! एक अनाथ लड़का बुख़ार के मारे बेहोश पड़ा है। मेरे साथ चलकर अगर आप उसे कुछ दवा दें, तो मैं बड़ा एहसान मानूँ।"

हकीम साहब का मुख-मंडल एकदम भयाकुल हो गया; वे बोले—"ना साहब ! ऐसे मरीज़ के पास मैं बिलकुल नहीं जाता।"

तुरंत ही मैंने अपनी जेब से सोने की एक मुहर निकालकर हकीमजी के हाथ में थमाई, और बोला—"अभी तो आप चलें, फिर पीछे और भी दूँगा। इस वक़्त तो मेहरबानी करके मरीज़ को दवा दीजिए।"

हकीमजी मुझे पाठ पढ़ाने के उद्देश्य से बोले—"मेहरबान ! यह पैसे का सवाल नहीं है; यह मरने-जीने का सवाल है। जीते रहेंगे, तो ऐसी सैकड़ों मुहरें कमा लेंगे। आप अभी नौजवान हैं, इसलिये मैं आपको सलाह देता हूँ कि आप आयंदा से ऐसे मरीज़ों के पास न जाया करें।"

हकीमजी के ये शब्द मुझे बड़े बुरे लगे। इस वृद्ध हकीम का अपनी देह पर इतना बड़ा प्रेम देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। तुरंत ही मैं दौड़ा हुआ दरगाह के फ़क़ीरों और हकीमों के पास पहुँचा। मुझे विश्वास था कि वे मेरी समुचित सहायता करेंगे। उस लड़के की बात सुनते ही उनमें से एक हकीम मेरे साथ चलने के लिये तैयार हो गया। इस हकीम का नाम पीरमुहम्मद था, और यही पीरमुहम्मद उस दरगाह का प्रमुख था। दरगाह में दूसरे और जो दो हकीम थे, वे पीरमुहम्मद के शिष्य थे और दरगाह के सब फ़क़ीर भी पीर-मुहम्मद के ही आश्रय में रहते थे। पीरमुहम्मद हिकमत में बड़ा होशियार था; वह किसी रोगी से नज़राना न लेता था, इसीलिये उसने दरगाह का आश्रय ले रक्खा था। हम लोग दरगाह से तो चल पड़े, किंतु मार्ग में ही बुलाने पर हम लोगों को चार-पाँच रोगी और देखने पड़े; इसलिये उस लड़के के पास पहुँचने में हम लोगों को बहुत देर लग गई। रास्ते में चलते-चलते मैंने हकीमजी से कहा—"यह रोग स्पर्शजन्य है या नहीं, सो तो ख़ुदा ही जाने; किंतु मुझे तो ऐसा विश्वास होता है कि यह रोग भीतिजन्य अवश्य ही है। कारण, बहुत से लोग तो केवल भीति से ही रोगग्रस्त हो जाते हैं।"

हकीम ने उत्तर दिया—"आपका यह कथन बहुत अंश में ठीक है। प्रसंग आ पड़ने पर धैर्य रखने से बहुत-सी आपत्तियों का निवारण सहज ही हो जाता है; किंतु आप यह न समझें कि धैर्यवान् व्यक्ति इस रोग के ग्रास बनते ही नहीं। भला आप कहें तो कि मृत्यु ने किसे छोड़ा है ? जो जन्मा है, सो कभी-न-कभी अवश्य ही मरेगा। सच पूछिए, तो यही अच्छा है कि इस रोग के विषय में अधिक विचार ही न किया जाय।"

हम दोनो शीघ्र ही उस लड़के के पास जा पहुँचे, और देखा कि मारे कष्ट के वह बेहोश हो गया है। हकीम ने उसकी नब्ज़ देखी, तो निराशा ही प्रतीत हुई। उसे दवा पिलाई गई, किंतु उसका कुछ प्रभाव न हुआ, और बेचारा लड़का हम लोगों के सामने ही मृत्यु की भेंट चढ़ गया। मैंने और हकीम ने मिलकर उसे दफ़नाया, और फिर हम लोग दरगाह में वापस चले आए। धूप बड़ी कड़ी थी, और ऐसी ही धूप में मुझे आना-जाना पड़ा; इसलिये मेरा पित्त चढ़ आया, और आँखों के आगे अँधेरा-सा आने लगा। मैं समझता था कि दरगाह में थोड़ा विश्राम ले लेने से ही तबियत सुधर जायगी; किंतु यह आशा व्यर्थ हुई, और मेरा माथा दुखना आरंभ हो गया; थोड़ा-थोड़ा बुख़ार भी देह में प्रतीत होने लगा। बिछौने पर लेटने का मन हुआ, तो हकीमजी ने मुझे भीतर ले जाकर अपने पलँग पर लिटा दिया। हकीम ने मेरे शरीर पर हाथ रखकर देखा, तो मुझे उसका मुख-मंडल बड़ा चिंता-ग्रस्त प्रतीत हुआ, और यह देख मेरे अंतःकरण को भी धक्का लगा। मैंने पूछा—"पीरमुहम्मद ! क्या यह काले बुख़ार के पूर्व चिह्न हैं ?"

पीरमुहम्मद ज़बरन् हँसा, और बोला—"नहीं मेहरबान ! ऐसे बुरे विचार मन में न लाइए। थोड़ा माथा दुखने ही से क्या काला बुख़ार आ गया ? आप तेज़ धूप में आए-गए हैं, इसीलिये तबियत कुछ बिगड़ गई है, और कोई भय की बात नहीं है।" ऐसा कहकर पीर-मुहम्मद ने अपने शिष्य को आवाज़ दी, और उसे कुछ औषध देकर मेरे

लिये तकिया लाने की आज्ञा दी। इसी बीच मुझे ऐसा प्रतीत होता था कि मेरी तबियत और अधिक बिगड़ती जा रही है। मैंने हकीम से कहा—"पीरमुहम्मद, मेरा यह बुख़ार काला हो या साधारण, मुझको इस बुख़ार का या मृत्यु का कोई भय नहीं लगता; किंतु आपसे मेरी यही सविनय प्रार्थना है कि मेरी तबियत ख़राब होने का समाचार आप मेरे घर पर न पहुँचावें, और न मेरे किसी इष्ट-मित्र से ही आप यह हाल कहें। इसका कारण यही है कि मेरी बीमारी का हाल सुनकर मेरी प्रिय पत्नी बेचारी दिलारा और मेरी पुत्री मरीना व्यर्थ ही अस्वस्थ हो जायँगी। अगर ख़ुदा की यही मरज़ी हुई कि मैं इस दुनिया से कूच कर जाऊँ, तो आप मुझे दफ़नाए बिना मेरी स्त्री को मेरी मृत्यु का समाचार न पहुँचाना। कारण, वह बड़े ही कोमल अंतःकरण की है, और मुझे अपने प्राणों से भी अधिक चाहती है। उसका अंतःकरण मेरे मृत्यु-संवाद से दहल जायगा, और यह समाचार सुनते ही उसकी प्राण-ज्योति तत्क्षण बुझ जायगी। इसलिये प्रार्थना है कि मेरी यह मृत्यु-वार्ता आप बड़ी ही युक्ति से उसके कान में डालना।"

पीरमुहम्मद ने मेरा यह कथन मान लिया, और यह बुख़ार ऐसे डर के योग्य नहीं है, कहकर मुझे सांत्वना भी दी; किंतु मुझे अपने बचने का विश्वास न था। बुख़ार ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता था, मेरे होश उड़ते जाते थे। हकीम की एक फ़क़ीर के साथ कुछ बातचीत हो रही थी, और वह मेरे काले बुख़ार के ही संबंध में थी। केवल इतना ही मैं जान सका, और फिर बिलकुल बेहोश हो गया। इस बेहोशी में मुझे अनेकानेक दृश्य दिखाई देने लगे, और मैं मनचाहा बड़बड़ाने लगा। मेरी प्राणाधिका दिलारा क्षण-क्षण मेरी आँखों के आगे आने लगी; कभी तो वह मुझे बड़ी प्रफुल्लित दिखती, कभी बड़ी उदास प्रतीत होती थी। उसका पति इहलोक त्याग गया है, वह अनाथा हो गई है, और कितने ही दुष्ट लोग उसे त्रास दे रहे हैं, यह अंतिम दृश्य दृष्टि-गोचर होते ही मेरे मुँह से एक चीख़ निकल पड़ी, और मैं बिछौने पर से उठ

खड़ा हुआ। मेरी चीख़ सुनते ही फ़क़ीर लोग दौड़ आए, और मुझे सँभालकर फिर लिटा दिया। हकीम ने मेरे मुख में कोई औषध भी छोड़ी। इसी बीच मैं चिल्ला उठा—"अरे, मुझे किसलिये बचाते हो ? उस पेड़ के नीचे तड़फते हुए लड़के की जान बचाओ।" बस उस समय की इतनी ही अस्पष्ट स्मृति मुझे है। इसके बाद फिर मैं बिलकुल बेसुध हो गया, और मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो मैं एक बड़ी अँधेरी गुफा में प्रवेश कर रहा हूँ, और नीचे ही की ओर उतरता जा रहा हूँ। अंधकार ! अंधकार !! चारो ओर अंधकार ! जहाँ देखता हूँ, अंधकार का ही साम्राज्य पाता हूँ !! और ऐसे ही अंधकार में मानो मैं नीचे-ही-नीचे चलता जा रहा हूँ। एक फेंके हुए पत्थर की नाई मैं लुढ़कता हुआ जा रहा था, और दुनिया से मेरा संबंध टूट गया था। दुनिया का क्या हो रहा है, सो मैं समझ न सकता था, और मेरा क्या हो रहा है, सो भी मैं जान न सकता था। हज़रत मलिक-उल-मौत के दरबार में प्रवेश करने का वह रास्ता यही था क्या ?

मृत्यु ने मेरे कंधे पर हाथ धरकर मुझे एक ही धक्का मारा था। यदि ऐसा ही एकाध धक्का और लगा होता, तो मैं हज़रत मलिक-उल-मौत के दरबार में ही पहुँच जाता, और वहाँ के चमत्कार देखता; किंतु ख़ुदा जाने इतने ही में क्या हुआ ? मेरी तो यह धारणा है कि उस समय तक मेरी आयुष्य की डोरी न टूटी थी, और मृत्यु मेरे साथ व्यर्थ का ही परिश्रम कर रही थी। जब मृत्यु ने देखा कि वह अपने प्रयत्नों में सफलता प्राप्त न कर सकेगी, तो उसने एक धक्का मारकर मुझे फिर इसी लोक में ढकेल दिया। जब मुझे धीरे-धीरे कुछ चैतन्य-लाभ हुआ, तो ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कोई मेरी छाती पर चढ़ा हुआ मेरा गला दबाए बैठा है, और इसीलिये श्वासावरोध होने के कारण मेरा प्राण व्याकुल प्रतीत होता था। वह फ़क़ीर और हकीम—दोनो ही मेरे पास बैठे हैं, फिर क्यों इन लोगों ने किसी को मेरी छाती पर बैठने दिया, मन में यह विचार आते ही मैंने उन्हें आवाज़ देने का प्रयत्न किया; परंतु मेरे

प्राण घुट रहे थे, इस कारण मुँह से एक शब्द भी न निकला। अंत में मैंने उछलकर उठ खड़े होने के विचार से थोड़े हाथ-पाँव हिलाने का प्रयत्न किया, तो धड़-धड़ करके दो-चार पत्थर मेरे शरीर पर से लुढ़क-कर पृथ्वी पर गिर पड़े। हैं, यह क्या! मेरे शरीर पर पत्थर कैसे! और मैं यहाँ कहाँ? श्वासावरोध होने के कारण जी बड़ा घबरा रहा था। उस समय मुझे इतना दुःख हो रहा था कि ऐसे जीने से तो मुझे मर जाना ही भला लगता था। तथापि जीवन की आशा छूटती नहीं है। अस्तु, एक बार फिर से मैंने अपना शरीर हिलाया, और कितने ही पत्थर फिर मेरे ऊपर से धड़-धड़ गिर पड़े। इस प्रकार शरीर पर का भार कम हो जाने के कारण मुझे कुछ अच्छा लगा। मेरे मुँह पर शाल ढका हुआ था। बड़ा प्रयत्न करके मैंने अपने हाथ बंधन से छुड़ाए, और तुरंत ही उन्हें सिर की ओर लाया, तो टटोलकर जानने में आया कि मेरा शरीर मिट्टी और पत्थरों से ढका है। बस, मैं कल्पना से समझ गया कि मामला असल क्या है। मैंने तुरंत ही शरीर पर से मिट्टी-पत्थर आदि हटा दिए, और उठकर बैठ गया। मेरी आँखों की तंद्रा अब दूर हो गई। जिस भयं-कर स्वप्न-सृष्टि में मैं उस समय तक संचार कर रहा था, उस स्वप्न-सृष्टि से जाग्रत् होकर अब चारों ओर देखने लगा। मैंने देखा कि मैं बड़े घोर अंधकार में हूँ। घर से निकलते समय जो कपड़े मैं पहने था, वही अब भी मेरे शरीर पर ज्यों-के-त्यों विद्यमान थे, और एक शाल से मेरा पूरा शरीर ढका हुआ था। मैंने वह शाल हटा दी, और मिट्टी तथा पत्थरों से दबे हुए पाँव धीरे-धीरे स्वतंत्र कर लिए। मिट्टी और पत्थरों से पूरे शरीर की निवृत्ति होते ही मैं भले प्रकार उठ बैठा। अब धीरे-धीरे सभी बातें मेरी स्मृति में आने लगीं। उस लड़के का औषधोपचार, उसकी मृत्यु और दफ़न-विधि, मेरा फ़क़ीरों की दरगाह में आकर बीमार पड़ जाना, इतनी बातें तो मुझे भली भाँति याद हो आईं; किंतु इसके बाद की कोई भी बात मुझे उस समय याद न आई। उस समय मैं यह भी न समझ सका कि अब मैं दरगाह ही में हूँ या किसी और जगह? एक बार तो

मैंने ज़ोर से पीरमुहम्मद कहकर आवाज़ भी दी, किंतु कुछ उत्तर न मिलकर वही शब्द प्रतिध्वनित हो फिर सुनाई दिया कि पीरमुहम्मद। अब मेरा मन बड़ा व्यथित हुआ और मैं सोचने लगा कि वह फ़क़ीर और पीरमुहम्मद कहाँ गुम हो गए, और वह दरगाह ही क्या हुई। शरीर पर से पत्थर और मिट्टी हटाने के श्रम के कारण मैं पसीने में सराबोर हो रहा था; किंतु जब मैंने ध्यान दिया कि आगे-पीछे चारो ओर घोर अंधकार है, और मैं किसी अजब जगह आ पहुँचा हूँ, तब तो पसीने ने अचानक ऐसा प्रवाह बाँधा, मानो शरीर से एक झरना ही झर रहा है। अब मुझे यह समझने में देरी न लगी कि मैं क़ब्रस्तान में हूँ। फिर मुझे आकाश भी नहीं दिखता था, और चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार दृष्टिगोचर हो रहा था, इसीलिये मैं समझ गया कि मैं किसी पक्के बँधे हुए मक़बरे में हूँ। धीरे-धीरे क़ब्रस्तान तक अपने आ पहुँचने के इतिहास का अनुमान मैंने बाँध लिया। मैं बेहोश हो गया था, यहाँ तक तो मुझे स्मरण ही था। अस्तु, मैंने अनुमान किया कि रात को मेरी स्थिति बहुत ही ख़राब हो गई होगी, और उन फ़क़ीरों और हकीमों ने मुझे मृत हो गया समझकर, अकारण ही मेरे प्रेत को दरगाह में पड़ा रहने देना उचित न जान तुरंत ही उसकी दफ़न-क्रिया कर देना ही अच्छा समझा होगा; और इसी उद्देश्य से उन लोगों ने मुझे इस क़ब्रस्तान में ला रक्खा होगा। मैंने फिर सोचा; मैं क़ब्रस्तान में हूँ; किंतु मेरे शरीर में उष्ण रक्त ज्यों-का-त्यों संचालित हो रहा है, दृष्टि ठीक है, तबियत भी अब अच्छी है, सावधानी भी जितनी चाहिए, उतनी शरीर में विद्यमान है, और जीभ भी अपना कार्य करने के लिये उद्यत है। ये बातें ध्यान में आते ही मुझे उस समय कितना आनंद हुआ होगा, सो आप लोग ही स्वयं कल्पना कर जान सकते हैं। जीवन क्षणभंगुर है, सो तो ठीक है; किंतु जीवन पर मनुष्य का इतना गाढ़ा प्रेम होता है कि उसका क्षणभंगुरत्व मनुष्य के लक्ष्य में कभी आता ही नहीं है। क़ब्रस्तान में गड़ा हुआ होने पर भी मैं जीवित हूँ, इस कल्पना से उस समय जो आनंद मुझे हुआ था, सो

मैं ही जानता हूँ। मैं मक़बरे के एक गहरे-से-गहरे गड्ढे में था, फिर भी मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यहाँ से बाहर निकल चलने का मार्ग अवश्य ही होगा। मैं वहाँ से उठा, और अँधेरे में ही टटोलता हुआ मार्ग ढूँढ़ने लगा। मार्ग खोजते समय दो-चार जगह मुझे चोट भी लगी; किंतु अंत में मेरा प्रयत्न सफलीभूत हुआ। हाथों से दीवारें टटोलते-टटोलते मुझे कुछ सीढ़ियाँ मिलीं, और मैं आनंदित होकर झट दस-बारह सीढ़ियाँ चढ़ गया। ऊपर पहुँचा, तो मुझे पीतल के सीख़चे से जड़ा हुआ एक दरवाज़ा मिला। बाहर दृष्टि फेंकी, तो आकाश में चाँदनी खिली हुई थी। उस समय ठंडी पवन चल रही थी, जिसके लगते ही मेरे शरीर में अपूर्व उत्साह उत्पन्न हुआ। मैं उस समय यह नहीं समझ सकता था कि रात कितनी बीती होगी; परंतु चाँदनी में मुझे दरवाज़ा ख़ूब दिख रहा था। दरवाज़ा बड़ा मज़बूत बना था, किंतु उसमें ताला न लगा था, और न उसकी ज़ंजीर ही बंद थी; इसलिये मैं सहज ही उस दरवाज़े को खोलकर बाहर आ सका। इस समय मैं केवल क़ब्र से बाहर न निकला था, वरन् मृत्यु के मुख से मुक्त हुआ था; इसलिये बाहर मैदान में निकलते ही मेरा अंतःकरण भक्ति से भर आया, और मैंने वहीं ख़ुदा की इबादत की। अब मेरे नेत्रों के सामने दिलारा की सुंदर मूर्ति और मरीना की मनोहर बालाकृति आने लगी, और ऐसा मन हुआ कि पंख होते, तो अभी उड़कर अपनी दिलारा के पास पहुँच जाता।' मैंने पीर मुहम्मद से प्रार्थना की थी कि मेरा मृत्यु-संवाद मेरी स्त्री से न कहना, किंतु मेरे-जैसे नामी-गरामी मनुष्य की मृत्यु-वार्ता गुप्त नहीं रह सकती। सारे शहर में प्रसिद्ध हो गया होगा कि शहादतअलीख़ाँ की मृत्यु हो गई, और यह समाचार मेरी दिलारा ने भी अवश्य ही सुना होगा। हाय! हाय!! मेरी दिलारा इस अशुभ समाचार को सुनकर कैसी रोई-पीटी होगी, यह ध्यान आते ही उस समय मेरा हृदय भर आया। मुझे यह भी डर लगा कि कहीं दिलारा को मेरे मृत्यु-शोक से उन्माद न हो गया हो। यही सोच-विचार करते-करते मैं अपने घर की ओर चल पड़ा, तो चारों

ओर जहाँ देखता हूँ क़ब्रें-ही क़ब्रें दिखती हैं। कितनी ही क़ब्रों के पास दीपक जल रहे थे, और रात्रि में तारों की नाईं चम-चम चमक रहे थे यह दीपक उसी दिन की की हुई दफ़न-क्रिया के साक्षी थे। अब तक शहर में इतने मनुष्य प्रतिदिन काल के कराल गाल में जा रहे हैं, यह सोच मेरी छाती फटने लगी। इसी बीच मेरे हृदय में अचानक यह इच्छा उत्पन्न हुई कि जिस स्थान पर उन लोगों ने मुझे मिट्टी-पत्थर से ढक दिया था, उस स्थान को एक बार दीपक के प्रकाश में तो देख लूँ। इसी इच्छा से मैंने आसपास की क़ब्रों के दीपक इकट्ठे किए और उन सबका तेल एक बड़े दिए में करके चार-पाँच बत्तियाँ इकट्ठी ही लगा दीं, तो सहज ही अच्छा प्रकाश हो गया। फिर मैं यह दीपक हाथ में लेकर अपने कुटुंब के मक़बरे में घुसा। मेरे कुटुंब का मक़बरा एक स्वतंत्र स्थान में बना है, और उसके अंदर दस-बारह सुंदर क़ब्रें बनी हैं। जिस दरवाज़े से मैं बाहर आया था, उसी दरवाज़े से अंदर उतरा, और अपनी क़ब्र देखने लगा। मेरे लिये क़ब्र बड़ी जल्दी में खोदी गई होगी। उस जल्दी-जल्दी खोदे हुए गड्ढे के पास ही वह साधारण शाल और पत्थर के टुकड़े पड़े हुए थे। यह सब देखकर मुझे बड़ा भय लगा, और मेरा दिल धड़कने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि क़ब्रस्तान के प्रेत मेरे आसपास चारो ओर नाच रहे और मेरा उपहास कर रहे हैं। मैं जिस ओर दृष्टि फेंकता था, उसी ओर अस्थि-पंजर के प्रेत दिखते थे, और उनकी आँखों के गड्ढों में से अग्नि की ज्वालाएँ निकलती हुई दिखती थीं। यह देख मारे डर के मेरा बुरा हाल हो गया, और मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मेरे मुँह से चीख़ निकली पड़ती है। इतने ही में मेरी दृष्टि अपने पिता की क़ब्र पर पड़ी; तुरंत ही मैंने दीपक हाथ में से नीचे रख दिया, और दोनो हाथ बाँधकर बड़ी श्रद्धा से पिताजी की क़ब्र पर फ़ातिहा पढ़ी। फ़ातिहा पढ़कर दुआ माँगी कि इस प्रेत-लोक से मेरा शीघ्र ही छुटकारा हो। इसके बाद मेरे मन में धैर्य उत्पन्न होने लगा। सिर उठाकर चारो ओर फिर देखा, तो सभी प्रेत अदृश्य हो चुके थे। वे चाहे भले ही

मुझे देख रहे हों, किंतु मुझे तो वे अब न दिखते थे। अस्तु, मुझे अब डर ही क्या था? फिर ध्यान हुआ कि अभी-अभी कुछ काल पहले मेरी भी गिनती इन्हीं प्रेतों में थी, तो फिर तो यह मेरे मित्र हुए, और इस नाते से मुझे फिर एक बार उन प्रेतों को देखने की इच्छा हो उठी; किंतु फिर वे मुझे दिखाई न दिए।

अपने पिता की दफ़न-विधि मैंने बड़े समारंभ से की थी। शहर के सभी अमीर-उमरा उनकी मिट्टी में सम्मिलित हुए थे। उस समय मैंने दान-धर्म भी बहुत किया था। किंतु मेरी दफ़न-क्रिया तो केवल तीन-ही-चार मनुष्यों ने बड़ी जल्दी में कर डाली थी। लौकिक दृष्टि से मेरे-जैसे प्रसिद्ध पुरुष का दफ़न-विधि इस प्रकार होना योग्य न थी; किंतु मुझे तो शीघ्रता की यही क्रिया इस समय जीवनदायिनी सिद्ध हुई। यदि फ़क़ीरों के हृदय में रोग का भय न होता और यदि शहर में स्वस्थता होती, तो मेरे शव को हज़ारों मनुष्यों ने मिलकर बड़े समारंभ के साथ दफ़न किया होता। मेरी क़ब्र भी वे लोग मज़बूत बनाते और उस स्थिति में मेरे फिर जी उठने की आशा समूल ही नष्ट हो गई होती। इसी विचार से फ़क़ीरों द्वारा जल्दी-जल्दी में की हुई मेरी प्रेत-विधि मुझे बड़ी भली और उपकारक हुई। मैंने अपनी क़ब्र के गड्ढे को वहीं पड़ी हुई मिट्टी और पत्थर आदि से पूराकर एक प्रकार से समथल कर दिया, और फिर वहाँ से दीपक उठाकर मैं अपनी माता की क़ब्र के पास पहुँचा। इस समय मुझे अपने माता-पिता स्मरण हो आए थे, और इसी लिये मेरी आँखों से आँसू बह रहे थे। मैं वर्ष-भर में एक बार इस क़ब्रस्तान में आया करता और इन क़ब्रों पर नया वस्त्र उढ़ाकर पास ही दीपक जलाकर रख जाया करता था। मेरे माता-पिता मुझसे बड़ा प्रेम करते थे, इसलिये मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कुछ विशेष उपदेश देने के लिये उन्होंने मुझे इस विलक्षण ढंग से अपने पास बुला लिया है। उस समय मुझे ऐसा भास हुआ कि वे मुझे इस दुनिया पर कितना विश्वास रखना चाहिए, इस विषय में किसी गूढ़ तत्त्व का उपदेश दे रहे

हैं। माता-पिता के दर्शन करने और उनके उपदेश सुनने में मैं निमग्न हो गया था, इतने ही में कहीं से ठन्-ठन्-ठन्-ठन् ऐसे चार घंटे बजने के शब्द मेरे कान में पड़े, और मैं सुनते ही चौंक पड़ा। चार बजने की इस आवाज़ ने मेरे कानों में मानो बाह्य सृष्टि का आमंत्रण सुनाया। मैं भी बाहर निकलने के लिये उतावला हो रहा था कि कब घर पहुँचूँ, और अपनी प्यारी दिलारा से मिलूँ। फिर मेरे हृदय में वही विचार उठने लगे कि हाय रे ! हाय !! मेरी मृत्यु-वार्ता सुनकर दिलारा बेचारी अधमुई हो गई होगी; किंतु जब वह मुझे जीवित देखेगी, तो उसके आनंद का पार न रहेगा ! दीपक की जली हुई बत्ती का गुल गिराकर मैंने बत्ती सँभाली और सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर जाने लगा। इतने ही में सामने से आता हुआ एक चूहा देखकर मैं ठिठक गया। वह चूहा बग़लवाली दीवार की एक दरार में घुस गया। स्वभावतः मेरे हृदय में उस दरार के निरीक्षण करने की इच्छा हुई। मैंने उस दरार के पास दीपक ले जाकर देखा, तो उसके अंदर से कुछ भीनी किरणें आती दिखाई दीं, इससे मुझे और भी अधिक खोज करने की आवश्यकता पड़ी। मैंने दरार से आँख लगाकर ध्यान-पूर्वक भीतर की ओर दृष्टि डाली, तो अंदर एक कोठा था और उसमें हीरे-जैसी चमकती हुई एक वस्तु मुझे रक्खी हुई दिखाई दी। उस कोठे में बड़े-बड़े बक्स भी रक्खे हुए मुझे दिखाई दिए। मैं कुछ भी कल्पना न कर सका कि यह सब मामला आख़िर है ही क्या। वैसे तो मेरे-जैसे श्रीमान् के यहाँ हीरे की कुछ कमी न थी, किंतु उस हीरे की आब कुछ विलक्षण ही होने के कारण मेरे मन में उसे प्राप्त करने की तीव्र इच्छा हुई। वह दरार ऐसी न थी कि मैं उस मार्ग द्वारा कोठे में प्रवेश कर जाता, इसलिये मैंने अपने घुसने योग्य मार्ग करने का उद्योग करने की ठानी। मुझे अचानक स्मरण हुआ कि जिस समय मैं क़ब्रों के दीपक बटोरकर इकट्ठे कर रहा था, उस समय मैंने लोहे की एक कुल्फ भी वहीं एक क़ब्र के पास पड़ी देखी थी। यह याद आते ही मैं झपाटे से वहाँ पहुँचा, और कुल्फ उठा लाया; फिर मैंने उस दरार को ही

खोदकर अपने घुसने योग्य एक गोल सेंध बनाना आरंभ की। उस दृढ़ बँधाव की दीवार में सेंध करने के लिये मुझे दो घंटे से भी अधिक परि-श्रम करना पड़ा। जब सेंध खुद गई, तब मैंने उस कोठे में प्रवेश किया, और अंदर जाकर पहले उस हीरे के अलंकार को हाथ में उठाया। वह एक कमल-पुष्प के आकार का स्त्रियों के केश में बाँधने का अलंकार ※ था। उसके मध्य भाग में एक बड़ा हीरा जड़ा हुआ था। गोलाई में छोटे-छोटे हीरे और मोतियों के कई आबदार दाने जड़े थे। ऐसी उत्कृष्ट कारीगरी के इतने बहुमूल्य अलंकार को पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। इस सुंदर शीशफूल पर जब धूप की किरणें पड़ीं, तो और भी अधिक तेजःपुंज दिखने लगा। जब मैं घर पहुँचूँगा, तो मुझे देखते ही दिलारा को अनुपम आनंद होगा, किंतु जब वह यह जानेगी कि मैं मृत्यु के मुख से निकलते-निकलते उसके लिये एक ऐसा सुंदर बहुमूल्य अलंकार भी साथ लाया हूँ, तब तो उसके आश्चर्य और आनंद का पार ही न रहेगा, और वह अपने को अत्यंत कृतज्ञ एवं धन्य मानेगी। इस प्रकार की कल्पनाएँ मेरे हृदय में उठने लगीं; और मैं इन कल्पनाओं में भी उस समय आनंदानुभव करने लगा। मैंने यह शीशफूल अपनी जेब में रख लिया, और फिर उन बड़े-बड़े बक्सों में से एक बक्स खोलकर देखा, तो उसको स्वर्ण-मुद्राओं से खचाखच भरा पाया। इतनी अधिक संपत्ति देखकर मैं दंग रह गया, और सोचने लगा कि यह अटूट संपत्ति किसकी है, और किस उद्देश्य से यहाँ लाकर रक्खी गई है। बहुत कुछ सोचने का प्रयत्न किया, किंतु कुछ भी समझ में न आया। दूसरा बक्स खोला, तो उसे हीरा, मोती और स्वर्ण के बहुमूल्य अलंकारों से भरा पाया। तीसरे बक्स में अपूर्व कारीगरी के बेशकीमती ज़रीन कपड़े भरे हुए थे, किंतु यह बहुत दिनों से उसी प्रकार ठपाठप भरे पड़े थे; इसलिये इनमें कीड़े लग गए थे। पाँचवें और छठवें बक्सों में हाथीदाँत के बने हुए

※ शीशफूल।

एक-से-एक सुंदर पदार्थ भरे थे। यह सभी वस्तुएँ, अलंकार और वस्त्रादिक देखकर मेरे आश्चर्य का पार न रहा। फिर एक ग़रीब बेचारा तो इतनी बड़ी संपत्ति की कल्पना भी नहीं कर सकता। इस अगाध संपत्ति को देखते-देखते, दुर्दैव से, मैं यह भूल ही गया कि मैं इस मक़बरे में एक 'प्रेत' की नाईं लाया गया हूँ। मैं तो उस समय उस संपत्ति के ही निरीक्षण में मग्न था। हाथी-दाँत के सामानवाले बक्सों में एक अत्यंत चामत्कारिक वस्तु देखते समय हाथीदाँत का एक छोटा-सा क़लमदान मेरे हाथ लगा। मैंने तुरंत ही उसे खोला, तो उसके अंदर एक पुराना-धुराना काग़ज़ दिखाई पड़ा। इस काग़ज़ पर उर्दू में कुछ लिखा था। मैंने उसी समय काग़ज़ की तह खोलकर पढ़ना आरंभ किया। उसमें लिखा था—

"यह सभी दौलत मैंने लोगों पर डाके डाल-डालकर जमा की है, और इसका बहुत ज़्यादा हिस्सा मुर्शिदाबाद के नामी अमीर उस्मान-अलीख़ाँ का है। उस्मानअलीख़ाँ के कोई औलाद न होने की वजह से जब उनकी सारी दौलत उनके हक़ीक़ी भाई दिल्ली के मशहूर और मारूफ़ सेठ वज़ीरअलीख़ाँ मुर्शिदाबाद से दिल्ली को ला रहे थे, तब मैंने रास्ते ही में ये सब दौलत लूट ली थी। आगे जाकर सेठ उस्मानअलीख़ाँ मुझे रोज़ रात को ख़्वाब में दिखने लगे, और अपनी सारी दौलत अपने भतीजे शहादतअलीख़ाँ को सिपुर्द कर देने के लिये मुझे तंग करने लगे। साथ ही ख़्वाब में मुझसे यह भी कहते थे कि 'मेरी सारी दौलत शहादत-अलीख़ाँ को सवाब के कामों में ही ख़र्च करना चाहिए।' मैं पेशे से डाकू हूँ, और आक़बत से भी नहीं डरता; लेकिन फिर भी हर रोज़ के ऐसे-ऐसे ख़्वाबों से मैं परेशान हो गया, और मेरे ऊपर एक अजब ख़ौफ़ ग़ालिब हो गया। बादशाह औरंगज़ेब मेरे ऊपर सख़्त नाराज़ हैं, इसीलिये उनके ख़ौफ़ के मारे मैं यह सभी दौलत शहादतअलीख़ाँ को खुले तौर पर पहुँचा नहीं सकता था। पस, मैंने वह सब दौलत यहाँ वज़ीरअलीख़ाँ के मक़बरे में लाकर इंतज़ाम से रख दी है। मुझे उम्मेद है कि शहादतअलीख़ाँ

कभी-न-कभी इस मक़बरे में चद्दर चढ़ाने और चिराग़-बत्ती करने ज़रूर ही आवेगा, और इस दौलत को पा लेगा। मैं अब हिंदुस्तान छोड़कर मक्के शरीफ़ जाता हूँ।

अब्दुलग़फ़ूर उर्फ़ शैतानजंग।"

भाइयो! उस पत्र को और पत्र के नीचे के हस्ताक्षरों को देखकर मेरी क्या हालत हुई होगी, सो उसकी आप लोग कल्पना भी नहीं कर सकते। मेरी संपत्ति इस रीति से मुझे मिली, यह एक विचित्र योगायोग नहीं, तो और क्या है? 'अब्दुलग़फ़ूर' नाम तो आप लोगों ने कदाचित् ही सुना हो, किंतु 'शैतानजंग' नाम तो आप सबों ने अवश्य ही सुना होगा। शैतानजंग एक बड़ा विकट और बुद्धिमान् डाकू था। शैतानजंग कब, कहाँ से आकर और किस प्रकार से लूटेगा, इन सब बातों का कोई नियम न था। उसने चारो ओर अपने नाम की छाप बिठा रक्खी थी। जब मैं छोटा था, मेरी माता मुझे शीघ्र ही सुला देने के उद्देश्य से शैतानजंग आता है, जल्दी सो जा, आँखें मूँद ले, इत्यादि कहकर मुझे डराती थीं। जब तक मुझे इस संपत्ति का पता न था, क़ब्रस्तान में मेरा जी बड़ा उद्विग्न हो रहा था; किंतु जब मैंने सेंध लगाकर इस संपत्ति को देखा, तब बड़ा विस्मित हुआ, और वह शीशफूल प्राप्त करके अपने को धन्य भी माना था; किंतु अब, जब कि उपर्युक्त पत्र से यह प्रकट हुआ कि इस सभी संपत्ति का न्यायोचित मैं ही एकमात्र मालिक हूँ, तब तो मेरे हर्ष का पार न रहा, और इस सभी कार्य-क्रम को मैंने दैवी चमत्कार की शृंखलाबद्ध गति समझकर, ख़ुदा की इस मेहरबानी के लिये मन में धन्यवाद दिया। कहावत है कि "चंचला लक्ष्मी का मार्ग किसी ने नहीं जाना।" सो वही आज प्रत्यक्ष रीति से मेरे देखने में आया। मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि पिताजी के हाथों खोई हुई मरहूम चाचाजी की कुल संपत्ति इस प्रकार अकस्मात् ही मुझे मिल जायगी। वास्तव में उस्मान चाचा की दौलत की मुझे कोई भी आवश्यकता न थी; परंतु उस्मान चाचा का मेरे अतिरिक्त और कोई उत्तराधिकारी न था। कारण,

उनका इकलौता पुत्र, जो आयु में मुझसे बड़ा था, लड़ाई में काम आ चुका था. और इसीलिये वे मुझ पर अपने प्राणों से भी अधिक प्रेम रखने लगे थे। दूसरे, मेरे निर्व्यसनी और सच्चरित्र होने के कारण उन्हें पूर्ण विश्वास था कि मैं उनकी संपत्ति का सदुपयोग करूँगा, और इसीलिये उनकी हार्दिक इच्छा थी कि उनकी संपत्ति का मैं ही स्वामी बनूं। चाचा की मृत्यु के बाद उनकी यह सभी संपत्ति मेरे पिता मेरे लिये मुर्शिदाबाद से दिल्ली ला रहे थे, किंतु रास्ते ही में पिताजी को शैतानजंग ने लूट लिया, इसी कारण से पिताजी को और मुझे बड़ा संताप हुआ था। यद्यपि यह संपत्ति उस समय हमारे हाथ से जाती रही थी, और इसके पुनः इस प्रकार अचानक ही मिलने की कोई आशा भी न थी, तथापि मेरे पिता ने अपने मरहूम भाई के स्मरणार्थ कितनी ही जीर्ण मसजिदों का जीर्णोद्धार कराया था, और अनेक स्थलों पर उनके नाम से धर्मशालाएँ और कुएँ तैयार कराए थे। अब इस संपत्ति के मिलने से मुझे अपूर्व आनंद हुआ, और मन में इच्छा हुई कि अब मैं अपने पूज्य चाचा के इच्छानुसार इस संपत्ति से एक भारी धर्म-कार्य करूँगा। स्वभावतः मेरे मन में यह भी आया कि मेरी सहधर्मचारिणी दिलारा भी यह सब जान बड़ी प्रसन्न होगी। अपने कानों सुने हुए वज्रघात-तुल्य दुःखद समाचार से ऐसे आनंदप्रद फल को प्रकट हुआ देख उसके हर्ष का पार न रहेगा। इस अद्भुत धनागार के निरीक्षण से छुट्टी पाते ही मैं फिर अपनी माता-पिता की क़ब्रों के पास गया, और फिर वहाँ से बाहर निकलने के लिये सीढ़ियाँ चढ़ने लगा।

तीसरा प्रकरण

नवजीवन

दो-चार सीढ़ियाँ चढ़कर जब थोड़ा ऊपर पहुँचा, तो देखा कि सूर्य का प्रकाश फैल रहा है; किंतु जब मैं उस सीख़चोंवाले दरवाज़े पर पहुँचा, तो देखा कि सूर्य आकाश में बहुत ऊँचा चढ़ गया है, और क़ब्रस्तान में बहुतेरे लोग दफ़न-विधि के लिये इधर-उधर फिर रहे हैं। अब तक मेरा मन दिलारा के देखने के लिये बड़ा ही उतावला हो रहा था; किंतु अब सूर्य का वह उज्ज्वल प्रकाश और क़ब्रस्तान में लोगों की भीड़ देखकर मेरे मन में बड़ी लज्जा उत्पन्न हुई, और मैं फिर दरगाह में उतर गया। कहाँ तो मेरे हृदय में यह तीव्र उत्कंठा थी कि कब मैं घर पहुँचूँ, और अपनी प्यारी दिलारा से मिलकर, मरीना को गोद में ले उसके कोमल गालों के चुंबन से अपनी छाती ठंडी करूँ, और कहाँ अब मैं लज्जित होकर उलटा फिर मक़बरे में उतर गया! मेरे मन में यह विचार उठा था कि जब मैं रास्ते पर क़दम रक्खूँगा, तो लोग मुझे बड़े ही आश्चर्य की दृष्टि से देखेंगे, और एक मृत व्यक्ति को इस प्रकार शहर में घूमते-फिरते देख नाना प्रकार की चर्चा करेंगे। अस्तु, उस समय इसी कारण से मैं मक़बरे के बाहर न गया, और वहीं बैठकर सोचने लगा कि अब सारा दिन कैसे व्यतीत किया जाय।

विचार करते-करते जब बहुत देर हो गई, और दोपहर के समय पेट में भूख की आग ख़ूब दहक उठी, तब अचानक मुझे यह युक्ति सूझी कि किसी प्रकार अपना वेष बदलकर शहर में प्रवेश करूँ, और यदि बन सके, तो उसी स्थिति में घर भी पहुँचूँ। यह तो आप लोग जानते ही होंगे कि जहाँ प्रेम अधिक होता है, वहाँ संशय की गंध भी अधिक रहा

करती है। मेरा दिलारा पर बड़ा प्रेम था। उसका भी मुझ पर बड़ा प्रेम था; किंतु कितनी ही बातों की परीक्षा बिना प्रसंग पड़े नहीं होती। जब तक पीतल कसौटी पर नहीं कसा जाता, तब तक स्वर्ण के नाईं प्रतीत होता है। स्त्री के लिये वैधव्य के समान और कोई दुःख नहीं होता। लोगों की दृष्टि से दिलारा पर यह महादुःख आ पड़ा था। अस्तु मुझे यह देखने की अनिवार्य इच्छा हुई कि देखूँ इस वैधव्य-दुःख से दिलारा की कैसी अनुकंपनीय स्थिति हो गई है। मुझे विश्वास था कि मारे दुःख के दिलारा को उन्माद हो गया होगा; किंतु उसकी वह शोकार्त स्थिति देखकर मेरे अंतःकरण में एक प्रकार से हर्ष ही उत्पन्न होने को था, और मेरे हृदय में ऐसी पति-भक्ता स्त्री पाने के लिये अभिमान उत्पन्न होता। अस्तु, इसी कारण से मैंने उसकी यह प्रेम-परीक्षा करने का निश्चय कर लिया। इस कल्पना के उठते ही मेरा हृदय बड़ा उत्साहित हुआ, और मैं अपने वेषांतर करने की तैयारी करने लगा। क़ब्रस्तान की टूटी-फूटी और अति जीर्ण क़ब्रों की दीवारों में कोयले की कमी न थी। मैंने झट कोयले के थोड़े-से टुकड़े ढूँढ़कर एक पत्थर पर घिसे, और इस प्रकार तैयार किए हुए काले रंग से अपने चेहरे और हाथों-पाँवों के पंजे रँग लिए, और फिर अपने उस फटे-पुराने शाल के कफ़न को ओढ़कर मैं यमुना की ओर चल पड़ा।

जब से दिल्ली-शहर में काले बुख़ार का रोग आरंभ हुआ था, तब से शहर की अधिकांश दूकानें यमुना-किनारे ही लगा करती थीं। आप लोग यह तो जानते ही होंगे कि यमुना नदी शहर से ढाई-तीन मील की दूरी पर बहती है, और इसीलिए शहरवालों की सुविधा के लिये यमुना से एक नहर निकालकर शहर में लाई गई है। मैंने यह निश्चय किया था कि पहले मैं यमुना किनारे बाज़ार में जाकर कुछ पेट-पूजा करूँ। फिर कोई भी मुझे न पहचान सके, ऐसा वेशांतर करने के पश्चात् अपने घर में प्रवेश करूँगा। दरगाहवाले फ़क़ीरों की कृपा से मैं कितनी ही चामत्कारिक ओषधियाँ भी जान गया था। जिस प्रकार सफ़ेद बालों को काला

कर सकते हैं, उसी प्रकार काले बालों को भी कुछ ओषधियाँ लगाकर सफ़ेद बना सकते हैं, और मैं यह ओषधियाँ जानता था। यमुना-किनारे-वाले बाज़ार से मैंने ये ओषधियाँ ख़रीदीं, और थोड़ी दूर पर एकांत देख बैठ गया। इन औषधियों को योग्य रीति से आपस में मिलाकर मैंने बालों पर लेप कर लिया। लगभग एक घंटे बाद मैंने केशों पर से दवा धो डाली, तो मेरे बाल उज्ज्वल श्वेत वर्ण के हो गए। अब मैं अपने चेहरे का फेर-फार देखने के लिये फिर बाज़ार में घुसा, और एक तँबोली की दूकान के सामने जा खड़ा हुआ। वास्तव में मुझे पान खाने की कोई आवश्यकता न थी; किंतु शीशे में अपना रूप अवश्य देखना था। तँबोली की दूकान में लगा हुआ शीशा बड़ा था, और उसमें मेरे पूरे शरीर का प्रतिबिंब दिख रहा था। उस समय का अपना चामत्कारिक रूप-रंग देखकर मैं स्वयं ही अपने को भूल-सा गया। उस समय मैं एक पचास-पचपन वर्ष का वृद्ध दिखता था, फिर भी शाल के अंदरवाले कपड़ों से मेरे ऊपर शहादतअली होने की कुछ शंका की जा सकती थी। अस्तु, यह अड़चन दूर करने के निमित्त मैं एक पुराने कपड़े बेचनेवाले की दूकान पर पहुँचा। दूकानदार वृद्ध था, और हुक़्क़ा गुड़गुड़ाता हुआ ग्राहकों की बाट जोह रहा था। मुझे देखते ही उसने सलाम किया, और गद्दी पर बैठाकर हुक़्क़ा मेरे सामने कर दिया। हुक़्क़ा स्वीकार करते हुए मैं बोला—"एकाध मुर्शिदाबादी नवाबी अँगरखा हो, तो मुझे दिखाओ। पुराना हो, तो कोई हर्ज नहीं, मगर होवे साबित, फटा या मैला न होना चाहिए।"

"ख़ुदा-ख़ुदा कीजिए साहब ! फटे या गंदे कपड़े मैं अपनी दूकान पर रखता ही नहीं हूँ। यह पुराने कपड़ों की दूकान कहलाती है, मगर इससे आप यह न समझें कि मैं चिथड़े-गुदड़े बेचता हूँ। मेहरबान ! जो ऐसा किया जाय, तो शरीफ़ लोग दूकान पर क्यों खड़े हों, और फिर मेरी दूकान ही कैसे चले ?"

"हाँ-हाँ, सच है। अच्छे कपड़े न रखिएगा, तो दूकान कैसे चला-

इएगा ? और फिर आजकल तो शहर में काले बुख़ार का ज़ोर होने की वजह से आपको अच्छे-अच्छे कपड़े थोड़ी ही क़ीमत में मिल जाते होंगे। सच्ची बात है न ?"

'आप बजा फ़रमाते हैं। ऐसे ज़माने में क़ीमती-से क़ीमती कपड़े भी थोड़े ही दामों में मिल जाया करते हैं; मगर जनाब ! यह फ़ायदा तो आजकल उन्हीं को मिल रहा है, जिन लोगों की दूकानें शहर में हैं। कोई ग्राहक न होने की वजह से फ़िलहाल तो पुराने कपड़े का बाज़ार एकदम गिर गया है।"

"आपकी दूकान में भी इस काले बुख़ार के किसी मरीज़ का एकाध कपड़ा होगा ?"

वृद्ध दूकानदार खिलखिलाकर हँसता हुआ बोला—"क्या आप भी इस बुख़ार से डरते हैं जनाब ? अजी साहब ! मौत के डर से भागकर आप बचेंगे कहाँ ? और फिर अब कितने दिन की ज़िंदगी बाक़ी है ? यह आपके बाल पक ही चुके हैं, और मैं भी सफ़ेद बना बैठा हूँ; फिर इस बुढ़ापे में आप मौत से इतना क्यों डरते हैं ?"

हैं ! बुड्ढा क्या कहता है ? क्या मैं भी उस ही के जैसा वृद्ध हूँ ! भले ही कहता रहे, उस बुड्ढे ने मेरे-जैसे पच्चीस वर्ष के तरुण को साठ वर्ष का बुड्ढा बताया, इसके लिये मुझे कुछ भी बुरा न लगकर उलटा आनंद ही हुआ। दुनिया में जहाँ-तहाँ लोग अपनी वृद्धावस्था छिपाने के लिये अनेकानेक प्रकार के प्रयत्न करते हैं—कोई बालोंको काला करने के लिये ख़िज़ाब लगाते हैं, कोई अपने दाँत बनवाते हैं, कोई औषधियाँ खाते हैं, कोई नाना प्रकार की युक्ति-प्रयुक्तियों द्वारा अपने वृद्ध शरीर को तरुण दिखाने का प्रयत्न करते हैं। किंतु उस दिन एक मैं था, जो अपनी तरुणावस्था छिपाने और वृद्धावस्था दिखाने के लिये उद्योग कर रहा था। मैंने अपने को इस उद्योग में सफल पाया, तो मन को बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने उस दूकानदार से कहा—"जनाब ! इस काले बुख़ार से मुझे अब बिलकुल डर नहीं रहा, क्योंकि मैंने उस पर फ़तह

पाई है। अभी दो ही दिन पहले इस काले बुख़ार ने मुझ पर हमला किया, और उसने मुझे हज़रत मलिक-उल-मौत के दरबार में ले जाने के लिये बहुतेरे पाँव फटफटाए, मगर मैं उसके भी सर पर निकला ! और; अब भला-चंगा ख़ुशी से घूमता फिरता हूँ। लेकिन मैंने जो आपसे कहा, वह सिर्फ़ इसीलिये कि लोग इस काले बुख़ार को छूत की बीमारी समझते हैं। इसी वजह से मैंने आपसे अर्ज़ किया था कि ऐसे बीमारों के कपड़े न होने चाहिए कि जिनसे दूसरों को इस मर्ज़ से तकलीफ़ पहुँचे। आपको दूकान में जो ऐसे मरीज़ों के कपड़ों के अलावा और भी कपड़े होंगे न ?"

"हाँ-हाँ साहब ! बहुतेरे कपड़े हैं। आप यह न समझें कि जब से यह नई बीमारी चली है, तभी से मैं यह नई दूकान खोलकर बैठा हूँ; मेरी दूकान बहुत पुरानी है। अजी साहब ! कहने को तो वैसे हज़ार बातें हैं, मगर कपड़ों से ही क्या होता है ? ख़ुदा के घर की आए बिना कोई भी नहीं मरता, जनाब ! फिर देखिए, बुड्ढों-ठुड्ढों पर इस काले बुख़ार का झपटा नहीं पड़ता; यह तो जवानों का गरमागरम ख़ून चाहता है। देखिए न, परसों ही के दिन हमारे दिल्ली-शहर में कैसा ग़ज़ब हो गया है ! पच्चीस साल का जवान पट्ठा बस थोड़ी ही देर में इस बुख़ार के मुँह में जा पड़ा !"

मैंने कहा—"आँह ! तो क्या हुआ ? ऐसे-ऐसे कितने ही नौजवान इस सपाटे में चल बसे होंगे, फिर एक को क्या गिनती ?"

बुड्ढे दूकानदार ने बड़े खेद से कहा—"जनाबआली ! मैंने जिस नौजवान का आपसे ज़िक्र किया है, वह किसी ऐसे वैसे नौजवानों में से न था। अजी साहब ! वह तो दिल्ली-शहर का हीरा था, हीरा ! अहा हा ! कैसा शरीफ़ और फ़ैयाज़ मर्द था ! जनाब ! शहादतअलीख़ाँ के फ़ौत हो जाने से सारा दिल्ली-शहर एक भारी सदमे में ग़र्क़ हो गया है।"

मैं आश्चर्य दिखलाता हुआ बोल उठा "शहादतअलीख़ाँ ! शहादतअलीख़ाँ कौन था भला ?"

"जान पड़ता है, आप कहीं बहुत दूर से आए हैं। इस सूबे-भर में ऐसा एक बच्चा भी ढूँढ़े न मिलेगा, जो शहादतअलीख़ाँ का नाम न जानता हो। वह दिल्ली-शहर का करोड़पती सेठ, और बादशाह औरंगज़ेब तक का साहूकार था। शहादतअली सिर्फ़ अमीर होने की ही वजह से नामी न हुआ था, बल्कि उसने अपना नाम अपनी फ़ैयाज़ी से पैदा किया था। ग़रीब-ग़ुरबों पर तो उसकी बड़ी ही मुहब्बत रहती थी; दुखी-बीमारों को देखकर तो उसकी आँखों में आँसू भर आते थे। इस काले बुख़ार के ज़माने में उसने कितने ही लावारिस मुर्दों को अपने ख़र्च से दफ़न किया था, और वक़्त पड़ने पर ख़ुद अपने हाथों से मैयत दफ़न करता था।"

मैंने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—"अरे रे! तब तो मैं बड़ा ही कमनसीब हूँ कि ऐसे नेकनीयत और शरीफ़ जवान को मैं एक बार देख भी न सका! ओ हो! ऐसे बंदे ख़ुदा का भी इस काले बुख़ार ने न छोड़ा! मरज़ी ख़ुदा की!"

"जनाब! दरअसल उस पर ख़ुदा की मेहरबानी ही थी। उसके इंतक़ाल से बेचारे ग़रीब-ग़ुरबों का तो बेशक बड़ा भारी नुक़सान हुआ है, लेकिन उसकी मौत उसके ख़ुद के लिये एक तौर पर बहुत ही अच्छी हुई कि बेचारा वह ख़ुद इन दुनियावी झगड़ों से छुट्टी पा गया। जनाब इस दुनिया में जितनी ख़ुशियाँ हैं, उतने ही ग़म भी हैं। उस बेचारे के मुक़द्दर में दुनियावी ख़ुशियाँ तो थीं ही नहीं, इसीलिये मैं कहता हूँ कि यह ख़ुदा की ख़ास मेहरबानी ही थी कि जो इस दुनिया से उसका ताल्लुक़ इतनी सी ही उम्र में टूट गया।"

वृद्ध की यह बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उस समय संशय-रूपी पिशाच ने मुझे ऐसा भरमाया कि सभी बातें जान लेने की इच्छा से मैंने उस बुड्ढे से प्रश्न किया—"आप ऐसा क्यों कहते हैं साहब?"

बुड्ढे ने तिरस्कार दर्शाते हुए कहा—"क्या कहूँ ख़ाँ साहब! कुछ कहा नहीं जाता। किसी ने पूछा कि 'बड़ा घर कैसा?' तो कोई साहब

बोले कि 'पोला, बाँस-जैसा।' हाँ, ख़ाँ साहब! इसमें रत्ती-भर भी झूठ नहीं है। शहादतअलीख़ाँ तो लाखों में एक था; लेकिन उसकी बीबी, वह दिलारा, तो पूरी हैवान है, हैवान! शहादतअलीख़ाँ ने उसके साथ शादी करके ख़तरनाक भूल की। बेशक दिलारा बड़ी ख़ूबसूरत है, लेकिन शहादतअलीख़ाँ दिलारा से भी ज़्यादा ख़ूबसूरत और अक़्लमंद था, और उसके बदन की बनावट भी बड़ी सुडौल थी; मगर नापाक दिलारा अपने ऐसे अच्छे ख़ाविंद के साथ भी दग़ाबाज़ी से पेश आती थी। दिलारा की बदचलनी शायद शहादतअलीख़ाँ ने भी जान ली हो; मगर बहुतेरे लोग ऐसे होते हैं कि ऐसे गंदे मुआमलात दबाए ही रहते हैं, और अपनी लाख की मुट्ठी खोल लीख की नहीं बनाते।"

अपने ही सामने अपनी परमप्रिय दिलारा की निंदा होते हुए सुन मुझे बड़ा क्रोध चढ़ आया। मेरे मन में आया कि इस दुःसाहस के लिये कुटिल बुड्ढे को अवश्य ही कुछ शिक्षा दी जानी चाहिए, परंतु उस समय मैं उस बुड्ढे का वैसा शासन करने के सर्वथा ही अयोग्य था। कारण, उस समय मैं अपनी मृतावस्था में था! आप लोग यह जानते ही हैं कि एक मृत व्यक्ति किसी जीवित व्यक्ति को शिक्षा देने में सर्वथा असमर्थ है। मुझे प्रतीत हुआ कि बुड्ढा दूकानदार लोक-भ्रम का आखेट बन रहा है, और बाज़ारू गपोड़ों को ही ब्रह्म-वाक्य की नाईं सत्य मान लेता है। मेरी धारणा थी कि मेरी पत्नी के जैसी अत्यंत सुंदर ललनाओं के विषय में साधारणतः अनेकानेक असत्य लोकापवाद फैल जाया करते हैं, किंतु वस्तुतः तथ्य कुछ भी नहीं होता। अस्तु, बुड्ढे को एक कड़ा उत्तर सुनाकर चुप कर देने की इच्छा से मैं बोला—"नौजवान और ख़ूबसूरत औरतों के बाबत, उनके ख़ाविंदों के इंतक़ाल के बाद, जो चाहे सो कहकर उन्हें बदनाम करने में कोई रोक-छेड़ रह नहीं जाती है, इसलिये आप दिलारा की बाबत जो चाहे, उड़ा सकते हैं, लेकिन आज को अगर उसका ख़ाविंद ज़िंदा होता, तो उस बेचारी के बाबत आप ऐसे लफ़्ज़ मुँह से निकालने की हिम्मत न कर सकते।"

मेरी नाईं वह बुड्ढा भी कुछ उत्तेजक स्वर से बोला—"बेचारी? अजी साहब! 'बेचारी' कैसी? वह तो पक्की बदकारा है, बदकारा। 'बेचारा' तो था शहादतअलीख़ाँ, जो इस दुनिया से चल दिया है। जनाब ख़ाँ साहब! इस दुनिया में दौलत और ख़ाविंद के साए तले औरतें जो चाहें, सो घुटाला कर सकती हैं; मगर जब ख़ाविंद का साया सर पर से उठ जाता है, तो सारा भंडा फूट जाता है। नापाक दिलारा तो ऐसे कमीने दिल की है कि उसने अपने ख़ाविंद का सूतक भी न माना होगा!"

बस, अब तो मुझे बुड्ढे पर बड़ा क्रोध चढ़ आया। साथ ही उस बेचारे की मिथ्या कल्पना-सृष्टि पर दया भी आई। अस्तु, यह सोचकर कि उस पर क्रोध उतारने से कोई लाभ न होगा, मैं फिर बोला—"जाने भी दो यार! हम लोगों को दूसरों से क्या मतलब? मैं एक अच्छा अँगरखा ख़रीदने के लिये आपकी दूकान पर आया हूँ, यह आप भूल गए क्या?"

"सो कैसे भूल सकता हूँ साहब! आप मेरे हमउम्र हैं, इसीलिये आपसे बातचीत करने की तबियत हो आई, फिर मुझे कुछ ज़्यादा बोलने की आदत-सी है, जो कहता हूँ, सो सब साफ़-साफ़ और खरी-खरी सुना देता हूँ; चाहे किसी को तीखी भले ही लग जाय। लोग कहते हैं, मैं सठिया गया हूँ, सिड़ी-दिवाना हो गया हूँ, लेकिन ख़ाँ साहब, सच तो यह है कि औरतों को मैं हिक़ारत की नज़र से देखता हूँ। उस बहिश्ती मुहब्बत और ख़ूबसूरती ने मेरे जिगर में जो घाव पैदा कर दिए हैं, वे मैं ताज़िंदगी न भूलूँगा। मेरी गुनहगार बीवी मुझसे पहले ही मर गई है; क़िस्मतवाला तो शहादतअलीख़ाँ ही निकला, जो अपनी बीवी से पहले ही इस दुनिया से कूच कर गया। ओहो! दिलारा की बदकारियों ने जो ज़हरीले छाले शहादतअलीख़ाँ के जिगर में पैदा किए थे, वे आख़िर मौत ने ही दूर किए? कहिए, ख़ाँ साहब! आपकी बेगम साहबा तो ख़ूबसूरत और रसीली हैं न?"

बुड्ढे की इस बात पर जितना मुझे क्रोध चढ़ा, उतनी ही हँसी भी

आई। मैंने कहा—"मैं तो अब बुड्ढा हुआ, इसलिये इश्क़ और रसीलेपन को पास भी नहीं फटकने देता। शहादतअलीख़ाँ के बाबत जो आपने हमदर्दी ज़ाहिर की है, वह अगर ख़ुद शहादतअलीख़ाँ ने ही अपने कानों सुनी होती तो, मेरे ख़याल से, वह ज़रूर ख़ुश होने की एवज़ अफ़सोस में ही पड़ जाता।"

बुड्ढा अँगरखा उठाने के लिये जाता ही था, किंतु मुझे प्रत्युत्तर देने के लिये फिर रुक गया, और बोला—"न जनाब! आप भूलते हैं। मेरी बातें सुनकर शहादतअलीख़ाँ न तो ख़ुश होता और न अफ़सोस ही करता, बल्कि मेरी हमदर्दी से कुछ नसीहत हासिल करता, और फिर किसी दूसरे ही रास्ते को पकड़ता। अजी साहब! हम-आप-जैसे बुड्ढे तो इन नौजवानों के लिये नसीहत की किताबें हैं। मैं यह नहीं कहता कि औरतें ख़ूबसूरत न होनी चाहिए; न मैं कहता हूँ कि खूबसूरत होवें, और ख़ूब ख़ूबसूरत होवें; मगर उस ख़ूबसूरती में सादगी और सदाक़त होनी चाहिए, न कि ज़हर और नशा। मेरी बीवी ने मुझे इश्क़ का ख़ूब ही सबक़ पढ़ाया था। मरी बीवी थी तो बड़ी ही ख़ूबसूरत, मगर उसकी नज़र बड़ी ही ज़हरीली थी, और यह तो आप जानते ही होंगे कि दिल में हलाहल हुए विना आँखें हरगिज़-हरगिज़ ज़हरीले तीर छोड़ नहीं सकतीं। बेवक़ूफ़ नौजवान इन्हीं ज़हरीले तीरों को 'प्यारी चितवन' और उस ज़हर को 'हज़रत-ए-इश्क़ की छाप लगी हुई सच्ची मुहब्बत' कहकर उस ज़हरीली ख़ूबसूरती के शिकार बन जाते हैं। अजी! मुझसे और दिलारा से कोई दुशमनी थोड़े ही है, जो मैं उसे यों ही बदनाम करता होऊँ। मैंने तो उसे सिर्फ़ एक ही बार देखा है। और उसी वक़्त से मैं जानता हूँ, जैसी वह है। चाँदनी-चौक में मेरे भाई की ज़रीनी कपड़ों की एक बड़ी दूकान है; एक दिन मैं उसी दूकान पर बैठा था कि सामने से बड़े-बड़े घोड़ों की जोड़ी जुती हुई एक गाड़ी दौड़ती हुई आई; गाड़ी परदों से ढकी थी। रास्ते में एक छोटा बच्चा खेल रहा था, उसे जो इस दौड़ती हुई गाड़ी का धक्का लगा, तो फ़ौरन् नीचे गिर गया, और

ज़ोरों से चीख़ मार-मार रोने लगा। गाड़ी में कोई दूसरा होता, तो वह फ़ौरन् गाड़ी खड़ी कराता, और उस बच्चे की पोंछ-पुचकार करता, मगर उसमें तो थी संगदिला दिलारा, बस उसने परदा ऊँचा उठाया, और चारो तरफ़ अपनी मदमाती नज़र फेंकने लगी। अगर उस वक़्त गाड़ी में शहादतअलीख़ाँ होता, तो ज़रूर गाड़ी पर से कूद पड़ता, और उस बच्चे को अपने सीने से लगाकर ठंडा करता। बच्चे के गिरते ही मैं दूकान पर से कूदा, और दौड़कर उसे गोद में ले लिया; उसी वक़्त दिलारा की ओर मेरी नज़रें चार हुईं; और उसे देखते ही मुझे मेरी मरी बीवी याद हो आई। मेरी बीवी की आँखें भी दिलारा की जैसी ही कटीली थीं, और उसका चेहरा भी दिलारा के जैसा ही मदमस्त था। तभी मैंने समझ लिया था कि दिलारा और शहादतअलीखाँ में ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। आहा! कहाँ तो वह फ़रिश्ता सूरत शहादत और कहाँ यह शैतान की ख़ाला दिलारा! अजी, ख़ुदा ख़ुदा कीजिए साहब! कहाँ तो वह मुजस्सिम रहम और सदाक़त, और कहाँ यह बेरहमी और दग़ा की बुत! ख़ैर, जाने दो यार! इन बातों को। मेरा दिमाग़ तो ऐसी बातों से बड़ा परेशान हो जाता है।"

उस बुड्ढे पर मुझे दया ही आई। बेचारे को दुराचारिणी स्त्री मिली थी, इसीलिये उसकी स्थिति ऐसी विचित्र हो गई थी। उसकी स्त्री तो मर ही गई, किंतु उस बेचारे को सिड़ी बना गई! हाँ, संभव है, दिलारा की गाड़ी के धक्के से कोई छोटा बच्चा गिर गया होगा, और बहुत संभव है, उसने अपनी गाड़ी खड़ी भी न की हो। कोई आवश्यकीय कार्य रहा होगा, और जल्दी के मारे बच्चे पर ध्यान न दिया होगा, तो इसमें क्या हुआ? क्या इतने ही से उसे निर्दय समझ लेना चाहिए? नहीं, कदापि नहीं। और; फिर इस बुड्ढे के पास उसकी निष्ठुरता के प्रमाण भी क्या ख़ूब हैं कि उसका मनमोहना मुख-मंडल और उसकी रसीली अँखियाँ! वाह रे बुड्ढे! वाह!! क्या ही अकाट्य प्रमाण दिए हैं! वाह!! यही सब अपने मन में सोचकर बुड्ढे की मूर्खता पर मुझे

बड़ी दया आई। मैं कुछ क्रोधयुत हो बोला—"जनाब! आपको दूसरों के झगड़ों में पड़ने से क्या सरोकार? आप तो अपना रोजगार देखिए, रोजगार। फिर जो वक़्त बचे, उसे अल्लाह की इबादत में लगाइए; ऐसी बेहूदा बातों में पड़कर आप क्यों अपना कीमती वक़्त ज़ाया करते हैं? ऐसी बातों के लिये यह बुढ़ापा नहीं है। उठिए, मुझे एकाध मुर्शिदाबादी अँगरखा दिखा दीजिए, और नहीं तो मुझे रुखसत दीजिए।"

बुड्ढा कुछ खिन्न स्वर में बोला—"ओहो! मैं तो भूल ही सा गया था!! माफ़ कीजिएगा; मैंने पहले ही अर्ज़ की थी कि मुझे ज़रा बोलने की आदत ज़्यादा है और फिर आप-जैसे हमउम्र मिल गए। आपको ज़िंदादिल पाकर मेरी ज़बान ने सहज ही दूना रंग बाँधा। क्या करूँ जनाब! आदत से मजबूर हूँ; भला वहम और आदत की भी कोई दवा होती है?" इस प्रकार कहकर बुड्ढे ने अलमारी में से ज़री के काम का एक सुंदर नवाबी अँगरखा निकाला, और मेरे हाथ में देकर बोला—"जैसा आपको चाहिए, वैसा ही यह अँगरखा है। आपके बदन में भी ठीक आएगा। देखिए, नया है, बिलकुल नया; न-जाने बेचारा दो दिन भी पहन पाया है कि नहीं, और कौन जाने फिर पहना है कि कभी पहना भी नहीं?"

तुरंत ही मैं बोला—"इस अँगरखे का मालिक इस बीमारी से मर गया है क्या?"

बुड्ढा हँसते हुए बोला—"हाँ, बीमारी से ही मरा है; मगर इस काले बुख़ार की बीमारी से नहीं; वह मरा है इश्क़ की बीमारी से। यह इश्क़ की बीमारी कितनी ख़तरनाक होती है, यह आपको नहीं मालूम। दरअसल, यार! आप तो बड़े ही मुर्दादिल मालूम होते हैं।

अजी साहब सुनिए—

ज़िंदगी ज़िंदादिली का नाम है;
मुर्दादिल क्या ख़ाक जिया करते हैं?

अगर आप शायर बन जायँ, तो बेशक यह बीमारी आप पर भी

सवार हो जायगी। मुर्शिदाबाद के एक सरदार ने यह अँगरखा ख़ास अपनी शादी के लिये तैयार कराया था। दिल्ली के एक सिपहसालार की लड़की के साथ उनकी शादी तय हुई थी। उस लड़की ने सरदार साहब से कहला भेजा था कि "जो आपके साथ मेरी शादी न होगी, तो मैं पगली हो जाऊँगी या ज़हर खाकर जान दे दूँगी।"

सरदार से उसने अपना यही हाल ज़ाहिर किया कि—

खुदा शाहिद किसी की और उल्फ़त हो;
तुम्हीं पर जान देते हैं, तुम्हीं पर दम निकलता है।

वह ख़बर सुनकर बेचारा सरदार लड़ाई से छुट्टी पाते ही शादी के लिये दिल्ली दौड़ा आया; मगर यहाँ आकर देखता क्या है कि जो नाज़नी अपने लिये जान क़ुर्बान करने को कहती थी, वही अब दूसरे की बीवी बनी बैठी है! चलो, बस, हो चुका।

शीशा आया न कोई हाथ न साग़र पाया;
साक़िया ले तेरी महफ़िल से चले भर पाया।

बेचारे सरदार के दिल में इस वाक़ए से बड़ा धक्का लगा। सच है कि—

वादा आसान है, वादे की वफ़ा मुश्किल है।

उसे रह-रह कर यही ताज्जुब होता था कि—

उड़ गई यों वफ़ा ज़माने से;
कभी गोया किसी में थी ही नहीं।

और बेचारे ने क़स्द कर लिया कि—

हम तेरे आरज़ू पै जाते हैं;
यह नहीं तो ज़िंदगी ही नहीं।

बेचारे को कैसा करारा धोखा दिया; मगर उसने इसका किसी से भी शिकवा व गिला न किया। वह तो अपनी ज़बान से यही कहता था कि—

शिकवा न यार से न शिकायत रकीब से;
जो कुछ हुआ खुदा से हुआ या नसीब से।

मगर जनाब ! मेरे पास तो उसके लिये यही नसीहत थी कि—

राह पर आए न थे तुम कि वह रस्ता छूटा ;
तुमको सौदा न हुआ था चलो सस्ता छूटा ।

लेकिन वह हज़रत लीमजों मेरी मानने ही क्यों लगे थे। जब उसकी वादा-शिकनी का गिला करते, तो बस यही कहते कि—

यही इक़रार यही क़ौल यही वादा था ;
ओ दग़ाबाज़, फँसूँसाज़, मुकरनेवाले ?
हश्र में लुत्फ़ हो जब उनसे हों दो-दो बातें ;
वह कहें 'कौन हो तुम ?' हम कहें 'मरनेवाले ।'

फिर वह उसी नाज़नी के इश्क़ में पागल बनकर, उसी की मुहब्बत के गाने गाते-गाते भागीरथी में डूब मरा।

क्यों ख़ाँ साहब !

इस तरह जिसकी टूटी हो उमेद ;
नाउमेदी उसकी देखा चाहिए ।

ख़ैर, इश्क़ के रँगीले की इश्क़ ही से मौत हुई, यह भी उसका कुछ मुक़द्दर ही था ! और.........

उस बुड्ढे को अधिक न बोलने देकर मैं बीच ही में बात काटकर बोल उठा—"जनाब ! इस अँगरेखे की जो क़ीमत हो सो पहले बतला दीजिए, फिर कुछ दूसरी बात चलाइएगा ।"

मानो बुड्ढे को अब होश आया है, ऐसा भाव दिखाते हुए वह बोला—"मेहरबान ! माफ़ कीजिएगा, मैं भूल ही गया था। जनाब ! यह अँगरखा मैंने तीस रुपए में ख़रीदा था; पचास रुपए में भी आप ऐसा अँगरखा दूसरी जगह नहीं पा सकते; कम-से-कम चालीस रुपए तो आप इस अँगरखे के दे ही दीजिए ।"

वह अँगरखा बिलकुल नया ही था, और उसका मूल्य पचास-साठ रुपए से कदापि कम न होगा। अस्तु, मैंने दाम ठहराने में व्यर्थ झायँ-झायँ करना उचित न समझा, और बुड्ढे के हाथ में तीन अशरफ़ी रख

दीं। उन मुहरों को परखकर बुड्ढा हँसता हुआ बोला— "पाँच रुपए वापस देने चाहिए ?"

"न, मुझे न चाहिए। सिर्फ़ थोड़ी जगह मुझे बतला दीजिए कि मैं यह कपड़े बदलकर अँगरखा पहन लूँ।"

"अजी हाँ, बड़े शौक़ से साहब ! गो कपड़े बदलने के लिये कोई ख़ास जगह इस दूकान में मुक़र्रर नहीं है, मगर फिर भी जब कभी कोई परदानशीन औरतें कपड़े देखने के लिये आती हैं, तो मैं उन्हें इस कमरे में बिठाकर दूकानदारी चलाता हूँ; आइए, आप भी इसी कमरे में कपड़े बदल लीजिए।" बुड्ढे ने मुझे वह कमरा दिखाया। मैंने वहाँ जाकर कपड़े बदले। उस कमरे में एक बड़ा दर्पण लगा था। मैंने उसमें अपना बदला हुआ वेष देखा। यह देखकर मुझे परम आश्चर्य हुआ कि अपने बदले हुए वेष को देखकर मैं स्वयं ही अपने को नहीं पहचान सकता ! इससे मुझे संतोष हुआ, और हृदय में ऐसा कोई डर न रहा कि कोई मुझे पहचान तो न लेगा ? एक दिन-भर के बुख़ार के मारे और मिट्टी में दफ़न हो जाने के कारण मेरे चेहरे का तेज भी बहुत ही कम हो गया था, आँखें भीतर घुस गई थीं, और गाल बैठ गए थे, इसलिये और भी मैं बिलकुल बदल गया था। जिस दर्पण में मैं अपना यह परिवर्तित वेष देख रहा था, वह बिल्लौरी काच का था, और एक नक़्क़ाशी के कामदार चौखटे में जड़ा था; चौखटे का काम बड़ा बढ़िया था। मैं दर्पण का निरीक्षण करते-करते बुड्ढे से पूछ बैठा—"शीशा तो बड़ा बढ़िया है। कहिए इसे आप कहाँ से लाए थे ?"

मेरे प्रश्न का समुचित उत्तर न देकर बुड्ढे ने फिर वही बड़बड़ लगा दी। बोला—"यह शीशा मेरी गुज़िश्ता हालत का गवाह है। मैंने जिस नागिन पर यक़ीन किया था, उसी के लिये यह आइना ख़रीद किया था। उसकी शराबे-हुस्न के नशे में उस वक़्त मैं ऐसा बदहोश था कि जिस चीज़ की फ़रमायश वह करती, वही चीज़ मैं उसी वक़्त उसके नज़र करता था। मेरा उस वक़्त यह ख़याल था कि जो मुझे प्यार करती

है, जिसका मेरे ऊपर पूरा यक़ीन है, और जिसको दूसरे मर्द की निगाह ज़हर मालूम पड़ती है, ऐसी दिलरुबा की फ़रमायश पूरी न करना सरासर अहमक़पन है; मगर तजुरबे में ठीक उल्टी बात हासिल हुई। यह आइना मेरे उस शैतानी ख़याल की यादगार है, और इसीलिये मैंने अब तक इसे रख छोड़ा है। बाक़ी सभी चीज़ें मैंने अपने शौक़ीन होते हुए भी जला डाली हैं, सिर्फ़ यह आइना ही मैंने रख छोड़ा है। और जनाब! ... ..."

वह बुड्ढा अपनी बड़बड़ न-जाने कितनी देर तक चलाए जाता, किंतु मैंने उसे बीच ही में टोककर थोड़ी मिठाई और शरबत लाने के लिये प्रार्थना की, और इसीलिये उसे रुक जाना पड़ा, और मैं फिर दर्पण में अपनी प्रतिमूर्ति देखने लगा। उस समय मेरे मन में सच्ची वृद्धावस्था के कितने ही प्रश्न उठने लगे—"वृद्धावस्था एक प्रकार से शरीर की विडंबना ही है। जिस वृद्धावस्था से स्वयं अपने मन में घृणा उत्पन्न होती है, ऐसी वृद्धावस्था के संबंध में यदि तरुण स्त्रियाँ तिरस्कार दिखाएँ, तो इसमें उनका कोई दोष नहीं। जब दिलारा जानेगी कि उस का पति मृत्यु के मुख से जीता निकला है, तब तो, अहा हा! उसके आनंद की सीमा ही न रहेगी। परंतु जब वह देखेगी कि मैं वृद्ध हो गया हूँ, तो क्या वह मेरा तिरस्कार करेगी? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। कदाचित् उसने किसी दूसरे से आँखें लड़ा लीं, तो? अजी नहीं, वह अपना अंतःकरण तो फँसा ही नहीं सकती! मेरा पति जीवित है, बस इस एक ही बात से वह अन्य भाव भूल जायगी, और फिर यह विचार करने का प्रयोजन ही न रहेगा कि मेरा पति पहले ही जैसा तरुण है या वृद्ध। दिलारा! साध्वी दिलारा! जिसे तेरी एकनिष्ठा का अनुभव मिला है, सो वह मैं इन भ्रममूलक लोकापवादों पर कदापि विश्वास नहीं रखता।"

पुराने कपड़े बेचनेवाला दूकानदार एक भ्रमित मनुष्य की नाईं जी में आया, सो कह गया, किंतु उसके कहने से दिलारा के संबंध में सहज

ही मेरे मन में एक भी शंका न हुई। मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि यह बुड्ढा बेचारा स्वयं ग़ोता खा गया है, इसीलिये दूसरों को भी इसी दृष्टि से देखता है। उस समय मेरा मन घर जाकर दिलारा की शोक-संतप्त मूर्ति देखने के लिये विह्वल हो उठा। मैं सोचने लगा, मेरी मृत्यु से कितना बड़ा दुःख हो रहा होगा; किंतु अब इस समय मेरे मन की ऐसी कुछ चामत्कारिक स्थिति हो गई है, मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि दिलारा के रुदन, दीर्घनिःश्वास और अश्रुपात से मुझे एक प्रकार आनंद का अनुभव होगा! उस समय मेरे हृदय में जो हर्ष-तरंगें उछलेंगी, वह मुझे विलक्षण सुख देंगी! मेरे यह श्वेत केश, बैठी हुई आँखों और निस्तेज मुख-मंडल पर कोई ध्यान न दे। जब वह मुझसे दृढ़ालिंगन करके मिलेगी, उस समय हम दोनो ही को जो आनंद होगा, वह शब्दातीत होगा। उस समय मुझे प्रतीत होगा कि जितना आनंद मेरे स्वयं के पुनर्जन्म से मुझे हुआ है, उससे भी कहीं अधिक आनंद मेरे जीने से मेरी दिलारा को हुआ है। इन सब सोच-विचारों और कल्पना-विकल्पनाओं के बाद एक बार फिर मैंने अपना प्रतिबिंब दर्पण में देखा, और फिर कोठे से दूकान में आया।

दूकानदार मेरे-जैसा भोला ग्राहक पाकर कुछ मज़े पर आ गया था। मेरे ही दामों से लाई हुई मिठाई और शर्बत से वह मेरी ही मेहमानदारी करता था। हम दोनो-के-दोनो मिठाई पर हाथ फेर रहे थे कि बीच ही में वृद्ध दूकानदार मेरी ओर देखकर बोला—"इतनी ज़ईफ़ी में भी जब आप ऐसे ख़ूबसूरत हैं, तब नौजवानी में तो आप लाखों में एक रहे होंगे! अब भी आपके बदन की गठन कैसी मज़बूत है! सच है, भरती जवानी में जो बदन को कस ले, और जवानी के नशे में चूर होकर सच्ची ताक़त न गँवावे, तो ज़ईफ़ी में फिर किसी दोस्त की क्या दरकार है?"

बुड्ढे की बातें सुनकर मुझे अमीरुद्दीन की याद हो आई। मैं सोचने लगा, मेरी मृत्यु-वार्ता जो उसके कानों में पड़ी होगी, तो वह बेचारा रो-रोकर बेहाल हो गया होगा; किंतु जब वह जानेगा कि मैं यमराज के

दरबार से मुक्त हो गया हूँ, तब तो उसके आनंद का पार ही न रहेगा, और जैसी भी स्थिति में वह बैठा होगा, सुनते ही मुझसे मिलने को दौड़ा आएगा। उस समय मित्र-प्रेम से मेरा हृदय भर आया, और उसी समय बुड्ढे ने मुझसे पूछा—"पान-तंबाकू मँगाऊँ क्या?"

बुड्ढे के हाथ में एक मुहर देते हुए मैं बोला—"हाँ-हाँ, मँगाइए, और थोड़ा इत्र और फूल भी मँगाइए।"

वृद्ध ने तत्काल एक आदमी भेजकर मेरे इच्छानुसार वस्तुएँ मँगा दीं। फिर मैं इत्र लगा, हाथ में फूलों का गजरा ले, बुड्ढे की आज्ञा लेने लगा, तो वह हँसते-हँसते बोला—"ख़ाँ साहब किसी के इश्क़ में मुब्तिला मालूम होते हैं!"

मैंने भी हँसी-हँसी में हामी भर ली। मेरी हामी सुनकर उसकी आँखों में एक प्रकार का तेज चमकने लगा, और वह कुछेक उत्तेजक शब्दों में बोला—"सँभालिएगा! भला!! जाइए, और जरूर जाइए, देर हो रही हो, तो दौड़ते-दौड़ते जाइए; मगर याद रखिएगा कि कहीं आप इश्क़ के चोचलों में पड़कर दीवाने न हो जायँ। ख़ूब होशियार रहिएगा; कहीं माशूक़ा आपके कलेजे का ख़ून न चूस जाय, चूँकि भोली सूरतवाली पानी के बदले ख़ून ही चूसने का काम अच्छी तरह जानती हैं। अगर वह आप पर 'बसीकरन' फूकने आवे, तो आप उसके दिल पर गहरी चोट पहुँचाए बिना हरगिज़ न रहिएगा।"

बुड्ढे के यह शब्द उस समय मुझे पागलपन के-से प्रतीत हुए। मैंने हँसते हुए उसे एक लंबी सलाम की, और दूकान से बाहर निकल शहर के रास्ते हो लिया। जब मैं 'बीच बजार' में पहुँच गया, बहुतेरे शहरी जान-पहचानवाले मिले, किंतु कोई भी मुझे पहचान न सका। मेरी जेब में दाम भी बहुत थे, और वेषांतर भी मैंने अच्छा कर रक्खा था। अस्तु, किराए की एक गाड़ी में बैठकर मैंने शहर में प्रवेश किया। संध्या व्यतीत होने में उस समय कुछ विलंब था। मैंने निश्चय कर रक्खा था कि चिराग़-बत्ती हुए बिना घर में पग न रक्खूँगा। शहर में उदासीनता

अब भी ज्यों-की-त्यों विद्यमान थी, और अब भी वह राक्षस काला बुख़ार अनेकानेक भेंटें ले रहा था। भला, एक दिवस का अंतर क्या अधिक हो सकता है ? तब भी मुझे व्यर्थ ही यह आशा थी कि इस एक दिन के अंतर में ही शहर की अवस्था अवश्य ही कुछ सुधरी होगी ! शहर के बड़े फाटक को पार करके दस-बारह घर भी न चल पाया होऊँगा कि दफ़न के लिये एक प्रेत घर से बाहर निकला हुआ रक्खा दिखाई दिया; उसके पास ही एक वृद्ध बैठा था। उस वृद्ध को पास बुलाकर मैंने धीरे से कहा—"देखो, अच्छी तरह देख लो, उस बेचारे की जान निकल गई या नहीं; जब यक़ीन हो जाय कि बिलकुल मुर्दा है, तभी दफ़न के लिये ले जाना। इस बीमारी के डर से बहुतेरों ने कई एक जीते हुओं को भी दफ़न कर डाला है।"

उस वृद्ध ने मुझे पागल समझकर वहाँ से हट जाने के लिये कहा। सत्य बोलना भी पागलपन है, यह मैंने उसी दिन सीखा, और वहाँ से आगे बढ़ा। जब शहर के एक बड़े चौरस्ते पर पहुँचा, तो वहाँ से मुझे मेरा मकान दिखाई देने लगा। एक बार तो मन में विचार हुआ कि सीधे घर को ही चला जाऊँ, दिलारा को व्यर्थ ही अधिक शोक-संताप क्यों दिया जाय। परंतु संध्या-काल के उपरांत गृह में प्रवेश करके उसे शोक-स्थिति में देखने पर ही मुझे विशेष आनंद मिलने को था। अस्तु, मैंने यही निश्चय किया कि थोड़ा समय और इधर-उधर घूमकर बिता दिया जाय। फिर मेरे मन में विचार हुआ कि समय तो अधिक है। चलूँ न, जब तक उस फ़क़ीरवाली दरगाह में ही हो आऊँ, और शहादतअलीख़ाँ की दफ़न-क्रिया इत्यादि के विषय में कुछ पूछ-ताछ कर लूँ। अस्तु, मैं दरगाह की ओर चल पड़ा, और वहाँ पहुँचकर मैं उस कोठरी के दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ, जिस कोठरी में मैं अपनी बीमारी के समय पड़ा था। बड़ी देर तक मुझे वहाँ खड़ा हुआ देखकर एक फ़क़ीर बाहर निकला, और मुझे सलाम करके बोला—"ख़ाँ साहब, मुर्शिदाबाद से आप अभी हाल ही आ रहे हैं क्या ? अगर आपके ठहरने का कोई इंतज़ाम न हो

सका हो, तो आप शौक़ से यहाँ रहें, और हम ग़रीबों की मीठी रोटी क़बूल करें।"

मैं उस फ़क़ीर को धन्यवाद देता हुआ दरगाह में गया। इधर-उधर देखते हुए मैं बोला—"कहाँ से मैं दिल्ली आ पहुँचा! मुझे तो ख़्वाब में भी ख़बर न थी कि दिल्ली-शहर में काले बुख़ार ने ऐसा ग़ज़ब ढा रक्खा होगा!! शहर में चारो तरफ़ धूल उड़ रही है, और अब तक मुझे कोई भी अपनी जान-पहचान का न मिला। आप जो मुझे थोड़ी जगह देकर रोटी-पानी का इंतज़ाम कर देंगे, तो मैं आपका निहायत ममनून व मशकूर होऊँगा।"

फ़क़ीर ने कहा—"वाह जनाब, इसमें अहसान मानने की कौन-सी बात है? यह तो हमारा फ़र्ज़ है। आइए, यहाँ बैठिए; हाथ-पाँव धोकर थोड़ा आराम कीजिए, तब तक खाना भी तैयार होता है।"

हाथ-पाँव धोकर मैंने थोड़ा आराम किया, इतने हो में वह फ़क़ीर एक शीनी (थार) में खाना लाया, और मेरे सामने रख दिया। पेट में भूख तो रह ही न गई थी; किंतु फिर भी मैंने धीरे-धीरे भोजन आरंभ किया। भोजन करते-करते मैंने उस फ़क़ीर से पूछा—"आपकी इस दरगाह में तो सब लोग ख़ैरियत से हैं न?"

"सो न पूछिए, जनाब! दिल्ली-शहर में इस काले बुख़ार ने झोपड़ी से लगाकर बादशाह के महल तक सबों की ख़ूब ही ख़बर ली है; फिर यह दरगाह वह क्यों चूकने लगा? शहद के बर्तन में जिस तरह मक्खियाँ कूदकर जान से हाथ धो बैठती हैं, उसी तरह लोग इस काले बुख़ार में गिरकर जान दे डालते हैं। ओहो! कल ही की तो बात है कि दिल्ली-शहर में इस मनहूस बुख़ार ने कैसा ग़ज़ब ढा दिया है!"

"सो क्या जनाब! कल क्या ग़ज़ब हो गया?"

"ग़ज़ब ही हुआ, जनाब! पूरा ग़ज़ब!! कल की वारदात से तो सारा शहर ग़मगीन हो गया है। वाह! वाह!! सुभान अल्ला!!! कैसा दिलदार मर्द था! वाह-वाह, कैसा दौलतअफ़रोज़, जैसे एक

बादशाह !! यह जो सामने एक चारपाई बिछी दीखती है, कल इसी चारपाई पर बेचारे ने अपनी दम तोड़ दी ! वाह-वाह ! क्या ही फ़ैयाज़दिल जवान था !! ग़रीबों को तो जान से ज़्यादा चाहता था। बुख़ार के ऐसे विकट ज़माने में भी वह बहादुर दिल्ली छोड़कर कहीं न गया था, और हत्तुलइमकान बराबर बड़ी मुस्तैदी से ग़रीबों की हर तरह की मदद करता रहा। हाय ! हाय !! ऐ बेरहम मलिक-उल-मौत ! तू उसकी फ़ैयाज़दिली को बरदाश्त न कर सका !! और आख़िर कल तूने उसकी हीरा-सी जान ले ही तो ली !!! बादशाही महल के जैसा तो उसका मकान था, जनाब ! और वैसी ही अटूट दौलत; मगर बेचारा मरा इस दरगाह में ! इसलिये उसके कफ़न-दफ़न का इंतज़ाम भी एक फ़क़ीर के ही मानिंद हुआ। बेचारा एक ग़रीब लावारिस छोकरे को दफ़ना करके ही यहाँ आया था, क्या जानता था कि वह ख़ुद भी अब बस हो लिया ! अभी कल ही तो हम लोगों ने उसे दफ़न किया, और आज वह हकीम साहब भी चल बसे, उनके लिये भी सारा दिल्ली आज गहरे सदमे में ग़र्क़ है !"

अंतिम शब्द सुनकर मैं एकदम खिन्न हो गया, और बोल उठा—"हकीम साहब ? वही हकीम साहब, जो रात-दिन ग़रीब-ग़ुरबों की टहल किया करते थे ?"

फ़क़ीर आँसू पोंछता हुआ बोला—"जी, वही। शहादतअलीख़ाँ की मौत से उन्हें बेहद सदमा गुज़रा था। शहादतअलीख़ाँ को दफ़न करके जैसे ही वापस आए, वैसे ही उन्हें बुख़ार चढ़ आया, और आज दोपहर को वह भी चल बसे !"

मैं एकदम चौंककर बोला—"जान निकल चुकी थी न ? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि वे भी—" बहुत ही अच्छा हुआ कि मैं सँभल गया, और मेरे होश ठिकाने हो गए, नहीं तो मैं बहुत कुछ कह डालता था। मुझे अपने वेषांतर की याद आ गई, और मैं बोला—"मालूम होता है, शहादतअलीख़ाँ पर उनकी बड़ी मुहब्बत थी।"

"शहादतअलीख़ाँ पर किसकी मुहब्बत न थी साहब ? एक छोटे बच्चे से लगाकर बुड्ढे तक, सभी कोई शहादत के लिये तड़पते हैं। हकीमजी और शहादतअलीख़ाँ का पहले से ही बड़ा मेल-जोल था, फिर इस बुख़ार के ज़माने में तो दोनो की आपस में 'दाँत-काटी रोटी' हो गई थी। यह हकीम साहब की ही मिहनत का नतीजा है कि शहादतअलीख़ाँ की मिट्टी उसके ख़ानदानी क़ब्रस्तान में ही दी गई ; मिट्टी से जैसे ही फ़ारिग़ हुए कि हकीम साहब को वहीं से बुख़ार चढ़ा; लेकिन वाह रे मर्द-दिल ! बुख़ार चढ़े में ही वह शहादतअली के मकान गए, और शहादतअलीख़ाँ के सारे ज़ेवर दिलारा के सुपुर्द कर आए, तब कहीं उन्हें चैन पड़ा !"

"ओहो ! जब दिलारा के कान में ख़ाविंद के मरने की बात पड़ी होगी, तो उस बेचारी की क्या हालत होगी ?"

"कौन जाने साहब ! उसे कितना सदमा हुआ होगा ? लेकिन मैंने तो सुना है कि अपने ख़ाविंद की मौत का हाल सुनते ही वह थोड़ी देर के लिये बेहोश हो गई थी, मगर उस बेहोशी का कुछ भी मतलब न था। अमीरों की औरतों में सदमे के वक़्त कुछ बेहोश हो जाने का दस्तूर-सा पड़ गया है, और शायद भाई, वह सचमुच ही बेहोश हुई हो, तो हुई हो; असलियत किसे मालूम ? और. जनाब ! अब अपने को उससे मतलब ही क्या ? और भाई, हम लोग कर भी क्या सकते हैं ? इस सुलगती हुई होली में जहाँ हज़ारों-लाखों फूट-फूटकर ढाढ़ें मार रो रहे हैं, वहाँ दिलारा का नाज़ुक रोना भला किसके कान पड़ेगा, हकीम साहब के इंतक़ाल से हमारे ऊपर सदमे का एक पहाड़ आ टूटा है ! देखिए न कि यह दरगाह कैसी सूनी लग रही है ?"

फ़क़ीर की यह बात सुनकर शीनी पर मेरा हाथ ज्यों-का-त्यों रह गया, और विचार में पड़ गया कि यह फ़क़ीर भी दिलारा के विषय में क्यों संदिग्ध है ? वह मूर्च्छित हो गई, फिर भी इस फ़क़ीर को उसके सत्य पति-शोक पर संदेह होता है। यही सब विचारकर मुझे कुछ

क्रोध भी आया। दो-एक कौर और खाने का बहाना-सा करके मैं उठ बैठा, और अपने हाथ धोने लगा। शीनी में बहुत-सा भोजन बचा हुआ देखकर वह फ़क़ीर बोला—"यह क्या साहब ? आपने तो कुछ खाया ही नहीं।"

"ऐसी हौलनाक बातें सुनते हुए खाना भला गले से क्योंकर उतर सकता है ? उँह, मैं भी ऐसे वक़्त में मुर्शिदाबाद छोड़ नाहक़ ही दिल्ली आया।"

"आप जो कहते हैं, सो तो ठीक है; मगर जनाब ! जीना-मरना किसका छूटता है ? बीमारी का तो फ़क़त बहाना है, होता तो वही है, जो उस ख़ुदा ताला की मरज़ी है।"

हम दोनो इसी तरह की बातें कर रहे थे कि उसी मार्ग से मेरा परमप्रिय मित्र अमीरुद्दीन सामने आता हुआ दिखाई दिया। मेरा हृदय एकदम मित्र-प्रेम से भर आया, और जी चाहा कि झट दौड़कर उसे हृदय से लगा लूँ। मैंने सोचा, दिल्ली-शहर में पाँव रखते ही अमीरुद्दीन को मेरा मृत्यु-समाचार मिल गया होगा, और वह बेचारा मित्र की मृत्यु से शोक-सागर में डूब गया होगा ! अस्तु, मेरा मन हुआ कि उसके सामने जाकर प्रकट कर दूँ कि तेरा प्रिय मित्र मरा नहीं है, तेरे सामने जीवित खड़ा है। किंतु कई कारणों से अपने रूपांतरित वेश में मैंने उससे साक्षात्कार करना उचित नहीं समझा। मैं इन्हीं विचारों में था कि इतने में अमीरुद्दीन बिलकुल ही पास आ पहुँचा, और इसलिये उसका चेहरा स्पष्ट रीति से मेरे देखने में आया। देखा, तो उसके मुख पर शोक लेश-मात्र भी न था, प्रत्युत वह सदैव से अधिक उत्साहजनक प्रतीत हो रहा था। मैं अमीरुद्दीन की तरफ़ देख ही रहा था कि वह फ़क़ीर दाँत पीसता हुआ क्रोध भरे शब्दों में बोला—"देखा, वह कमीना कैसा बना-ठना घूम रहा है ?"

मैंने आश्चर्ययुत हो पूछा—"कौन ?"

"देखिए सामने, वह आ रहा है कमीना शैतान कहीं का। शहादत-

अलीख़ाँ का दिलोजान से दोस्त बनता था ! यह बेईमान अमीरुद्दीन कहता है कि हम लोगों ने शहादतअलीख़ाँ के कुछ ज़ेवर अपने पास रख छोड़े हैं। बेशरम कहीं का ! दोस्त को दफ़न करने के वक़्त तो कहीं मर गया था, पर अब ज़ेवर के तक़ाज़े के वक़्त ज़िंदा हो गया है ! पर याद रखना बेईमान मुजस्सिम शैतान ! कि ख़ुदा भी है, और एक वक़्त उसी के सामने सबों का इंसाफ़ होने को है।"

फ़क़ीर के इस प्रकार क्रोध करने का कारण मैं पूर्णतः समझ न सका। मैं इतना ही समझा कि कदाचित् दिलारा ने अमीरुद्दीन को यहाँ भेजा होगा, और उसके आज्ञानुसार उसने इन लोगों से मेरे अलंकारों के विषय में पूछा होगा। दिलारा बेचारी का भी इसमें क्या दोष है। दुर्भाग्य से बेचारी को वैधव्य भुगतना पड़ा, फिर वह सांपत्तिक हानि अकारण क्यों सहे ? यदि उसने मेरे शरीर पर के अलंकारों के विषय में पूछ-ताछ की, तो क्या बुरा किया ? यह तो उसने एक उत्तमा गृहिणी के जैसा ही व्यवहार किया। दिलारा ! प्यारी दिलारा ! मेरे प्राणों से भी प्यारी दिलारा ! तू शोक-संतप्त न हो। तेरा सौभाग्य तो यम-सदन से फिर ही आया है, और अत्यधिक आनंद की बात तो यह कि वह ख़ाली हाथ नहीं, किंतु साथ में रत्नालंकार भी लाया है ! मेरा मृत्यु-समाचार सुनकर तू मूर्च्छित हुई थी, यही तेरा प्रेम-परिचय है, और उसी का इनाम यह अलंकार होगा, जो भाग्य-क्रम से ही अटूट धन-सहित मुझे प्राप्त हुआ है। प्रेम को कभी न जाननेवाला यह अरसिक फ़क़ीर तेरी उस मूर्च्छावस्था को केवल बहाना अथवा स्त्रियों का प्रपंच-मात्र समझता है, किंतु हे सुंदरी ! तेरी उस मूर्च्छा के लिये मेरे हृदय में अभिमान होता है, और मैं तुझ-जैसी स्त्री प्राप्त कर अपने को धन्य मानता हूँ।

संध्या-काल हो गया, और चिराग़-बत्ती भी जब होने लगी, तब मैं दरगाह से उठा, और फ़क़ीर के हाथ में एक स्वर्ण-मुद्रा थमाकर अपने घर की ओर चल दिया।

चौथा प्रकरण

अपनी मृत्यु मैंने अपनी आँखों देखी

सारा शहर मृत्यु की वेदना से उद्विग्न था, फिर भी सायंकाल के समय शहर का बहुतेरा भाग रमणीय दिखाई देता था। मेरे अंतःकरण में जो विचित्र आकांक्षा उत्पन्न हुई थी, उसके पूरे होने का समय ज्यों-ज्यों पास आता जाता था, त्यों-त्यों मेरा हृदय भावी आनंद की उत्सुकता के कारण अधीर हो रहा था। मेरा मकान ज्यों-ज्यों पास आता गया, त्यों-त्यों मेरे मन की अस्थिरता भी बढ़ती गई। मेरे मकान के पिछवाड़े सूर्यास्त हुए अधिक काल न बीता था, इसलिये उस समय तक उस ओर आकाश की लालिमा विद्यमान थी, और उस ओर से मेरा मकान बड़ा ही शोभा-संपन्न प्रतीत होता था। मकान की दूसरी ओर चंद्रोदय होकर चाँदनी छिटकने लग गई थी। थोड़े ही समय में चारो ओर शुभ्र चाँदनी फैल गई, और आकाश में बड़े-बड़े तारागण चमकने लगे। धीरे-धीरे हवा में भी ठंडक बढ़ने लगी, जिससे मेरे दिन-भर के तपे शरीर को बड़ा सुख पहुँचने लगा। मैं जब अपने घर के समीप पहुँच गया, तो प्रथम से ही योजित विचित्र आकांक्षा के कारण मेरा हृदय धड़कने लगा, शरीर में कँपकँपी छूटने लगी, और मेरे पैर लड़खड़ाने लगे। अपने मकान के पास पहुँचने पर मुझे अपने बाग़ से सुवासित पुष्पों की मधुर महक आती हुई प्रतीत हुई, मानो मेरे बाग़ के पुष्प अपनी सुगंध भेजकर अपने मालिक की अगवानी कर रहे हैं। मेरे बाग़ के मुख्य दरवाज़े पर दोनो ओर पत्थर के सिंह बने थे। दूर से यह सिंह बड़े भयावने प्रतीत होते थे, किंतु जब मैं पास पहुँचा, तो दोनो के चेहरों पर मुझे हर्ष-रेखाएँ प्रतीत हुईं। पत्थर के वे दोनो सिंह भी ख़ुशी-

ख़ुशी अपने मालिक के शुभागमन पर बधाई दे रहे थे ? बाग़ के दरवाज़े के भीतर एक फ़व्वारा दिन-रात चला करता है। मेरे दरवाज़े पर पहुँचते ही फ़व्वारे ने नन्ही-नन्ही फुइयाँ मेरे ऊपर उड़ाकर मेरा स्वागत किया, मानो वह फ़व्वारा अपने मालिक से मिलने के लिये उतावला हो रहा था। मैं भी अंदर जाने के लिये बड़ा उतावला हो रहा था, और हर्ष-लहरियों से मेरा अंतःकरण उछल रहा था। इस समय मेरे मन की स्थिति बड़ी विचित्र थी। मन में एक आती और एक जाती थी। दिलारा ! प्यारी दिलारा ! तू व्यर्थ अश्रुपात न कर। तेरी शोक-संतप्त छाती को आलिंगन से शीतल बना देने के लिये तेरा पति तेरे ही पास तो आ रहा है; तेरा प्रेम-बल उसे क़ब्रस्तान से भी खींच लाया है ! अहा हा ! साध्वी स्त्रियों के लिये कौन-सा कार्य असाध्य है ! अपने सतीत्व के पुण्य प्रभाव से स्त्रियाँ मृत्यु को जीत लेती हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या। जिस समय अपनी प्रियतमा को मैं अपने बाहु-पाश में फँसाकर अपने हृदय से चिपटा लूँगा, तब उसे कैसा आनंद मिलेगा ! खुदा की मेहरबानी से अपना खोया हुआ रत्न पाकर वह कैसी प्रसन्न होगी ! दिलारा ! प्यारी दिलारा ! ठहर, थोड़ी देर और ठहर ; अभी-अभी हम दोनो मिलकर उस खुदावंद ताला की बंदगी बजा लावेंगे।

और मेरी मरीना ? बहुत करके तो वह इस समय निद्रा की गोदी में होगी। उसकी निद्रावस्था में ही, मैं उसके गुलाबी गालों का प्यार लूँगा, और हौले से उठाकर उसे अपने हृदय से लगा लूँगा ; फिर हलकी-हलकी थपकियाँ देकर उसे सुलाऊँगा।

अमीरुद्दीन ! अमीरुद्दीन, मेरे दिली दोस्त ! बहुत करके तो तुम इस समय मेरे घर पर ही उपस्थित होगे, और दिलारा को सांत्वना देने के लिये तुम अविरल उद्योग कर रहे होगे। तुम उसे नाना प्रकार के उपदेश दे-देकर समझा रहे होगे। दिलारा जैसी सद्गुणी है, वैसे ही तुम भी मित्र-कर्तव्य से भली भाँति परिचित हो। तुम अच्छी तरह

जानते हो कि पति-निधना मित्र-पत्नी को कैसे-कैसे उपदेशामृत देकर सांत्वना देना चाहिए।

मेरे मकान के बाहर शोक-चिह्न दिखाई दे रहे थे; परंतु मकान के अंदर कितने ही भागों में अच्छा प्रकाश हो रहा था। मैं उस प्रकाश की ओर कुछ भी लक्ष्य न देकर सोचने लगा—"यदि दरवाज़े में होकर बाग़ में प्रवेश करूँगा, तो नौकर लोग 'कौन है, कौन है ?' करके आवाज़ देंगे, और इस कारण मेरे वेष-परिवर्तन का रहस्य खुल जायगा।" मेरे हृदय में तो वही उत्सुकता भरी थी कि दिलारा को मैं अपना मृत्यु-शोक मनाते हुए देखूँ। अस्तु, मैंने फाटक द्वारा भीतर प्रवेश करना उचित न समझा, और बाग़ के पिछवाड़े जाकर चोर की नाईं चहारदीवारी लाँघकर बाग़ के अंदर पहुँचा। यह बाग़ मेरा ही था, और उसके साथ मेरा सदा का परिचय था। फिर भी, उस समय, मुझे अपना बाग़ बड़ा अपूर्व प्रतीत हो रहा था। स्वभाव से ही मैं बाग़-बग़ीचों का बड़ा शौक़ीन हूँ, फिर उस दिन का तो समाँ भी बड़ा अच्छा था। चारो ओर शुभ्र चाँदनी छिटक रही थी, इसलिये बाग़ उस दिन बड़ा भला दीख रहा था, और मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो बहुत वर्षों बाद मैंने उस बाग़ में प्रवेश किया हो। मैं बाग़ के एक-एक पेड़ का निरीक्षण करता हुआ धीरे-धीरे टहल रहा था। अचानक बाग़ में किसी के पाँव की आहट मुझे सुनाई पड़ी। चाप सुनते ही मैं झट से एक पासवाले लता-मंडप में छिप गया। थोड़ी देर तक तो बाग़ में पूर्ण शांति रही, किंतु फिर एकाएक एक हर्ष-ध्वनि सुनाई दी। ऐं, यह तो दिलारा की-सी बोली लगता है; अवश्य ही यह हास्य उसी का है। इतने वर्ष एक साथ रहे, फिर क्या मैं उसकी बोली भी नहीं पहचान सकता ? किंतु रोने के बदले दिलारा हँस क्यों रही है ? कहीं उसने मुझे देख तो नहीं लिया ? क्या इतने कष्ट से किया हुआ वेष-परिवर्तन व्यर्थ तो न जायगा ? नहीं, अपनी कायापलट तो मैंने ख़ूब ही की है। फिर क्या ? कहीं दिलारा को उन्माद तो नहीं हो गया ? वह फ़क़ीर कहता था कि जब दिलारा के कान

में मेरा मृत्यु-समाचार पढ़ा, तो वह मूर्च्छित हो गई थी। मुझे तो यही प्रतीत होता है कि दिलारा मारे शोक-संताप के उसी समय से उन्मादिनी हो गई है, और इसीलिये उन्माद की लहर में जो उसके मन में आता होगा, कहती होगी, करती होगी, और हँसती होगी। अरे रे! प्यारी दिलारा! मेरे मृत्यु समाचार ने तेरे हृदय पर ऐसी चोट पहुँचाई कि तू उसे सहन न कर सकी, और उन्माद ने आकर तेरा गला दबा दिया! ठहर, प्यारी दिलारा थोड़ी देर और, ठहर; तेरा उन्माद-रोग दूर करने-वाला वैद्यराज अभी तेरे सामने उपस्थित होगा; किंतु देख सँभालना, कहीं ऐसा न हो कि सारा शोकजनित उन्माद नष्ट होकर उसके स्थान में अत्यधिक हर्षजनित उन्माद हो जाय।

मैं जिस लता-मंडप में छिपा बैठा था, वहीं से हौले-हौले थोड़ी लता-पुंज एक ओर को करके बाहर का दृश्य देखने लगा। देखा कि सामने शुभ्र चाँदनी में दिलारा एक स्वच्छ श्वेत रेशमी वस्त्र पहने खड़ी है। दिलारा की सुंदर मूर्ति मुझे खूब स्पष्ट दीख रही थी; किंतु इस समय मैं उसका रूप देखने को नहीं, वरन् उसके प्रेम की परीक्षा लेने को आया था। उसकी प्रेम-कटाक्षों से घायल होने को नहीं, वरन् उसकी आँखों से निकलते हुए अश्रु-प्रवाह में स्नान करने के लिये आया था। उसका सुंदर वक्षःस्थल देखने का मुझे तनिक भी उत्साह न था, वरन् उसके हृदय को ही जाँचने की मुझे उत्कंठा लगी थी।

दिलारा के सुकोमल मधुर कंठ से निकले हुए गाने के अलाप-जैसी मनोहर हास्य-ध्वनि एक बार फिर वायुमंडल में चमकी। मैंने सोचा, सचमुच ही दिलारा को उन्माद हो गया है। बस, अब दौड़कर अपनी प्यारी दिलारा को अपने वक्षःस्थल से लगा लेना चाहिए। यदि थोड़ा समय और इसी प्रकार के विचारों के लिये मिलता; तो मैं अवश्य ही लता-मंडप से बाहर निकल दिलारा को छाती से लगा लेता; किंतु उतने ही में एक वृक्ष की आड़ में से एक पुरुषाकृति बाहर निकली, और उसने दिलारा के पीछे आ, अपने दोनो हाथ उसके कंधों पर रख दिए!

दिलारा फिर एक बार हँसी। इस प्रकार एकांत रात्रि में अमीरुद्दीन को दिलारा के कंधों पर हाथ रखते हुए देखकर मेरे अंतःकरण में क्रोध की उत्पत्ति हुई। किंतु फिर मन में विचार आया कि मेरी दिलारा वस्तुतः उन्मादिनी हो गई है, तब क्या ऐसे संकट के समय अमीरुद्दीन-जैसे मेरे सुहृद् मित्र का यह कर्तव्य नहीं कि वह उस अनाथा स्त्री को शोक-सांत्वना के लिये उद्योग करे? अमीरुद्दीन दिलारा को कभी हाथ न लगाता, किंतु वह उन्मादिनी होकर इधर-उधर भटकती होगी, तो फिर बेचारा क्या करे? मैं इन्हीं विचारों में था कि हर्ष-तरंगों की विशेष ध्वनि मेरे मस्तक पर तीक्ष्ण छुरी के नाईं लगी। दिलारा हँसी! हाँ, हँसी होगी! वह उन्मादिनी हो गई है, इसलिये हँसती भी होगी; रोती भी होगी; परंतु अमीरुद्दीन क्यों हँसा? दोनो की आँखें चार होते ही दोनो-के-दोनो एक ही समय क्यों हँसे? दिलारा जब हँसती थी, मेरा हृदय प्रेम से भर आता था; परंतु यही हास्य अब मेरे हृदय में बिच्छू की नाईं असह्य वेदना पहुँचाने लगा। एक समय कान को अति मधुर लगनेवाला हास्य, इस समय विष से भी अधिक कटु प्रतीत होता था। जिस कंठ से यह सुमधुर हास्य-ध्वनि निकलती है, एक समय मैं उस कंठ को आलिंगन करता हुआ अपने को सौभाग्यशाली समझता था; किंतु वही कंठ इस समय मुझे विष की फूत्कारें छोड़ता हुआ प्रतीत हो रहा था। मैं समझता, मेरी दिलारा दुःख के मारे अति व्याकुल और शोकातुर होगी, अश्रुपात करते-करते बेचारी के चक्षुद्वय सूज गए होंगे, अबला का कोमल अंतःकरण मुरझा गया होगा, और बेचारी दुखिया ने अति आर्त हो, सर्वांतर्यामी की शरण ले ,खुदा को भी अपने साथ रुलाया होगा; परंतु हाय! हाय!! यह सब मेरा कोरा भ्रम ही निकला! अरे, वह पगली कैसी! पागल तो मैं हूँ। अब तक मैं सौंदर्य और प्रेम के उन्माद में था, इसीलिये उसके संबंध में किसी भी प्रकार का अविश्वास रखने का मेरे हृदय में विचार ही नहीं उठा। मैं अपने को बड़ा विद्वान् समझता था; किंतु आज स्वतः सिद्ध हो गया कि मेरे-जैसा मूर्ख संसार में अन्य

नहीं। व्यापार-व्यवहार में कोई मुझसे एक दमड़ी की कौड़ी भी नहीं ठग सकता; परंतु हाय! इहलौकिक सुख के विषय में मैं ख़ूब ही सिर घोंटकर ठगा गया!! उस पुराने कपड़े बेचनेवाले वृद्ध दूकानदार को मैं पागल समझता था; किंतु अंत में वही सच्चा बुद्धिमान् निकला, और मैं पक्का मूर्ख सिद्ध हुआ। वास्तव में दिलारा के अंतःकरण है ही नहीं, यह तो हृदयहीना राक्षसी है!

मैं जिस लता-मंडप में बैठा था, उसी ओर को यह प्रेमी जोड़ी हाथ में हाथ डाले हुए आ रही थी। मैं दोनो ही के चेहरे और हाव-भाव स्पष्ट रूप से देख रहा था। थोड़ी देर तक दोनो प्रेमी-प्रेमिका चाँदनी में इधर-उधर घूमते रहे, फिर बाग़ में एक स्थान पर जहाँ बहुत पौधे न थे, और जहाँ मैंने बैठने के लिये चित्र-विचित्र रंग की बैठकें बना रक्खी थीं, उन बैठकों पर दोनो ही आपस में गलबहियाँ डालकर बैठ गए। किसी दूसरे को यह प्रेमी जोड़ा इस प्रकार बैठा हुआ देखने में भला प्रतीत होता, किंतु मुझे तो उस समय ऐसी उत्तेजना हो रही थी कि तलवार लेकर दोनो के गले काट दूँ। मैं बड़ा ही अरसिक था, कविता देवी मेरे ऊपर प्रसन्न न थीं, प्रतिभा मेरे भाग्य में ही न बदी थी, और फिर उस समय मैं अपना सर्वस्व ही खो बैठा था। अस्तु, ऐसी स्थिति में रक्तपात पर मेरा मन गया, तो यह कुछ अस्वाभाविक न था। इतने में चुंबन का शब्द हुआ। यह 'चुंबन-चटाका' मेरे कानों को भयंकर वेदना पहुँचाता हुआ हृदय में जा लगा, और उसने ऐसी तीव्र अनी जमाई कि मैं संताप के मारे बेसुध हो गया, मेरे हाथ में उस समय कोई शस्त्र न था, और समय भी बहुत उपयुक्त न था, फिर भी मेरे एक ही हाथ में उन दोनो को क़ब्रस्तान में फेक देने की शक्ति थी। यदि मैं चाहता, तो एक-ही-एक मुक्के से दोनो को दोज़ख़ दिखा देता; किंतु इसे मैं अविवेक समझता हूँ। माना कि उनके पाप का यही प्रतिफल देना चाहिए कि वे दोनो ही दोज़ख़ की आग में दबकाए जाने के लिये इस दुनिया से दूर कर दिए जाते; किंतु वह शिक्षा भी मैं विवेक-शून्य बन, उतावली

में नहीं देना चाहता था। क्रोधांध बनकर कुछ-का-कुछ कर बैठना मुझे न भाता था। अस्तु, मैंने अपने संतप्त हृदय को शांत किया, और उस विलासप्रिय जोड़े का विलास बड़ी सावधानी से देखने लगा। मित्रो! आप लोग मेरे उस धैर्य की यथार्थ कल्पना तक नहीं कर सकते। अपने शरीर पर सिंह चढ़ आवे, और फिर भी मनुष्य न घबरावे, तो वह अवश्य धैर्यवान् कहा जाने योग्य है; किंतु मित्रो! ख़ास अपनी स्त्री का दुराचरण अपनी ही आँखों से शांत हो देखते रहने को मैं उससे भी अधिक धैर्य और साहस का कार्य समझता हूँ। मैं मन-ही-मन बड़बड़ा रहा था—"दिलारा! नापाक दिलारा! यदि तुझे यह कल्पना भी हो जाय कि तेरे यह नापाक कृत्य तेरा पति स्वयं अपनी आँखों देख रहा है, तो तू इस कल्पना-मात्र से ही अधमुई हो जायगी; फिर यदि तू मुझे प्रत्यक्ष हो इस समय अपनी आँखों अपने सामने खड़ा देख पावे, तो तेरी क्या दशा हो? किंतु नहीं; दिलारा! मैं अभी तेरे सामने न आऊँगा, और तेरे इस पापी प्रेम-प्रलाप में बाधक न बनूँगा। तेरे कबाब में मुझे हड्डी बनने से क्या लाभ? प्रत्येक कर्म का प्रायश्चित्त होता है; किंतु व्यभिचार का प्रायश्चित्त हो ही नहीं सकता। बहुत करेगी, तो तू इसके लिये मुझसे क्षमा-प्रार्थना करेगी; किंतु इस अपराध का परिमार्जन क्षमा-प्रार्थना से हो नहीं सकता। इस अपराध का परिमार्जन किस दंड से होगा, बस केवल यही बात मुझे अपने विवेक से पूछना है, और जो कुछ वह कहेगा वही मैं करूँगा। इस समय क्रोध के वशीभूत हो तुझे दंड क्यों दूँ?"

दिलारा के गले में एक रत्न-हार पड़ा था, जो उसके वक्षःस्थल पर लटक रहा था। कितनी एक चंद्रकिरणें उस हार में जटित हीरों द्वारा प्रतिबिंबित हो रही थीं और इस कारण सूक्ष्म रेशमी साड़ी में होकर उसका सुडौल वक्षःस्थल भले प्रकार दिख रहा था। उस सुंदर राक्षसी के पास ही वह शैतान बैठा था। मित्र! इन दोनों के विषय में यदि मैं कोई तुलनात्मक शब्द कहूँ, तो आप कदाचित् मुझे पक्षाभिमानी सम-

झेंगे। अस्तु, मेरी बात तो एक ओर छोड़िए; परंतु उस समय यदि किसी मनुष्य ने उस जोड़े पर दृष्टि डाली होती, तो वह यही समझता कि बेगम साहबा के पास उनका कोई शागिर्द बैठा है। कवि कहते हैं—"प्रेम ! तू अंधा है" परंतु मैं तो कवि हूँ ही नहीं। अस्तु, मैं तुझे अंधा न कहकर पशु-तुल्य उन्मत्त कहना ही अधिक उपयुक्त समझता हूँ, और यही उपाधि तेरे लिये विशेष उपयुक्त प्रतीत होती है। मैं इन दोनों प्रेमियों को बड़े शांत चित्त से ध्यानपूर्वक देख रहा था। दिलारा का मुख-मंडल कृत्रिम गंभीरता से ऐसा सौम्य प्रतीत हो रहा था कि उसे देखकर अन्य मनुष्य यही समझता कि दिलारा स्त्रियोचित सभी सद्गुण भूषिता रमणी है; परन्तु मेरी आँखों से अब यह भ्रम समूल नष्ट हो गया था। मैं बलपूर्वक कहता हूँ कि मित्रो ! यदि प्रत्यक्ष राक्षस भी दिलारा के मुख-मंडल पर के कृत्रिम पातिव्रत्य के आवरण को तनिक ऊँचा करके देखता, तो भयभीत हो जाता, फिर आप लोगों की क्या गिनती ? इस दुरंगी दुनिया के अजब बाज़ार में यदि कुछ परखना है, तो यही कि इस संसार में यथार्थ (सत्य) क्या है ? और कृत्रिम (असत्य) क्या है। मित्रो सच पूछिए, तो इसी सत्यासत्य की परख के लिये ख़ुदा ने इंसान को बनाया है। इस बाज़ार में कितनी ही ऐसी वस्तुएँ होती हैं, जो अनुभव का भारी मूल्य देकर मोल लेनी पड़ती हैं। अस्तु, मित्रो ! स्त्रियों का मान भावीपन ही मेरे अनुभव का सार और बदला है, और मैं अपने अनुयायियों को यह बदला विना मूल्य देता हूँ। यदि मेरे इस अनुभव से मेरे अनुयायी समुचित लाभ उठावेंगे, तो मैं अपने को धन्य मानूँगा, और इस अनुभव की प्राप्ति करने में जो कुछ बुरा-भला मुझ पर बीता है, सो उसे सार्थक समझूँगा।

दिलारा के वक्षःस्थल पर जो रत्नहार लटक रहा था, उसे हिलाते हुए अमीरुद्दीन बोला—"प्यारी दिलारा !" बस इतना ही। अमीरुद्दीन ने केवल यही दो शब्द कहे; किंतु दिलारा तुरंत ही अमीरुद्दीन का पूरा आशय समझ गई, और हँसती हुई बोली—"हाँ, प्यारे अमीरुद्दीन !

आज यदि शहादतअलीख़ाँ जीता होता, तो मुझे तो प्यारे ! यह आशा भी न थी कि हम दोनो प्रेमियों के बीच का काँटा इतनी जल्दी निकल जायगा !"

अपनी ही स्त्री का पर-पुरुष के साथ ऐसा संभाषण सुनकर ऐसा कौन पति होगा, जो जीवित रहने की अपेक्षा अपनी मृत्यु को श्रेयस्कर न समझे ? एक प्रकार से तो मैं मृत ही था, अन्यथा मेरे मन में भी आत्महत्या का विचार अवश्य आता । लोगों का यह भ्रम कि 'शहादत-अलीख़ाँ मर गया है', अब मुझे बड़ा भला प्रतीत होने लगा; किंतु फिर भी अपनी स्त्री की कुचेष्टाएँ देखकर बीच-बीच रह-रहकर मुझे बड़ा क्रोध उभर आता था, परंतु इस क्रोधावेग को मैं बड़े यत्न से दबाकर उस विलास-प्रिय जोड़े का संभाषण ध्यान-पूर्वक सुनता हुआ वहीं बैठा रहा । इस समय यह बात आपको सुनाते हुए मुझे सरल प्रतीत हो रही है, किंतु उस समय ऐसा धैर्यावर्तन करते हुए मुझे बड़ा प्रयास करना पड़ता था, और यह जान अपने भाग्य को ख़ूब ही कोस रहा था कि जिस दिलारा को मैं प्राणों से भी अधिक प्रिय मानता और जिस पर मैं इतना अनुपम विश्वास रखता था, वही दिलारा मेरी मृत्यु की बाट जोह रही थी । अब मेरी मृत्यु से उसका प्रेम-मार्ग निष्कंटक हो गया है, और उसे पूर्ण संतोष है । मैं तो समझता था कि मेरी असह्य विरह-वेदना के मारे वह धाड़ें मार-मारकर आँसू बहाती होगी, किंतु यहाँ तो रंग ही निराला है । हाय ! हाय !! मैं कैसा भाग्य-हीन निकला !!!

मेरी मृत्यु पर दिलारा को प्रसन्न होते देख अमीरुद्दीन ने भी ओंठ खोले । उन दोनो की हर्ष-ध्वनि हवा में लहराने लगी । फिर अमीरुद्दीन बोला—"किंतु

जब ज़िंदा न रहा मर्द, सुबुकदोश है फिर;
नौकरी छोड़ दी, उतरी हुई पापोश है फिर ।

और प्यारी ! यह तो कह कि जब वह जीवित था, तब भी उसने क्या कर लिया ? उससे तो तू सौगुनी अधिक चतुर निकली । शाबाश !

तूने उसके मन में लेश-मात्र शंका उत्पन्न न होने दी। सच तो यह कि प्यारी! तूने उसे ख़ूब ही फाँसा। उसे तो यह पूर्ण विश्वास था कि मेरी स्त्री मेरे सिवा किसी दूसरे पुरुष को आँख उठाकर भी नहीं देखती! और मैंने भी प्यारी! देख, किस विधि से अपना प्रेम-रहस्य गुप्त रक्खा—

दिल में पोशीदा तपे इश्क़ बुताँ रखते हैं;
आग हम संग के मानिंद निहाँ रखते हैं।

दिलारा! सारे दिल्ली-शहर में उसके-जैसा व्यवहार-दक्ष कोई भी न था; किंतु तू उसके भी सर पर की निकली।"

जिसको मैं निष्कलंक चंद्रिका समझता था, उसी के संबंध में अमीरुद्दीन ने ऐसे उद्गार निकाले। अमीरुद्दीन की बात सुनकर दिलारा कुछ गंभीर स्वर में बोली—"अमीरुद्दीन! सच पूछो, तो उसकी आबरू बच गई, सो सभी कुछ बच गया, और इस दृष्टि से वह मर गया, सो बच ही गया; समझो, मेरी ढकी हुई लाख की मुट्ठी उसके सामने खुलकर लीख की नहीं हुई, सो मेरे और उसके दोनो ही के लिये भली हुई, और मेरी मृत्यु भी टल गई, यही समझना चाहिए। परंतु अमीरुद्दीन! अब भी हमें-तुम्हें लोक-लाज का भय रखना चाहिए, और शहादत-अलीख़ाँ के लिये नहीं, तो लोगों के देखने के लिये अवश्य ही मुझे छ मास वैधव्य में ही व्यतीत करने चाहिए; इसके अतिरिक्त लौकिक दृष्टि से विचार करने योग्य और भी कितनी ही बातें हैं।"

दिलारा के गले में हाथ डालकर अमीरुद्दीन मीठे स्वर से बोला—"प्यारी दिलारा! क्या मैं यह सब कुछ नहीं समझता? यदि तू सावधानी न रखती, तो शहादतअलीख़ाँ को तेरे और मेरे ऊपर कभी का संदेह हो जाता, और फिर ख़ुदा जाने, वह क्या रंग लाता? शहादत-अलीख़ाँ की मृत्यु से ही हमारा मार्ग निष्कंटक नहीं बन गया, परंतु सच्चा सुख तो हमें तभी मिलेगा, जब हम दोनो का निकाह हो लेगा।"

बालपन के स्नेही और दिली दोस्त की नाई जिस पर मैं पूर्ण

विश्वास रखता था, जिसके साथ मैं सदा निष्कपट बर्ताव रखता था, जिसे मैं हर समय हरएक काम में यथायोग्य पूर्ण सहायता देता था, उसी नराधम मित्र-द्रोही अमीरुद्दीन के यह वाक्य सुनकर मेरे हृदय में भयंकर क्रोध उत्पन्न हुआ, और मेरा संताप मुझे असह्य हो गया, क्रोध से शरीर थरथर काँपने लगा, और इसीलिये जिस लता-मंडप में मैं दबका हुआ बैठा था, वह हिलने लगा, जिसके कारण उस लता के पत्ते खड़खड़ाने लगे, और एक चामत्कारिक रव होने लगा। यह पापी-हृदय जोड़ा दुःसाहसिक था, किंतु फिर भी दोनो में धैर्य का अभाव ही था। यह सभी जानते हैं कि लता, गुल्मादि के पत्तों की खड़खड़ाहट से भय खाने का कोई कारण नहीं; परंतु यह खड़खड़ाहट सुनते ही दोनो भयाकुल हो गए, और दिलारा घबराकर बोली—"चल अमीरुद्दीन, मकान में चल; मुझे यहाँ डर लगता है। उसे मरे बहुत दिन तो हुए ही नहीं हैं, कल ही मरा है; सो कहीं उसका भूत न फिरता हो, छोटेपन से ही मैं भूत से डरती हूँ। मैंने सुना है, जिनकी अनेक आशाएँ अधूरी रह जाती हैं, वे भूत होते हैं। उसकी—शहादतअलीखाँ की—तो भरी जवानी में मृत्यु हुई है, इसलिये उसकी कितनी ही आशाएँ लटक रही होंगी, और फिर यह बग़ीचा तो उसे बड़ा ही भला लगता था। मरीना पर भी उसका प्राणाधिक प्रेम था, और मेरे ऊपर तो वह दिल-जान से—"

दिलारा की बात बीच ही में काटता हुआ अमीरुद्दीन कर्कश स्वर में बोला—"दिलारा! मैं सभी कुछ मानता हूँ; परंतु तुम दोनो की पूर्व प्रीति की बातें अब मेरे कानों को कड़वी लगती हैं। वह तेरे सुंदर सुकोमल कपोलों को जब-जब चुंबन करता था, तब-तब मुझे कैसा क्रोध चढ़ता था, यह तू ख़ूब जानती है! मुझे उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह तेरे पास रक्खी हुई मेरी थाती को हरण करता हो। सच बात तो यह है कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, और फिर मुझे तो साझेदारी महा बुरी लगती है। मेरा तो यही क़ौल है—

आक़िलाने कलाम गुहर सुफ़्तह अंद ;
ख़ाना जुदा गोर जुदा गुफ़्ता अंद ।

और फिर प्यारी ! यह तू ख़ूब जानती है कि केवल विवाह कर लेने से ही स्त्री पर पति का पूर्ण स्वत्व नहीं हो जाता, सच बात तो यह है कि जिस पुरुष पर स्त्री का सच्चा प्रेम हो, वही पुरुष उस स्त्री का यथार्थ पति होता है। ठीक है न, प्यारी दिलारा ?"

लग्न-संबंध से स्त्री के साथ आबद्ध होनेवाला पुरुष तो चोर, और अमीरुद्दीन के जैसा जारकर्मी सो साधु ! मित्रो ! प्रेम का यह अद्भुत रहस्य मैं उसी दिन समझा। उस समय तक मैं यही समझता था कि प्रेम कोई स्वर्गीय अमृत होगा; परंतु प्रत्यक्ष प्रेम पर भाष्य लिखनेवाले अमीरुद्दीन ने जब प्रेम की यह व्याख्या की, तब मेरी समझ में आया कि प्रेम की उत्पत्ति बहिश्त से नहीं है, किंतु यह प्रेम दोज़ख़ का कीचड़ है, इसीलिये दोज़ख़ी कीचड़ के इन दो कीड़ों को उसी दोज़ख़ी कीचड़ में आनंद मिले, तो इसमें इनका क्या दोष ? मैं इसी उधेड़-बुन में था कि अमीरुद्दीन फिर बोला—"सच तो कह दिलारा कि शहादतअलीख़ाँ के किस गुण पर मोहित होकर तूने उसे वरण किया ? मैं तो समझता हूँ, तू उसके वैभव पर ही लुभा गई ?"

अब की बार दिलारा कुछ खिन्न-सी हो गई, और उसने अमीरुद्दीन के इस प्रश्न का कोई भी उत्तर न दिया, परंतु अमीरुद्दीन उसे यों ही छोड़नेवाला थोड़े ही था। उसने फिर वही प्रश्न किया। अस्तु, दिलारा को उत्तर देना ही पड़ा। वह बोली—"अमीरुद्दीन ! वैभव के अतिरिक्त उसके पास और कुछ भी न था क्या ? उसका-सा सुंदर, सुडौल और हृष्ट-पुष्ट शरीर, उसकी-सी कृपालुता और उदारता आदि सद्गुण क्या सारे दिल्ली-शहर को खोजने पर भी अन्य किसी भाग्यवान् में मिल सकते हैं ? सुंदर और नवयौवना स्त्री को इससे अधिक और क्या देखने की आवश्यकता होती है ? स्त्री को ऐसा पति पाकर अपने को भाग्यवती मानना चाहिए, किंतु—"

अमीरुद्दीन उत्सुकता से बोला—"किंतु क्या ?"

दिलारा उद्विग्न हो बोली—"अमीरुद्दीन ! मैं तुझ पर लुब्ध हुई, तो उसके दोष से नहीं, वरन् अपने ही दोष से हुई। कितनी ही गौएँ ऐसी बुरी होती हैं कि उनको अपने घर में चाहे जैसा अच्छा घास-दाना मिले, परंतु तो भी गले से रस्सी छुटते ही वे विष्ठा खाने के लिये पाख़ाने की ओर दौड़ जाती हैं। मेरा स्वभाव भी ऐसा ही है; फिर इसमें उसका क्या दोष ? हाँ, उसका एक दोष अवश्य था, और वह थी उसकी सभ्यता। एक सद्गृहस्थ की नाईं यह उसका गुण ही था; परंतु वह न जानता था कि मुझ-जैसी दुराचारिणी स्त्री को सभ्यता के बदले असभ्यता ही अधिक भली लगती है।"

अब मेरी समझ में आया कि उस पुराने कपड़े बेचनेवाले वृद्ध दूकानदार ने दिलारा की केवल आँखें देखकर ही कैसे जान लिया था कि दिलारा दुराचारिणी है। मैं बड़ा व्यवहार-दक्ष था, किंतु मनुष्य का चेहरा देखकर न बतला सकता था कि वह सुशील है या दुःशील। मुझे सामुद्रिक शास्त्र (Phrenology) का ज्ञान न था। दिलारा का प्रत्युत्तर सुनकर अमीरुद्दीन का मुँह उतर गया। दिलारा ने अमीरुद्दीन पर असभ्यता का जो दोषारोपण किया, उसे वह सहन न कर सका; परंतु बेचारा कामुक वृत्तिवाला अमीरुद्दीन उसे इस दोषारोपण के लिये शिक्षा ही क्या दे सकता था ? जैसे बने अपने मन को समाधान करने के निमित्त वह बोला—"दिलारा ! सचमुच यह मैं अब तक न जानता था कि मेरी वह असभ्यता ही तुझ पर विजय प्राप्त करने में कारणभूत हुई है।"

दिलारा हँसती-हँसती बोली—"वाह रे दीवाने ! क्या कहना है ? अरे सिड़ी, तूने मुझ पर विजय प्राप्त की है, या मैंने तुझ पर ? मेरे मुँह से शब्द निकला कि बस, तूने अपना ही अर्थ साँटने के लिये अपनी गर्दन फँसाई; यही है न तेरी विजय का दिग्दर्शन ? शहादतअली का स्वभाव ऐसा न था। वह सभी बातें यथास्थान और यथासमय ही पसंद करता था। सिर की पगड़ी सिर पर और पाँव की जूती पाँव में ही होना

चाहिए, ऐसा उसका स्वभाव था। यही स्वभाव मुझे भला न लगता था।"

"अरे, वह तो बड़ा अरसिक था; मैं तो ऐसी जूती को सिर पर रखकर भरे बाज़ार नाचूँ।" ऐसा कहते हुए अमीरुद्दीन ने दिलारा को अपनी ओर खींचा।

क्रोध का ढोंग करते हुए दिलारा ने अमीरुद्दीन का हाथ छुड़ाते हुए नखरे से व्यंग्य स्वर में कहा—"अमीरुद्दीन, तू तो पागल ही है। अरे! वह कल ही मरा है, मुझे थोड़े दिन सूतक भी मनाने देगा कि नहीं?"

अमीरुद्दीन खिलखिलाकर हँस पड़ा, और बोला—"ओहो! यह तो मैं भूल गया था कि आप शहादतअलीख़ाँ की बेगम हैं। बड़ा गुनाह हुआ; मुझे माफ़ फ़रमाइएगा।"

हाँ, अब रंग जम चला। मित्रो इन नर-पिशाचों के रंग के साथ-ही-साथ मेरे हृदय का संताप भी बढ़ चला, तथापि मैं विवेक-भ्रष्ट नहीं हुआ। उस समय मैंने अपनी आँखों और मन को जितना जाग्रत रक्खा, उतना ही अपनी बुद्धि को भी विवेकमय रखकर जाग्रत् रक्खा। दिलारा अमीरुद्दीन को धक्का मारकर बोली—"हरामख़ोर! तुझे और क्षमा! नहीं, तुझे इसका पूरा दंड दिया ही जाना चाहिए।"

घबराया हुआ-सा बनकर अमीरुद्दीन गिड़गिड़ाता हुआ बोला—"हाँ, प्रसंग तो कठिन है; किंतु इस प्रसंग से मुझे कुछ भय न होकर उलटा आनंद ही होगा—

तुमको वल्लाह है कोई ज़ुल्म न बाक़ी रह जाय;
हौसले दिल के निकालो, न अर्मान रहे।

बोलिए, इस ख़ादिम (दास) को क्या सज़ा फ़रमाई जायगी?"

"जो मैं मुनासिब समझूँ, सो" कहते हुए दिलारा ने अपनी युगल बाहों से अमीरुद्दीन का आलिंगन किया, और फिर उसके गलबाहियाँ डाल दोनों हँसते हुए घर की ओर चल दिए। जाते-जाते अमीरुद्दीन हँसकर बोला—"ख़ुदा करे, इन गोरी-गोरी गोल बाहों में गिरफ़्तार रहकर अमीरुद्दीन हमेशा ऐसी ही सज़ा भोगता रहे।"

दोनो फिर खिलखिलाकर हँसे, और मकान में चले गए। अब मैं बाग़ में अकेला ही रह गया था, इसलिये लता-मंडप में से निकलकर बाग़ ही में इधर-उधर घूमने लगा। मन अत्यंत उद्विग्न था, अंतःकरण में बहुत-से विचार उठते और लय होते थे। उन दोनो के अंतिम मिश्र हास्य से मेरे माथे में वज्राघात के जैसी वेदना हो रही थी। यदि मेरी जगह कोई दूसरा होता, तो उन दोनो को अवश्य ही यमपुरी पहुँचा देता, अथवा संतापातिशय से वह स्वयं ही पागल बन जाता। मैं यद्यपि पागल न हो गया था, तथापि मेरी स्थिति लगभग पागल के जैसी ही थी। मेरे हृदय में जो अनंत विचार-तरंगें उदय हो रही थीं, और मुझे असाधारण व्यथा दे-देकर अंत को हृदय में ही अस्त हो रही थीं, उनकी कोई दूसरा मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। बाग़ के बाहर चला जाऊँ, बाग़ में ही घूमता रहूँ या घर में प्रवेश करूँ, यह सब मुझे कुछ भी सूझ न पड़ता था। अंत को अंधकार हो में मैं एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, और भविष्य के लिये अपने कर्तव्य-कर्म पर विचार करने लगा।

मित्रो, अब संसार में मेरा अस्तित्व केवल एक प्रेत के नाईं है। इसके लिये मुझे कुछ दुःख भी नहीं है, प्रत्युत मुझे आनंद ही होता है। मैं मर गया, सो तो ठीक; किंतु मैं उस भयंकर काले बुख़ार के रोग से नहीं मरा, वरन् मनुष्य-समाज के उस 'प्रेम-रहस्य' को जाननेवाले एक रसिक मनुष्य-रूपी रोग से मरा हूँ। मेरी स्त्री का दुराचरण और अमीरुद्दीन का मित्र-द्रोह, यही मेरी मृत्यु के कारण रूप हैं। अन्य लोगों की दृष्टि से मरण-प्राप्त शहादतअली अब अपनी दृष्टि से भी मृत्यु को प्राप्त हुआ है। जो मैं अपना घर, अपनी स्त्री और अपना मित्र समझकर, आशा-रूपी अमृत-सिंचन द्वारा क़ब्रस्तान से भी जीवित हो बाहर आया था, वही मैं अब निराशा के विष-दाह से जलकर राख बन गया हूँ। मेरा घर, हाँ, मेरा ही घर; मेरे पिता का घर, सो मेरा घर; यह तो ठीक, परंतु अब उस घर में जाने का मेरा क्या मुँह रहा? मैं जीवित हूँ, ऐसा कहकर यदि मैं अपने घर में प्रवेश करूँ, तो यह दोज़ख़ के कीड़े मेरे

अंतः करण में वारंवार दंशन करके मुझे त्रसित कर देंगे ! अस्तु, मित्रो ! मैंने जी में ठान लिया कि अब तो इस घर में भूत ही बनकर प्रवेश करूँगा, और इन दोनो नराधमों को ऐसा कठोर दंड दूँगा, जो लोगों के सामने निष्ठुरता के इतिहास में एक अपूर्व उदाहरण रहे । दिलारा ! तेरा आक्रोश, तेरा शोक-संताप और तेरा अश्रुपात ही देखने के लिये मैंने इस बाग़ में, इस प्रकार, इस भेष से, प्रवेश किया था; परंतु तेरा हृदय प्रेम-शून्य निकला, और तेरी इंद्रिय-लोलुपता प्रकट हो गई। अपने लिये नहीं, तो लोक-लाज के ही भय से यदि तूने थोड़ा-बहुत वैधव्य-दुःख का ढोंग रचा होता, तो आज शहादतअली अवश्य ही तेरे जाल में फिर फँस जाता; परंतु शुक्र है उस पाक परवरदिगार का कि उसने परीक्षा के समय तेरा अंतःकरण खोल दिया, और मुझे तेरे कपट-जाल से बचा लिया। ख़ुदावंद करीम ! मैं तेरा शुक्रिया किन अलफ़ाज़ों में अदा करूँ ? मेरे हृदय का रक्त चूसनेवाली इस राक्षसी के फंदे से छुड़ाने के निमित्त ही तूने मुझे क़ब्रस्तान की सैर कराई। दिलारा ! पिशाचिनी दिलारा ! तेरे जान में तो शहादतअली क़ब्रस्तान में सो रहा है; परंतु याद रखना, शहादत का भूत अवश्य ही तेरे सिर पर चढ़कर अपना वैर लेगा !

सारी आयुष्य में जो खोने योग्य नहीं, उसे मैं खो बैठा; जो नितांत असह्य है, उसे भी मैंने सहन किया; जो आँखों से कदापि देखा नहीं जा सकता, उसे भी मैं अपने हृदय पर हाथ रखकर चुपचाप देख चुका ! संसार के अनंत हृदयों में जो दो हृदय मुझे अत्यंत विश्वस्त प्रतीत होते थे, उन्हीं की ओर से, बदले में, मुझे विश्वासघात मिला; फिर और मैं क्या-क्या रोऊँ ? मैं न जानता था कि इस संसार में और क्या सावधानी चाहिए। अरे ! क्या प्रत्यक्ष विश्वास पर भी विश्वास रखना भूल है ? सच मानना मित्रो ! उस समय एक बार तो मुझे यह शंका हुई कि मैं स्वप्नावस्था में हूँ। भला मेरी परमप्रिय दिलारा मेरे साथ कहीं ऐसा विश्वासघात कर सकती है ! मेरा प्राणाधिक प्रिय मित्र अमीरुद्दीन कहीं ऐसी बेईमानी कर सकता है ? मैंने आँखें फाड़-फाड़ अपने शरीर का

निरीक्षण किया, कितनी ही चुटकियाँ काटीं, और अंत को अपनी उँगली पर दंत-प्रहार भी किया; किंतु वह स्वप्न कहाँ था ? सभी बातें प्रत्यक्ष थीं। मित्रो ! क्या इससे भी अधिक अपमान हो सकता है ? क्या इससे भी अधिक विडंबना कभी ध्यान में आ सकती है ? क्या इससे भी अधिक किसी की दुर्दशा होना संभव है ? अब आपसे और अधिक क्या कहूँ ?

मैं चिंता में तल्लीन हो गया था। थोड़ी देर बाद सिर उठाया, तो मल्लिका की सुगंध आई। मैं उठा, और मल्लिका-मंडप के पास पहुँचा। पूरा मंडप शुभ्र पुष्पों से आच्छादित था, सुगंध की लहरें उठ रही थीं। मेरी इच्छा हुई कि दस पाँच फूल तोड़ लूँ। मेरा ही वह मंडप था, मंडप क्या, पूरा बाग़ मेरा था; किंतु अब जब फूल तोड़ने के लिये हाथ बढ़ाया, तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उन फूलों पर मेरा कोई भी अधिकार नहीं रहा ! उन सुगंधित शुभ्र पुष्पों को मैंने एक बार फिर देखा; तो मेरा अंतःकरण भक्ति से भर आया। मैंने दोनो हाथों से पुष्प तोड़े, और उस पाक परवरदिगार की शुद्ध अंतःकरण से प्रार्थना करके वे शुभ्र पुष्प उसी ज़ात पाक को सभक्ति अर्पण कर दिए। संभव है, कितने ही विपथगामी प्रेमी अपनी विलास-सामग्री का मेरे हाथों इस प्रकार दुरुपयोग होते देख मेरे ऊपर क्रोध करें; किंतु फिर भी मुझे आशा है कि मेरी स्वाभाविक अरसिकता को ध्यान में रखते हुए वे महानुभाव मुझे क्षमा करेंगे।

विलासलोलुपा विपथगामिनी दिलारा ! शहादतअलीख़ाँ जीवित हो या मृत, परंतु इतना तो तू कदापि न भूलेगी, और न अब तक भूली है कि तूने उसकी आत्मा को असह्य दुःख पहुँचाया है। तेरी धारणा होगी कि मृत मनुष्य क्या कर सकता है। परंतु ध्यान रखना कि उसी मृत मनुष्य का भूत तुझसे पूरा-पूरा बदला लेगा। मेरे क़ब्रस्तान जाने से पहले यदि तेरा दुराचरण मेरी दृष्टि में आया होता, तो अवश्य ही मुझे संसार के समक्ष अपनी सूरत दिखाने का मुँह न रहता; परंतु अब तो मैं चाहे जिस वेष में और चाहे जिस नाम से इस संसार में ख़ुशी से जीवित रह सकूँगा, और फिर जिस प्रकार तू धीरे-धीरे मेरे जाने विना ही

दुराचरण में प्रवृत्त हुई, उसी प्रकार तेरे इस घोरतर अपराध की प्रतिशिक्षा भी मैं धीरे-धीरे और तुझे ख़बर दिए बिना ही दे सकूँगा। मेरे स्वभाव में वैर-बुद्धि नहीं है; परंतु अब कोई अन्य उपाय ही नहीं रहा। दिलारा! मेरे अनजाने ही वैर की यह कल्पना मेरे मन में उदय हुई है, वह धीरे-धीरे बढ़ती ही जाती है, और अधिकाधिक दृढ़ होती जा रही है; मैं क्या करूँ?

सहज ही मेरा हाथ मेरी जेब में चला गया, और वही क़ब्रस्तानवाला रत्नजटित शीशफूल मेरे हाथ में आया। उस रत्नालंकार को मैंने जेब से बाहर निकाला, तो चाँदनी में उसका तेज प्रथम से शतगुणा प्रतीत हुआ। दिलारा! यह अलंकार मैं हज़रत मलिक-उल-मौत के दरबार से लौटते समय तेरे ही लिये लाया था, अब भी मैं इसे तेरे ही लिये अपने पास रक्खे छोड़ता हूँ। जब मैं तुझे हज़रत मलिक-उल-मौत के दरबार में ले जाऊँगा, तब वहीं पर यह अलंकार तेरी भेंट करूँगा। क़ब्रस्तान में रक्खी हुई वह दौलत फिर मेरे चक्षुद्वय में नाचने लगी। शहादतअलीख़ाँ नाम से अपने अस्तित्व का अंत होने पर किसी अन्य वेष में अन्य नाम से प्रसिद्ध होने के लिये वह संपत्ति मेरे लिये अति उपयोगी होने के कारण मैं उस संपत्ति को अपने भविष्य के वैर लेने की कल्पनाओं के साथ शृंखलाबद्ध करने लगा। दिमाग़ी फ़रिश्ता तो मुझ पर पहले से ही प्रसन्न था, फिर इस अवसर पर तो उसने अपूर्व ओजस्वी बन पूर्ण सहायता प्रदान की, और भविष्य के कार्य-क्रम को क्षण-भर में ही मेरे मस्तिष्क में अंकित कर दिया। अस्तु, मैंने भी खुदावंद करीम का नाम लेकर दृढ़ निश्चय कर लिया कि दिलारा और अमीरुद्दीन दोनो ही को योग्य शिक्षा देनी चाहिए। दिलारा! स्त्री के कुलांगार निकलने पर उसके पति का हृदय क्या कहता है, यही मेरे अंतर्चक्षुओं के दिखाने के निमित्त मैं आज से ही प्रयत्न करूँगा। तू सँभल जा।

पाँचवाँ प्रकरण

देश-त्याग

मैं बड़ा उदास हो उस बग़ीचे से बाहर निकला, और धीरे-धीरे शहर की ओर चलने लगा। मैं चारो ओर शून्य दृष्टि से देखता जाता था। मार्ग में यदि कोई मिला, तो उसने भी मुझे देखा-न देखा-सा कर दिया। कारण, अब मैं दिल्ली का वह प्रसिद्ध रईस शहादतअलीख़ाँ न था, वरन् एक भिखारी के तुल्य था, जो अपना तड़फड़ाता हुआ जीव अपनी मुट्ठी में बाँधे हुए बचाए लिए जा रहा था। इस नए भिखारी को भूख भी बड़े ज़ोरों की लग रही थी, परंतु वह भूख अन्न की न थी, किंतु दिलारा के रक्त की थी। दिलारा का रक्त पिए बिना मुझे शांति होने की ही न थी। उस पुराने कपड़े बेचनेवाले वृद्ध दूकानदार ने भी मुझसे यही कहा था कि देखो होशियार रहना; कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारी माशूक़ा तुम्हारा ख़ून चूस जाय। बात तो तभी है यार कि जब तुम ख़ुद ही उसका ख़ून चूसकर आओ। ओहो! दिलारा ने मेरा रक्त तो क्या मेरे शरीर का सर्वस्व ही चूस लिया है। ओह! उसने तो इस संसार से मेरा अस्तित्व ही नष्ट कर दिया है। अस्तु ऐसी भयानक राक्षसी के रक्त-पान का प्रयत्न अवश्य ही करना चाहिए। उस अधमा का हृदय चीरकर सभी रक्त एक ही बार न पी लेना चाहिए; परंतु प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा रक्त पीकर उसकी देह को निरी रक्त-हीन बना देना चाहिए। दिलारा! राक्षसी दिलारा! तू गाँठ बाँध रख कि शहादत-अलीख़ाँ का भूत एक दिन तेरे सिर पर अवश्य सवार होकर तुझे दिखा देगा कि स्त्री का दुराचरण देखकर पति की क्या गति होती है।

ऐसे-ही-ऐसे विचार करता हुआ मैं बहुत दूर निकल गया। सारा

शहर पार करके शहर बाहर एक सराय में जा पहुँचा। वहाँ दो-चार मुसाफ़िर पड़े थे, उन्हीं की तरह मैं भी वहीं विश्राम करने के लिये ठहर गया। मेरे हृदय में नाना प्रकार के विचार उठ रहे थे, किंतु शरीर को तनिक-सा विश्राम मिलते ही निद्रा आ गई। जब आँख खुली, तो चारो ओर सूर्य का प्रकाश मेरी दृष्टि पड़ा। रात नींद कुछ अच्छी आ गई थी, इसलिये प्रातःकाल हृदय कुछ शांतिमय प्रतीत हुआ। चेहरे पर की गहरी उदासीनता भी कुछ हलकी हो गई, और उत्सुकता में कुछ वृद्धि प्रतीत हुई। शौचादि से शीघ्रता-पूर्वक निवृत्ति पाकर मैं एक मिठाईवाले की दूकान पर पहुँचा, और वहाँ थोड़ा जलपान करके पास ही की एक दूकान से काग़ज़, क़लम, दवात आदि भी लेता आया। शहादतअलीख़ाँ तो मर चुका था, किंतु उसकी लेखन-शैली और हस्ताक्षर आदि की पूर्ण स्मृति मेरे मस्तिष्क में विद्यमान थी, और मेरा हाथ भी उसी गति में बँधा हुआ था। अस्तु, मैंने एक पत्र इस आशय का लिखा कि मेरी जो रक़म दरबार पर चाहिए, सो वह मेरी स्त्री या किसी अन्य उत्तराधिकारी को न दी जावे, वरन् उस सभी धन का उपयोग मेरे नाम से कुएँ, बावड़ी और धर्मशालाएँ बनवाने में किया जाय। इस पत्र को लेकर स्वयं मैं ही सरकारी कोषाध्यक्ष के पास गया, और यह कहकर उन्हें दे आया कि यह पत्र शहादतअलीख़ाँ ने मरते समय मुझे दिया था; इसे आप तक पहुँचा देने के लिये मुझसे वादा करा लिया था; अब आप जानें, और आपका काम। प्रिय मित्रो ! इस प्रकार मैं स्वयं ही अपनी मृत्यु का समाचार सरकार-दरबार में फैलाने लगा।

उस दिन तो दिन-भर ही मैं शहर में इधर-उधर भटकता रहा। किंतु रात्रि होते ही उसी सराय में आ पहुँचा, और निश्चिंत हो एक नींद सोया। तड़के चार बजे के पहले ही मैं उठ बैठा, और वहाँ से सीधा अपने मक़बरे में आ पहुँचा। मेरे चचा, मरहूम उसमानअलीख़ाँ, मुर्शिदाबाद में रहते थे; इसलिये मैंने थोड़े दिन मुर्शिदाबाद में ही रहकर बिताने का निश्चय किया। अस्तु, चलते समय थोड़ी रक़म साथ ले

जाने की इच्छा से मैं अपने कुटुंब के मक़बरे में उतरा, और वहाँ से एक बड़े थैले में अशर्फ़ियाँ भरकर निकाल लाया; फिर दीवार में जो सेंध मैंने उस दिन लगाई थी, उसे अपने हाथों भले प्रकार मिट्टी और पत्थर के टुकड़ों से चुनकर बंद कर दी। अब मैं शहर से कुछ मज़दूरों और कारीगरों को बुला लाया, और मक़बरे में जहाँ कहीं मरम्मत की आवश्यकता थी, करा दी। मैंने वहाँ अपनी उस कच्ची क़ब्र को भी चूने से पक्की बँधवा दी। उस पर एक संगमरमर का पत्थर जड़वाकर यह खुदवा दिया कि शहादतअलीख़ाँ के एक रिश्तेदार ने मुर्शिदाबाद से आकर यह यादगार बनवाई। इस क़ब्र के पास ही मैंने पत्थर का एक दीप-स्तंभ भी खड़ा करवा दिया, और उस पर मोटे-मोटे अक्षरों में शहादतअलीख़ाँ यह नाम खुदवा दिया। यह सब मैंने इसीलिये किया, जिसमें धन-रक्षा के लिये मैंने जो मरम्मत मक़बरे की कराई थी, उस पर दिलारा को कोई आशंका न हो सके, और वह यही समझे कि मुर्शिदाबाद से आए हुए किसी रिश्तेदार ने शहादतअली की क़ब्र बँधाई होगी, और उसी ने लगे हाथ मक़बरे की भी मरम्मत करा दी होगी। यह सब व्यवस्था करके अब मैं मुर्शिदाबाद जाने का उद्योग करने लगा।

शहर का बाज़ार अब तक यमुना-किनारे ही लगा करता था। अस्तु, मैं वहाँ पहुँचा, और सबसे पहले मैं उस पुराने कपड़ों के वृद्ध दूकानदार से मिला। उसके पास से मैंने दो-चार कपड़े और मोल लिए, और उस बूढ़े ने उनकी जो क़ीमत मुझसे माँगी, मैंने उसे वही अदा की। अस्तु, वह प्रसन्न होकर मुझसे गप-शप लड़ाने लगा। विषय तो उसकी बातचीत का वही था; 'हेर-फेर चुटिया पर हाथवाली कहावत उसके साथ ख़ूब ही घटती थी। आप बात चाहे जो उठाइए, किंतु वह उसको खींच-खाँचकर वहीं ले जायगा, और अंत को उससे यही दर्शाकर सिद्ध करने का प्रयत्न करेगा कि स्त्री-जाति अत्यंत ही तिरस्कार और अविश्वास के योग्य है। उस वृद्ध के अत्यधिक आग्रह करने पर मैं एक दिन उस का अतिथि बनकर रहा; फिर दूसरे दिन मुर्शिदाबाद जाने के लिये

निकला। मुर्शिदाबाद भागीरथी नदी के किनारे बसा है, और एक बड़ा नामी शहर है। बंगाल-प्रांत में मुर्शिदाबाद ही सबसे बड़ा शहर गिना जाता है। उस वृद्ध दूकानदार ने मेरे लिये पहले ही से एक नाव किराए पर ठहरा रक्खी थी। रात्रि के १० बजे वह नाव लंगर उठाने को थी। अस्तु, मैं ठीक समय पर वहाँ जा पहुँचा। उस नौका का टंडैल एक वृद्ध मनुष्य था, जिसने मुझे देखते ही मेरा बड़ा सत्कार किया। वह बोला—"आप ठीक समय पर आ पहुँचे। यदि आप थोड़ी ही देरी और लगाते, तो आपका दिल्ली-शहर से निकलना भारू हो जाता।"

नौकावाले वृद्ध का यह कथन मेरी समझ में नहीं आया। मैं बोला—"यदि मुझे थोड़ी देर और लगती, तो यह नौका यहाँ से चल देती ?"

"न साहब ! यह कैसे हो सकता है ? जब मैं आपसे एक बार पूरा भाड़ा ले चुका, तब फिर आपको लिए बिना कैसे जा सकता था ?" इस प्रकार कहकर वह टंडैल नौका के सामान की व्यवस्था करने लग गया, और मल्लाहों को पतवारें खेने के लिये भेज दिया। इस समय चाँदनी स्वच्छ थी, इसलिये जब वह प्रचंड नौका यमुना के काले जल पर दौड़ने लगी, तब मुझे बड़ा ही आनंद मिला। थोड़े समय के बाद वह टंडैल मेरे पास फिर आया, और मुझसे बोला—"जनाब सेठ साहब ! यदि आप सोना चाहें, तो मैं बिछौने तैयार कराऊँ।"

उसकी बातचीत के ढंग में एक विशेष नम्रता देख मुझे कुछ आश्चर्य-सा हुआ। मैंने उससे पूछा—"टंडैल ! मैं एक साधारण यात्री हूँ, फिर भी तुम मुझे सेठ साहब, सेठ साहब करके क्यों संबोधन करते हो ?"

बुड्ढा टंडैल हँसते हुए बोला—"जनाब ! भय न कीजिए। मेरी ओर से आपको निःशंक रहना चाहिए। क्या आप समझते हैं कि मैं शैतानजंग की टोली के आदमियों को नहीं जानता ? शैतानजंग ने मेरा अनंत उपकार किया है, मैं ऐसा कृतघ्नी नहीं कि उसके किए उपकारों को भुला दूँ। हाँ, सुना है कि उसकी टोली के आदमियों को पकड़ने का फिर से हुक्म हुआ है; क्या यह बात ठीक है ?"

यह तो मैंने अब जाना कि मैं शैतानजंग की टोली का कोई आदमी हूँ। टंडैल की इस भूल से मुझे कुछ बुरा भी लगा। मैंने पूछा—"यह तूने कैसे जाना कि मैं शैतानजंग की टोली में से कोई हूँ।"

बुड्ढे ने मुझे एक लंबा सलाम किया, और फिर आँखें मटकाता हुआ बोला—"इतने ही में घबरा गए, सेठ साहब, किंतु, जनाब ! मैं तो आपका लेश-मात्र अनिष्ट करने का नहीं। जनाब की आयु मुझसे चार ही पाँच वर्ष छोटी होगी, इसलिये अब तो हम और आप पके हुए पान के सदृश हैं। अस्तु, ऐसी पूरी आयु में अब मेरा आपका एक-दूसरे पर भेद खुल जाय, तो इसमें चिंता ही क्या है।" इतना कहकर बुड्ढा अपना मुँह मेरे कान से लगाकर धीरे से बोला—"अजी साहब ! मैं भी तरुणावस्था में शैतानजंग ही की टोली में था। बहुत वर्षों देश-देशांतर भटकता रहा, फिर कहीं यह टंडैल का धंधा मैंने आरंभ किया है। आज-कल आप कहाँ हैं, और क्या करते हैं ?"

बुड्ढे टंडैल ने मुझे भी अपनी ही पंक्ति का समझ लिया, इसलिये सहज ही मैं कुछ खिन्न-सा हो गया। कदाचित् टंडैल ने मेरे साथवाली छोटी-मोटी रक़म को देखकर ही मुझे शैतानजंग की टोली का कोई डाकू समझ लिया हो, सो बात भी ठीक न थी। कारण, उसने अब तक भी मेरे पासवाली पूँजी न देख पाई थी। फिर कोई कारण मुझे न दिखाई देता था कि टंडैल ने मुझे डाकू क्यों ठहराया। हाँ, यह बात अवश्य थी कि मेरा वेष कुछ विचित्र था; परंतु यह पोशाक तो मैंने हाल ही में उस पुराने कपड़े बेचनेवाले वृद्ध से ख़रीदी थी। मैंने बहुत विचार किया, किंतु कुछ भी न समझ सका कि इस बुड्ढे टंडैल ने मुझे डाकू क्योंकर समझा। अस्तु, यह रहस्य जानने के लिये मैंने टंडैल को अपने पास बैठाया, और पुराने मित्र की नाईं उससे वार्तालाप करने लगा। मैंने पूछा—"मित्र ! बोलो, मुझे क्या करना चाहिए कि तुम्हारी तरह कोई दूसरा मनुष्य मुझे न पहचान सके ?"

वह सहानुभूति दिखाता हुआ बोला—"आप डरते क्यों हैं सेठ

साहब ! अभी तो इस नौका पर मेरा ही राज्य है; परंतु, हाँ, मुर्शिदा-बाद पहुँचते ही आप पहले इस अँगरखे को बदल डालिएगा। बस, फिर कोई डर नहीं।"

मेरी कल्पना ठीक ही उतरी। मुर्शिदाबाद बहुत दूर था, तो भी मैंने उसी समय उस अँगरखे को शरीर पर से उतार डाला, और चीर-फाड़कर यमुनाजी को प्रदान कर दिया, और फिर वही पहलेवाला मुर्शिदाबादी सरदारी अँगरखा निकालकर पहन लिया। मैंने उस टंडैल से फिर पूछा—"मालूम पड़ता है, शैतानजंग से आपका विशेष परिचय है; मैं तो उसके विषय में अधिक नहीं जानता हूँ।"

टंडैल गंभीर स्वर में बोला—"हाँ, संभव है, आप उसके विषय में अधिक न जानते हों। मैं स्वयं जब उसकी टोली में था, तब हम दोनो एक-दूसरे को सूरत से जानते-पहचानते तक न थे। कारण, शैतानजंग की अनेकानेक टोलियाँ थीं, और वह स्वयं जब तक जिस टोली के साथ मन चाहता, उसी टोली के साथ रहता था। आगे जाकर उसका और मेरा स्नेह हो गया, और धीरे-धीरे दिन-दिन बढ़ता ही गया; यहाँ तक कि फिर अंत को मेरे और उसके बीच कोई भी जुदाई न रह गई थी। शैतानजंग डाकू तो था खरा; परंतु उसके जैसा दीन-बंधु मैंने अन्य कोई आज तक नहीं देखा ! यदि उसे मालूम हो कि अमुक मनुष्य के पास खाने-पीने को कुछ भी नहीं है, भूखा पड़ा है, तो फिर चाहे कुछ भी हो, किंतु उसे दस-पाँच की सहायता दिए बिना वह रहता ही न था। यदि किसी दीन मनुष्य पर कोई कुछ ज़ुल्म करे, अथवा कोई राज-दरबारी किसी दीन को अकारण ही सतावे, तो वह उसका कट्टर शत्रु बन जाता था, और जब उसका सिर धड़ से अलग कर देता, तब कहीं चैन लेता था। स्त्रियों के संबंध में तो शैतानजंग बड़ा ही उदार था, और हर समय स्त्रियों का समुचित आदर करता था। उसने अपनी आयु में हज़ारों नहीं, लाखों ही डाके डाले हैं; परंतु कभी, कहीं भी, उसने किसी भी स्त्री के केशों का स्पर्श नहीं किया। हाँ, एक बात उसमें अवश्य थी;

बह यह कि शैतानजंग दुराचारिणी स्त्रियों का तो जानी दुश्मन था। यदि कभी उसने जान पाया कि अमुक स्त्री अपने पति को आँखों में धूल झोंककर पर-पुरुष के साथ दुराचरण में प्रवृत्त है, तो बस, उसको आँखों में ख़ून उतर आता था, फिर जब तक वह उस स्त्री की पूर्ण विडंबना न कर लेता, कभी नींद-भर न सोता था। उसी प्रकार यदि वह जान पाता कि अमुक पुरुष पर-स्त्री के साथ जार-कर्म में प्रवृत्त है, तो फिर बस, विश्वास है कि दूसरे दिन वह पुरुष किसी को जीवित न मिलेगा। इसी जार-कर्म के दंड में शैतानजंग ने एक दिन औरंगज़ेब बादशाह के एक बड़े सरदार को इस दुनिया से कूच करा दिया था। उस सरदार ने एक हिंदू-स्त्री का पवित्र सतीत्व भ्रष्ट किया था। बस, इसी पर शैतानजंग लाल हो गया था।"

शैतानजंग का यह चरित्र मुझे बड़ा आश्चर्य-प्रद प्रतीत हुआ। मैंने उस बुड्ढे टंडैल से कहा—"यह तो मैं जानता हूँ कि वह मक्के शरीफ़ गया है, किंतु—"

मुझे बीच ही में अटकाकर वह आश्चर्य-चकित हो बोल उठा—"हाँ! आप जानते हैं, वह मक्के शरीफ़ गया है? मैं तो समझता था, यह बात मेरे अतिरिक्त और कोई भी नहीं जानता! मक्के शरीफ़ जाने से पहले शैतानजंग मेरे पास आया था, उस समय उसने मुझसे कहा कि मैं अपनी मक्का जानेवाली बात सिर्फ़ तुझसे ही कहता हूँ; यह बात मैंने और किसी पर भी प्रकट नहीं की, और न किसी पर प्रकट करूँगा, तुम भी इसे अति गुप्त रखना। जब आप शैतानजंग की इस गुप्त यात्रा के विषय में जानते हैं, तो अवश्य ही आप उनके घनिष्ठ मित्र रहे होंगे। ओहो! शैतानजंग इतना भारी आदमी! और फिर अंत में बेचारे को किस उतावलेपन में भागना पड़ा। सूरत के बंदर से मैंने ही उसे मक्के शरीफ़ जानेवाले एक जहाज़ में बिठाया था। ओहो! उस समय का दृश्य सदा ही मेरी आँखों में झूला करता है, अनेक शाही जासूस और फ़ौज की पूरी एक पल्टन उस अकेले बहादुर के पीछे पड़ी थी, उसी

समय वह अपनी स्त्री को लेकर छिपता-छिपाता मेरे पास तक पहुँचा था; पर वाह रे बहादुर ! सब-के-सब हाँपते हुए रह गए, और वह पट्ठा साफ़ निकल गया। शैतानजंग जैसा हृष्ट-पुष्ट था, वैसा ही सुंदर भी था; किंतु उसकी स्त्री बड़ी ही कोमलांगिनी और भीरु थी। अहा हा! उसे ईश्वर ने सोलहो आने सुंदरता दी थी। मैंने तो आज तक अपने जीवन-भर में ऐसी सर्वांगसुंदरी ललना कभी नहीं देखी। मैंने आज तक बहुतेरी कामिनी देखी हैं; किंतु मेरी समझ में तो वे सभी उस दस्युराज की पत्नी के तलवे धोने योग्य भी नहीं हैं। शैतानजंग का प्रेम भी उस स्त्री-रत्न पर बहुत ही अधिक था। शैतानजंग स्वयं ही ऐसा दिलेर था कि बड़े-से-बड़े बहादुर उसके आगे थर-थर काँपते थे; किंतु पत्नी के एक ही संकेत पर वही कठपुतली की नाईं नाचता था।"

टंडैल ने जब स्त्रियों के सौंदर्य का वर्णन आरंभ किया, तब मेरा मन सहज ही बड़ा उद्विग्न हो उठा। मैं एकदम बोल उठा—"अरे रे! उसे बेचारे को क्या ख़बर थी कि उस सौंदर्य के परदे के पीछे क्या-क्या हो रहा है, इसीलिये वह बेचारा उसके सौंदर्य-जाल में फँसा हुआ था। ख़ुदा ही जाने इस संसार में इस प्रकार कितने निर्दोष प्राणी इस जाल में फँसे हैं।"

मैं उसके विषय में ये सब बातें सहज ही बक गया; किंतु मेरी इन बातों से टंडैल को थोड़ा क्रोध चढ़ आया, और वह कुछ उत्तेजक स्वर में बोला—"आप यह क्या बेहूदा बोल रहे हैं। उस सती-साध्वी के विषय में मन में ऐसे विचार तक लाना महापाप है। उस पवित्र मूर्ति का नाम रोशनआरा था। वह बड़ी ही कोमलांगिनी थी; किंतु उसके पतिव्रत का तेज वज्र के सदृश दृढ़ और विलक्षण था! वह एक दस्युराज की पत्नी थी, सुतरां अनेक प्रसंगों पर उसे अकेली ही वन में रह जाना पड़ता था। एक समय एक श्रीमान्, सुंदर और रसिक पुरुष ने रोशनआरा से मुलाक़ात की; और अत्यंत विनीत हो उससे प्रेम-भिक्षा माँगी। उस साध्वी ने तुरंत ही एक सिंहिनी की नाईं उछाल मारी, और उसके जिस

पापी हृदय में प्रेम-तरंगें उठ रही थीं, उसे ख़ंजर से चीरकर उस प्रेम-रस को रक्त-रूप में प्रवाहित कर दिया। मेरी समझ में तो उस साध्वी के हाथ से उस पापात्मा को सद्गति ही मिली होगी।"

रोशनआरा की यह कथा सुनकर मेरे मन की बड़ी ही विचित्र दशा हो गई। मैंने मन-ही-मन सोचा कि ऐसी साध्वी के चरणों में मस्तक नवाकर अपने को अवश्य ही पुनीत बनाना चाहिए। वाह! वाह!! क्या ही अल्लाह के भेद हैं कि एक सामान्य दस्यु को तो ऐसी सती-साध्वी का समागम प्राप्त हो, और मुझ-जैसे ऐश्वर्य-संपन्न सच्चरित्र गृहस्थ के भाग्य में ऐसी दुराचारिणी विश्वयोषिता स्त्री-कलंक पड़ेली जाय! यह भी एक विचित्र योगायोग है, और क्या? प्रतिभा-संपन्न कवियों को तो रोशनआरा का पवित्र चरित्र बड़ा ही नीरस प्रतीत होगा। कवियों का तो कथन है कि स्त्री वही है, जो आपाद-मस्तक काव्यमयी हो। काम-पिपासिनी बन पर-पुरुष को आकर्षक दृष्टि से देखने को ही ये प्रतिभा-संपन्न कवि स्त्रियोचित स्वाभाविक धर्म गिनते हैं। इन्हीं दृश्यों को देखकर उनमें स्फूर्ति उदय होती है। दिलारा! साध्वी रोशन-आरा का पवित्र चरित्र सुनकर तू भी उस सती को रसहीना ही कहेगी। इसमें भी कोई आश्चर्य नहीं कि तू उसे राक्षसी तक कह डाले। कारण, उसने एक कामी पुरुष का रक्त प्रवाह करके तेरी दृष्टि में अक्षम्य अप-राध कर डाला है। ऐ नीच दिलारा! तेरा जी चाहे, सो तू कह सकती है; किंतु संसार-भर की दृष्टि में और उस पाक परवरदिगार की दृष्टि में वह अति उच्च थी, स्त्रियों की मुकुट-मणि थी। तू तो पशुओं से भी गई-बीती है; भला, उसकी और तेरी तुलना कैसी? कहाँ तो वह बहिश्ती आबेहयात और कहाँ तू दोज़ख़ की हलाहल, कहाँ तो वह पाक मूरत और कहाँ यह नजिस सूरत, कहाँ तो वह पाक कलमा और कहाँ यह शैतानी लाहौलविला, कहाँ तो वह निष्कलंक सच्चरित्रता और कहाँ यह पातकी दुश्चरित्रता; भला, कहाँ राम-राम और कहाँ टें-टें! शैतानजंग की जान के पीछे सैकड़ों राजदूत घूमा करते थे, किंतु फिर

भी वह ऐसी साध्वी स्त्री को प्राप्त करके अत्यंत सुखी था। सत्य है, स्त्री की पति-निष्ठा ही पति का परम सुख है। शहादतअली, तेरे भाग्य में तो ऐसा सुख आजन्म ही नहीं बदा है। दिलारा! ऐ पिशाचनी दिलारा! तूने मेरे किस दोष के कारण मुझे ऐसे परम सुख से वंचित रक्खा, और सदा के लिये मेरी उमंगों पर पानी फेर दिया। दिलारा! मेरे पास अथाह ऐश्वर्य, अमीरुद्दीन से कहीं अधिक सरस सुंदरता, अमीरुद्दीन जैसे दो को चित्त कर दूँ, ऐसी शक्ति। उसके जैसा ही तारुण्य, उससे कहीं अधिक विद्वत्ता। व्यवहार-दक्षता में तो अमीरुद्दीन मेरे सामने किसी गिनती में भी गिनने योग्य नहीं, और फिर हज़ार बात की एक बात तो यह कि तू मुझसे पवित्र विवाह-बंधन में बद्ध हुई थी; यह सब होते हुए भी, तूने अपने अंतःकरण में पर-पुरुष को आश्रय दिया, इसलिये यह तो स्वयं सिद्ध है कि तू पशुओं से भी नीच है। ओहो! कैसा भारी अंतर है; कहाँ तो वह सदाचार एवं पवित्रता की मूर्ति रोशनआरा और कहाँ यह दुराचरण एवं पापाचार की प्रत्यक्ष बुत; दिलारा! दिलारा! नरकलोलुपा दिलारा! तू परम पिता आदम एवं परम माता हौवा की संतान कहाई जाने योग्य कदापि नहीं हो सकती। तू तो स्त्री-वेश में शैतान है! शैतान!! भाड़ में जाय वह सौंदर्य, और भट्ठी में जले वह ऐश्वर्य। सत्य तो यह है कि साध्वी स्त्री के साथ झोंपड़े में भी जो सुख मिलता है, वह दुराचारिणी स्त्री के समागम से बड़े-से-बड़े ऐश्वर्य-संपन्न राजमहल में भी मिलने का नहीं। सदाचारिणी स्त्री चाहे जैसी कुरूपा क्यों न हो, अपने पति के लिये आनंद-प्रद ही होगी; परंतु दुराचारिणी स्त्री अप्सरा-तुल्य सुंदरी होने पर भी पति के अंतःकरण में घुन का-सा काम देगी, और नरक की सारी यातनाएँ उसे जीवन में ही भुगतनी पड़ेंगी। दिलारा, तूने शहादतअली के हृदय का रक्त-पान करके उसे रक्त-हीन बना दिया; इसलिये तू गाँठ बाँध ले कि शहादत तुझे इसका प्रतिफल यथाशक्ति बहुत ही शीघ्र देगा, और वह प्रतिफल भी ऐसा दारुण होगा, जिससे तेरी और अमीरुद्दीन-जैसे जारकर्मियों की आँखें खुल जायँगी।

मैंने उस टंडैल से पूछा—"शैतानजंग अपने साथ अपनी पत्नी को भी ले गया है न ?"

टंडैल ने खिन्न स्वर से उत्तर दिया—"नहीं साहब ! यदि यही हुआ होता, तो क्या न था। मैंने आपसे अभी कहा था न कि एक बड़े श्रीमान् ने कामासक्त हो रोशनआरा से प्रेम-भिक्षा माँगी थी, और रोशन-आरा ने उस पापाचारी को प्राण-दंड दिया था; बस, इसी पर बादशाह औरंगज़ेब ने अत्यंत क्रुद्ध हो दस्युराज को पत्नी सहित पकड़वाने का प्रयत्न किया, और इन दोनो प्राणियों के पीछे बादशाह ने सैकड़ों जासूस छोड़ दिए। शैतानजंग और रोशनआरा दोनो ही प्राण बचाने के लिये भागे, किंतु कई कारणों से कुछ समय उपरांत दोनो का साथ छूट गया। रोशनआरा अबला तो थी ही, बहुत दिनों तक अपने को न बचा सकी, और अंत को वह बादशाह के जासूसों के हाथ पड़ ही गई होती; किंतु वाह री औरत ! शाबाश है तेरी शुद्ध बुद्धि को ! तूने मुसलमानिनी होकर भी ब्राह्मण-क्षत्रियों की बहू-बेटियों के जैसे काम किए ! जब जनाब, उसने समझा कि अब मैं नहीं बच सकती, और जल्द ही गिर-फ़्तार कर ली जाऊँगी, तब भागते-भागते उसने गाँव के पास लगी हुई घास की एक बड़ी गंजी में चकमक से आग लगा दी; फिर जब वह गंजी धायँ-धायँ जलने लगी, और जासूस भी पास पहुँच गए, तब जिस शरीर को जीवित अवस्था में मेरे पति के अतिरिक्त और कोई भी स्पर्श नहीं कर सका, वह पवित्र शरीर मृत्यु के उपरांत भी दूसरे के हाथ पड़ने से पहले ही जलकर भस्म बन जाय, इस प्रकार कहते हुए वह हँसती हुई उस जलती हुई गंजी में कूद पड़ी। इस प्रकार अपने शरीर की रक्षा कर अपने पति को निश्चित कर गई ! जब यह बात शैतानजंग ने सुनी, तो वह बड़ा निराश हुआ, और फिर मक्के शरीफ़ चला गया। मक्का जाते समय जिसकी संपत्ति उसे जहाँ पहुँचानी थी, उसने बड़ी युक्ति से पहुँचा दी, और मज़ा तो यह कि किसी को कानोंकान ख़बर न पड़ी, यहाँ तक कि उस संपत्ति का पानेवाला भी न जान पाया होगा कि यह सब जादू-

सा क्या हो गया। तदुपरांत उसने अपनी टोली के प्रत्येक मनुष्य को सौ-सौ मुहरें उपहार में प्रदान कीं, और स्वयं वह नितांत निष्कांचन बन, सभी माया-मोह छोड़, फ़क़ीर हो मक्के शरीफ़ चला गया!"

शैतानजंग चाहे जैसा हो; वह चोर हो, लुटेरा हो, डाकू हो, बदमाश हो या चाहे जैसा दुष्ट क्यों न हो; परंतु मित्रो! उसने मेरे ऊपर अनंत उपकार किया था, यह मैं कदापि भूलने का नहीं। यदि उसने वह अनंत संपत्ति ले जाकर मेरे कुटुंब के क़ब्रस्तान में न रक्खी होती, तो दिलारा के रक्तपात करने की मेरी इच्छा ज्यों-की-त्यों ही रह जाती। शैतानजंग का मेरे ऊपर भारी अहसान था, इसलिये इस प्रकार अकस्मात् ही उसका विचित्र चरित्र सुनकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। रात बहुत अधिक हो गई थी। अस्तु, मेरे लिये जो बिछौने टंडैल ने बिछवाए थे, उन पर मैं लेट रहा, और थोड़ी ही देर में मैंने निद्रादेवी को आत्म-समर्पण कर दिया।

बुड्ढा टंडैल बड़ा मनचला मनुष्य था। उसने अपनी नाईं मुझे भी बुड्ढा ही समझ रक्खा था, इसलिये हमसिनी के नाते वह सभी बातें खुलकर करता था। अस्तु, मेरी और उसकी मार्ग-भर ख़ूब ही बनी। इस प्रकार अनुकूल स्थिति का लाभ लेते हुए और प्रतिकूल स्थिति का सामना करते हुए हम लोग पूरे दस दिन में मुर्शिदाबाद पहुँचे। मार्ग में एक दिन तूफ़ान उठा, और हमारी नौका नदी की तरंगों पर नाचने लगी; किंतु सुदैव से तूफ़ानी पवन शीघ्र ही शांत हो गई थी, और ईश्वर-कृपा से हमारा कुछ भी अनिष्ट न हुआ। मुर्शिदाबाद के घाट पर वृद्ध टंडैल से बिदा माँगते हुए मैंने उससे जो भाड़ा ठहराया था, उससे दूना अदा किया। मेरी ऐसी उदारता देखकर टंडैल ने बड़ी कृतज्ञता दिखाई, और बोला—"अब कब और कहाँ मुलाक़ात होगी, ख़ाँ साहब?"

"थोड़े ही दिनों बाद दिल्ली में। मुझे भूलिएगा नहीं, हाँ?"

"अजी, हुज़ूर को भूल सकता हूँ भला! किंतु आपके किस शुभ नाम का स्मरण रक्खूँ?"

ओहो ! बड़ी भूल हुई । मैंने वेषांतर तो किया, परंतु अब तक कोई नया नाम धारण न किया था; और न अब तक कहीं मुझे नाम की आवश्यकता ही पड़ी थी। मैं सिर खुजलाता हुआ बोला—"मित्र ! मेरा नाम नवाब पीरबख़्श है । कहो, तुम्हें यह नाम याद रहेगा न ?"

"अजी वाह साहब, याद क्यों न रहेगा ? नवाब साहब का नाम स्मरण रखना जितना सरल है, उतना ही भूलना भी कठिन है ! वाह-वाह ! क्या ही सुंदर नाम है ! यह नाम कैसे भूल सकता हूँ ? अच्छा तो नवाब साहब ! सलामआलेकुम !!"

"वालेकुमअस्सलाम ! जनाब टंडैल साहब !"

टंडैल से ख़ुशी-ख़ुशी दुआ-सलाम करके मैंने घाट से मुर्शिदाबाद शहर की ओर मुँह मोड़ा; और अपने हिंदू आढ़तिए का नाम पूछते-पूछते उसकी दूकान पर जा पहुँचा । इस आढ़तिए के साथ मेरी दूकान का बहुत पुराना संबंध था । अंतिम बार मेरी और इसकी दूकान का जो हिसाब हुआ था, उसमें इस आढ़तिए की ओर मेरा पौन लाख रुपया निकलता था। दिल्ली से ही मैं इस आढ़तिए के नाम शहादतअलीख़ाँ की ओर से एक हुंडी पौन लाख रुपए की लिखकर अपने साथ लेता आया था। अस्तु, मैंने दूकान पर पहुँचते ही वह हुंडी सेठजी को दिखाई। मेरी सरदारी पोशाक, रोब और वृद्धावस्था का उस आढ़तिए पर अच्छा प्रभाव पड़ा, और उसने मेरा यथोचित सत्कार करते हुए दो-चार कुशल प्रश्न पूछे । फिर मैंने अपने ही मतलब की बात छेड़ी, और उस आढ़तिए से बोला—"सेठजी ! जिस दिन सेठ शहादतअलीख़ाँ के पास से मैंने आपकी दूकान के नाम यह हुंडी कराई, उसके चौथे ही दिन वह बेचारे इस काले बुख़ार की बीमारी से गुज़र गए हैं; इसलिये इस हुंडी के विषय में यदि आपको कुछ पूछ-ताछ करनी हो, तो आप पहले दिल्ली को चिट्ठी-पत्री भेजकर अपना मन भर लें, और इसमें यदि दस-पाँच दिन का विलंब भी हो जाय, तो मेरी कोई हानि नहीं; मैं हुंडी पीछे सिकरवा लूँगा, मुझे अभी रुपए की ऐसी अधिक आवश्यकता भी नहीं

है, परंतु आपको मन भर लेना चाहिए; रक़म का मामला है।"

वह सेठ आयु में वृद्ध था, और बड़ा भला गृहस्थ प्रतीत होता था। मेरी मृत्यु-वार्ता सुनते ही उसका मुँह मलिन हो गया, और वह शोक-पूर्ण स्वर में सहानुभूति-पूर्वक बोला—"अरे रे! बड़ा बुरा हुआ! बेचारा भरी जवानी में चल बसा! उसके पिता का और मेरा परस्पर बड़ा स्नेह था। क्यों साहब! इस काले बुख़ार ने दिल्ली में बड़ा उत्पात मचा रक्खा है? ओहो! कैसा भला आदमी था। अजी साहब! वह लड़का तो पूरा हीरा था; बड़ा ही व्यवहार-दक्ष था। मुद्दतों से हमारा और उसकी दूकान का परस्पर व्यवहार था; किंतु हिसाब में हमें कभी एक कौड़ी का भी हेर-फेर नहीं मिला। एक बार मैं दिल्ली गया था, तब उसे देखा था, वाह! बड़ा ही सज्जन लड़का था। इस प्रकार कहकर वह थोड़ी देर विचार में पड़ गया। फिर बोला—"आपकी हुंडी सिकारने में मुझे कोई भी अड़चन नहीं। कारण, कल सायंकाल ही मेरे पास इस हुंडी की नक़ल के साथ उसका पत्र मिल चुका है।"

मित्रो! यह तो आप समझ ही गए होंगे कि मैं स्वयं ही अपने विषय में कैसी आड़-पेंच कर रहा था। दूकान का सभी व्यवहार मैं अपने ही हाथ से करता था; इसलिये मेरे ही हाथ की लिखी हुई उस हुंडी में सेठ को कोई आपत्ति ही न थी; फिर उसी हुंडी की एक नक़ल पत्र के साथ मैंने दिल्ली की उस सराय से ही लिखकर इस सेठ के सरनामे पर आगे ही से भेज दी थी; ऐसी स्थिति में शंका की कोई जगह ही न थी।

उन तीनो काग़ज़ों के हस्ताक्षर मिलाता हुआ वह सेठ फिर बोला—"क्यों साहब! आप क्या धंधा करते हैं?"

मैंने नम्रता-पूर्वक उत्तर दिया—"मैं जौहरी हूँ। दिल्ली के पास मेरी थोड़ी-सी जागीर भी है, इसीलिये बादशाह की ओर से मेरे कुटुंब को 'नवाब' का ख़िताब भी मिला है; परंतु इसमें कोई विशेषता नहीं। कारण, मेरा मुख्य धंधा जवाहरात बेचने का ही है। इसी व्यापार से मुझे अधिक लाभ भी है। दिल्ली में इस काले बुख़ार के मारे चार मास

से वहाँ मेरी कोई बिक्री नहीं हुई थी, इसलिये मैं यहाँ आया हूँ कि वहाँ (बंगाल) के सूबेदार साहब शौक़ीन आदमी हैं, और शहर में भी अच्छे-अच्छे रईस हैं, कुछ-न-कुछ बिक्री हो ही जायगी। देखिए, अब आ पहुँचा हूँ, कुछ खपत हो गई, तो अच्छा है। सेठजी, धंधा तो यह अच्छा है। परंतु सौदा जल्दी नहीं बनता; बस, यही एक ऐब इस रोज़गार में है। कभी-कभी तो एक ही ज़ेवर के सौदे में चार-चार, पाँच-पाँच मास लग जाते हैं। मैं यहाँ पहले ही पहल आया हूँ; यदि आप कुछ सहायता देंगे, तो मेरा काम बन जायगा। मेरी अभिलाषा है कि मैं अपना संबंध आप ही की दूकान से रक्खूँ। अस्तु, मैं अपना यह हुंडीवाला पौन लाख रुपया और जो कुछ रक़म मेरे पास है, सो सब आपके पास जमा किए देता हूँ।"

यह कहकर मैंने अपनी गठरी खोली, और उसमें से थैली निकालकर मुहरें और रुपए सेठजी के सामने गिनकर रख दिए। फिर मैंने अपना बक्स खोला, और उसमें से हीरे के अलंकार निकाल-निकालकर सेठजी के सामने रखने लगा। उन बहुमूल्य अलंकारों को देखकर वह लक्षाधिपति सेठजी भी दंग रह गए। सेठजी ने प्रत्येक अलंकार भली भाँति देखा, और फिर उन मुहरों और रुपयों को सँभाला। तदुपरांत मुझे उस धन और अलंकारों की एक रसीद लिख दी। अब मैं निश्चिंत हो गया; क्योंकि सभी जोखिम सेठजी को सँभलवा चुका था। अस्तु, सेठ की आज्ञा ले शहर में घूमने के लिये निकला, और इधर-उधर घूमता-फिरता हुआ अपने भावी कार्य-क्रम को स्थिर करने का प्रयत्न करता रहा। दैव अनुकूल था या प्रतिकूल, सो कौन जाने? किंतु हाँ, यह बात अवश्य थी कि जब से मैं मुर्शिदाबाद पहुँचा, सभी काम मेरे इच्छानुसार ही होते चले गए। शहर के जिस भाग में सरदार और जागीरदार लोग रहते थे, उसी भाग में मैंने अपने रहने के लिये एक सुंदर और विशाल भवन अपने उस हिंदू सेठ की मारफ़त किराए पर ले लिया, और उसी सेठ के द्वारा कितने ही अच्छे और विश्वास-पात्र नौकर भी

रख लिए। इस प्रकार मैं मुर्शिदाबाद में बड़े सरदारी ठाट से रहने लग गया। धीरे-धीरे नवाब पीरबख़्श का नाम मुर्शिदाबाद-भर में प्रसिद्ध हो गया। और, हर जगह मुझे समुचित सम्मान मिलने लगा। ग़रीब-ग़ुरबों को दान देने, अतिथि-अभ्यागतों का सत्कार करने, दीन-दुखियों की शुश्रूषा करने और प्रति समय प्रति व्यक्ति को यथायोग्य समुचित सहायता देने आदि के लिये मैंने ऐसी प्रसिद्धि पाई कि शहर के प्रायः सभी आबाल-वृद्ध के मुँह पर मेरा नाम जम गया था। इसी प्रकार बड़े-बड़े श्रीमानों को दावत देने, नाच-रंग कराने और समयानुकूल उपहार आदि भेजते रहने के कारण मेरा नाम शहर-भर के श्रीमानों में ख़ूब ही प्रचार पा गया था, इसीलिये सबके देखने में मेरी वृद्धावस्था रहते हुए भी अनेकानेक बड़े-बड़े सरदारों की सुकोमल एवं लावण्यमयी लड़कियाँ मेरे साथ विवाह करने के लिये नाना प्रकार के उद्योग करती थीं; इसीलिये यदा-कदा लोग मुझसे मेरे विवाह का प्रसंग भी छेड़ते, किंतु ऐसी स्थिति में मेरे श्वेत बाल ही मुझे परमोपयोगी प्रतीत होते, और मैं भी उनकी समुचित सहायता लेकर उन लोगों को प्रत्युत्तर देता कि भाई! अब तो सभी बाल पक गए हैं। थोड़े दिनों के लिये क्यों किसी का पाँव फँसाऊँ; किंतु मित्रो! असल बात तो यह थी कि मैं स्वयं ही अपना पाँव एक बेड़ी से निकाल, दूसरी में न फँसाना चाहता था, और मेरे ऊपर तो दिलारा के बदले का भूत रात-दिन सवार रहता था।

इस संसार में कितने ही वृद्ध पुरुष अपने को युवा बनाने का प्रयत्न करते होंगे; अपने श्वेत केशों पर ख़िज़ाब चढ़ाते होंगे, पोपले मुँह में कृत्रिम दाँत चढ़ाते होंगे, सामने बिल्लौरी शीशा रखकर हज्जामों से खूँटियाँ साफ़ कराते होंगे, नाना प्रकार की शक्तिवर्धक ओषधियाँ खाते होंगे, जवानों की नाईं तड़क-भड़कदार पोशाकें पहनते होंगे, बोलने-चालने में भी जवानों की नाईं हाव-भाव दिखाते होंगे, बैठते-उठते में जवानों की जैसी फ़ुर्ती दिखाते होंगे, चलते-डोलते में जवानों की नाईं कूद-फाँद करके अपनी पुनः-प्राप्त युवावस्था का परिचय दिए बिना न

रहते होंगे। मित्रो ! ख़ुदा ही जाने कि और क्या-क्या हास्यास्पद उद्योग यह बूढ़े बैल अपने जीर्ण सींग कटाकर युवा बछड़ों में सम्मिलित होने के लिये करते होंगे। मित्रो ! आप सब जानते ही हैं। यह रात-दिन की आँखों देखी बातें हैं कि आजकल के बुड्ढों को युवा बनने के लिये ऐसी प्रगाढ़ इच्छा होती है कि वे फिर से युवावस्था प्राप्त करने के लिये जो कहिए, करने को तैयार हैं। अस्तु, मित्रो ! यह कहने में कोई भी अतिशयोक्ति न होगी कि बुड्ढों को जवान बनने का स्वाभाविक धर्म हो गया है। इसमें अब कोई आश्चर्य भी नहीं रहा; परंतु मित्रो ! महान् आश्चर्य तो यह कि मेरे-जैसा तरुण पुरुष अपनी भरी जवानी में, युवावस्था के सभी उत्कृष्ट गुणों से अलंकृत होते हुए भी, उस समय मुर्शिदाबाद में अपनी तरुणावस्था को छिपाकर वृद्ध बनने का प्रयत्न कर रहा था। अपने श्वेत बनाए हुए केशों पर हाथ फेरता हुआ मैं वृद्ध हूँ, कहकर अपने को कृत-कृत्य मानता था। पहले मैं दाढ़ी न रक्खे था, किंतु मुर्शिदाबाद में पहुँचकर मैंने दाढ़ी भी रखाई; और इसके बाल भी दवाइयों के प्रयोग से श्वेत कर लिए। एक समय मेरे मन में यह विचार भी आया कि सिर और दाढ़ी के बाल तो सब श्वेत ही हैं, अब दाँतों में दर्द का बहाना करके मुँह के दो-चार दाँत और उखड़वा डालूँ; परंतु पीछे से यह सोचकर कि इस क्रिया में बहुत अधिक पीड़ा होगी, और इसकी आवश्यकता भी इतनी अधिक नहीं है, मैंने यह विचार स्थगित कर दिया; किंतु मित्रो ! यदि मुझे आवश्यकता पड़ती, तो मैं यह कष्ट भी ख़ुशी से झेल लेता। सच मानिए, मित्रो ! बदले की आग भारी होती है। बदला लेने ही के लिये मनुष्य अपने प्राणों को हथेली पर रखकर दूसरे के प्राण लेने को तैयार हो जाता है, फिर पीछे उसकी चाहे जो गति हो, इसकी वह तनिक भी चिंता नहीं करता ! मुर्शिदाबाद पहुँचने पर मैंने अपने मुख-मंडल के भावों में भी परिवर्तन करने का अभ्यास आरंभ किया। मैं जानता था कि यदि दस-पंद्रह दिन तक लगातार प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा सिंदूर खाया जाय, तो आवाज़ बदलकर भारी

पड़ जाती है। अस्तु, मैंने प्रयोग आरंभ कर दिया था; किंतु मुख-मंडल के भावों में परिवर्तन करना बड़ा कठिन प्रतीत हुआ। भला मित्रो! अविरल उद्योग के सामने कठिनाई कहाँ तक टिक सकती है? मैं प्रतिदिन थोड़े समय तक अपने सामने शीशा रखकर बैठ जाया करता, और फिर अपनी स्वाभाविक, मानसिक प्रवृत्तियों को दबाकर अपने मुख-मंडल को गंभीर बनाने का प्रयत्न करता हुआ मस्तक पर क्रोध की छटा झलकाने के लिये माथा सिकोड़कर भौंहें चढ़ाने का अभ्यास किया करता था। लगभग एक महीने के घोर परिश्रम के बाद मुझे सफलता प्राप्त हुई। एक दिन छिपकर मैंने अपने नौकरों को भी आपस में बोलते-चालते सुना कि सेठ साहब कैसे बाघ के सदृश डरावने प्रतीत होने लगे हैं, और उनकी आवाज़ भी बड़ी भयावनी हो गई है; ख़ुदा जाने, उनकी प्रकृति ऐसे कटहे कुत्ते जैसी क्यों हो गई है? मुझे अपने नौकरों की यह बातें सुनकर लेश-मात्र क्रोध नहीं आया, वरन् अपने को अपने प्रयत्नों पर सफलीभूत पाकर मुझे अत्यंत ही संतोष हुआ। वस्तुतः उस समय मेरा और बाघ का एक ही जैसा व्यवसाय हो गया था; जिस प्रकार बाघ अपने भक्ष्य पर टूट पड़ने के लिये अत्यंत सावधानी से लुक-छिपकर अनेकानेक प्रयत्न करता है, उसी प्रकार मैं भी अपने लक्ष्य पर टूट पड़ने के लिये नाना प्रकार के प्रयत्न कर रहा था। उस समय मैं अवश्य ही एक हिंसक पशु की नाईं क्रूर बना था, किंतु मेरी वह क्रूरता किसी बकरी-भेड़ों के रक्त पीने के लिये न थी, वरन् मेरी वह क्रूरता स्त्री-वेष में मुजस्सिम शैतान उस व्याघ्रमुखी दिलारा के हृदय-रक्त की प्यासी थी कि जिस क्रूरहृदया दिलारा ने मेरे कलेजे से मुँह लगाकर हिंस्र पशु से भी अधिक क्रूरता के साथ मेरा सर्वस्व चूस लिया था।

मैंने वृद्धावस्था का वेष तो ख़ूब ही कर रक्खा था, किंतु साथ ही मैंने नाच-रंग, हँसी-ख़ुशी, खेल-तमाशों और खाने-पीने आदि में ऐसा भाग ले रक्खा था कि वहाँ के जवानों तक को मात कर रक्खा था। यदा-कदा लोग आपस में कह ही बैठते थे कि बुड्ढा बड़ा रँगीला दिखता है,

और जब ऐसी बातें कभी मेरे कान पड़ जातीं, तो मैं मन में बड़ा प्रसन्न होता था। मेरे-जैसे विचित्र बहुरूपिए ने प्रत्यक्ष 'सत्य' को भी धोखे में डाल रक्खा था, फिर मुर्शिदाबाद के छोटे-बड़े सभी मेरे फाँसे में फँसे रहे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ! मित्रो ! सच पूछो, तो यह सारी दुनिया ऐसे-ही-ऐसे बहुरूपियों से भरी पड़ी है। इस संसार में विश्वास के ढक्कन के नीचे लोग एक-दूसरे को फँसाने का निरंतर प्रयत्न करते रहते हैं। कितने ही रात्रि समय ठगते हैं, तो कितने ही दिन-दहाड़े आँखों में धूल झोंकते हैं। कोई लोगों को परोक्ष हो फँसाते हैं, तो कोई-कोई टट्टी की ओट शिकार खेलते हैं। जहाँ देखो, इस दुनिया में ठगी का ही व्यापार ज़ोर पकड़े दिखाई देगा। इस दुनिया में मित्रो ! ऐसा कौन है, जो कभी नहीं ठगाया, और जिसने कभी नहीं ठगा ? इस संसार में जिसे देखो, एक दूसरे को हड़प जाने की ही धुन में है; यही संसार, मित्रो ! जिसे हम-आप 'सभ्य संसार' कहते हैं।

मैं अपने वेष-परिवर्तन में अपने को सफलीभूत पा भावी योजनाएँ करने लगा। शहादतअलीख़ाँ के शरीर पर नवाब पीरबख़्श के वेष ने ऐसा अधिकार जमा लिया था कि शीशे के सामने खड़े होकर मैं स्वयं ही अपने को न पहचान सकता था। मैं चाहता था कि मुर्शिदाबाद से ही दिलारा के कान में किसी प्रकार यह ख़बर पड़ जाय कि मुर्शिदाबाद में नवाब पीरबख़्श नामी एक धनी-मानी गृहस्थ शहादतअलीख़ाँ के समीपी संबंधी हैं। मैंने इसके लिये प्रयत्न किया, और उसमें मुझे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। संसार का यह नियम है कि लोग धनी-मानी सज्जनों को अपने नातेदार-रिश्तेदार, सगे-संबंधी आदि बतलाकर स्वयं मान-सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं, अथवा दूसरों पर अपनी छाप बिठाना चाहते हैं; सो ऐसी किसी इच्छा से मैंने यह न चाहा था कि शहादत-अलीख़ाँ की इस नए नवाब पीरबख़्श के साथ नातेदारी प्रसिद्ध हो जाने के कारण लोग मरहूम शहादतअलीख़ाँ को या वर्तमान नवाब पीरबख़्श को अधिक आबरूदार और मान-मर्तबेदार समझेंगे; वरन् मेरी असल

इच्छा यह थी कि समीपी संबंध के संदेशे से उस राक्षसी दिलारा की मनोभूमि मेरे भावी कार्य-क्रम के बीजारोपण के लिये तैयार हो जायगी, और फिर जब मैं दिल्ली जाकर दिलारा या उस नर-पिशाच अमीरुद्दीन से इस परिवर्तित वेष में मिलूँगा, तो केवल अपना नाम नवाब पीरबख़्श ही बतला देना पर्याप्त होगा। अस्तु, इसी इच्छा से मैंने अनेक प्रकार से अनेक आदमी दिल्ली भेजकर दिल्ली-शहर-भर में यह बात प्रसिद्ध करा दी, और विशेष करके दिलारा और अमीरुद्दीन पर यह बात प्रकट करा दी कि शहादतअलीख़ाँ का एक बड़ा निकट-संबंधी मुर्शिदाबाद में रहता है; उसका नाम नवाब पीरबख़्श है, और वह बड़ा भारी श्रीमान् है; आयु से तो वृद्ध है, किंतु है बड़ा ही मनचला और शौक़ीन। अस्तु, यह सब प्रबंध करके अपनी जन्मभूमि दिल्ली छोड़ने के चार मास बाद मैंने मुर्शिदाबाद से दिल्ली के लिये कूच कर दिया।

छठा प्रकरण

आमिष

मैं दिल्ली-शहर में तो आ पहुँचा, परंतु जन्मभूमि के दर्शन करते ही जो एक आकर्षण शक्ति मन में उत्पन्न होना चाहिए थी, सो कुछ भी न हुई, मानो मैं अपने नूतन जन्म के साथ जन्मभूमि के पूर्व जन्म के प्रेम से भी रहित हो गया था। अपनी बाल्यावस्था में मैं एक समय दिल्ली से बाहर गया था, और जब मुझे कुछ अधिक दिन बीते, तो मेरे मन में बार-बार यह तरंग उठती थी कि कब दिल्ली पहुँचूँ, और जब मैं दिल्ली में वापस आया, तब दिल्ली के आसपास का वन-प्रदेश, छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, नदी-नाले, मकान, वृक्ष, यहाँ तक कि पृथ्वी पर की धूल भी मुझे प्यारी लगती थी, और हृदय में एक विचित्र आनंद झलक रहा था। मेरी धारणा थी कि इस बार पूरे चार मास के बाद अपनी मातृभूमि को वापस जा रहा हूँ, इसलिये मुझे दिल्ली देखकर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक आनंद प्राप्त होगा; परंतु ज्यों-ज्यों मैं दिल्ली के समीप पहुँचता गया, त्यों-त्यों मेरी उदासीनता बढ़ती गई, मेरा मन बड़ा उद्विग्न हो उठा, यहाँ तक कि मन में पश्चात्ताप होने लगा कि मैं व्यर्थ ही दिल्ली आया। यदि मेरी अंतःकरणस्थ वैर की वह कल्पना नष्ट हो गई होती, तो मुझे विश्वास है कि मैं दिल्ली में प्रवेश न करके लौटे पाँव मुर्शिदाबाद वापस चला जाता, परंतु वह बदले की आग बुझनेवाली थोड़े ही थी, प्रत्युत दिन-पर-दिन अधिकाधिक धधकती जाती थी। गत सात-आठ दिन से तो मुझे उस वैर का निदिध्यास ही लग गया था। एक देहाती कहावत है कि "सर्बस जरियो, पै नाँव न मरियो", और यह अक्षरशः यथार्थ है। सभी जानते हैं कि प्रसंग पड़ने पर नाम

रखने के लिये लोग अपनी अत्यंत कष्ट से कमाई हुई संपत्ति को पानी की नाईं बहा देते हैं, और बहुतेरे ऐसे भी पानीदार आप लोगों को मिलेंगे, जो अपना नाम रखने के लिये अपने प्राण तक देने को ख़ुशी से तैयार हो जायँगे। एक समय था कि जब मुझे 'शहादतअलीख़ाँ' यह नाम बड़ा प्रिय लगता था, और मैंने अनेकानेक उपायों और सत्कृत्यों से इस नाम के लिये जन-समुदाय में बड़ा मान-सम्मान कमाया था; परंतु अब मेरे दुर्दैव को देखिए कि यही नाम मेरे कानों को त्रास पहुँचाता था, और अन्य लोगों में भी दिलारा के दुराचरण के कारण इस नाम के प्रति कुछ तिरस्कार-भावना-सी आ गई थी। मेरी सारी संपत्ति नष्ट हो जाती और मैं गली-गली का भिखारी बन जाता, तो भी मैं लेश-मात्र बुरा न मानकर राज़ी रहता, और अपने हृदय-सर्वस्व नाम को निष्कलंक बचाकर कहीं भी जा बैठता, और वक़्त-बेवक़्त जैसी भी रूखी-सूखी मिलती, खा-पीकर संतोष मानता, और आनंद से अल्लाह-अल्लाह करके अपना शेष जीवन बिता डालता। मित्रो! मान-सम्मानवालों की बात थोड़ी देर के लिये एक ओर रखकर यदि साधारण स्थितिवाले अथवा ग़रीबों-कंगालों के ही विषय में ध्यान दिया जाय, तो प्रत्यक्ष प्रकट होगा कि उनको भी नाम ही प्यारा है। अस्तु, मित्रो! जिन्हें अपनी आबरू प्यारी है, वे अपने नाम को बट्टा नहीं लगने देते, और अपने नाम को ही भारी संपत्ति समझकर उसे बचाने के लिये निरंतर सावधान रहते हैं। यदि दिलारा ने मेरे नाम को बट्टा न लगाया होता, तो मैं अपना नाम पीर-बख़्श क्यों रखता? यदि दिलारा ने अपने ही दुराचरण से अपना नाम न धराया होता, तो मैं अपने सभी ऐश्वर्य और संपत्ति को खोकर भी उसके साथ भिक्षावृत्ति तक करके संतोष मानता; परंतु दिलारा के दुराचरण के कारण अब मुझे अपना नाम बदलकर ही रहना योग्य था।

अब मैं दिल्ली-शहर में शहादतअलीख़ाँ था, किंतु नवाब पीरबख़्श के नाम से प्रसिद्ध हुआ। मैं अब पहले-जैसा युवा न था, प्रत्युत पके बालोंवाला एक वृद्ध था। मैं अब केवल नाम-मात्र के लिये मनुष्य था,

किंतु वस्तुतः वैर-बुद्धि से प्रेरित हो एक पिशाच बना था। सारी दिल्ली में मुझे पहचाननेवाला एक मनुष्य भी न था। कारण, दिल्ली तो क्या, इस संसार में मेरा अस्तित्व ही न रहा था, फिर मुझे कोई पहचाने, तो कैसे? मेरा यह शरीर शहादतअलीख़ाँ का प्रेम था, जो नवाब पीरबख़्श के पैशाचिक मंत्र-बल से नाच रहा था! अब मित्रो! आपको यही जानना है कि नवाब पीरबख़्श ने अपने पैशाचिक मंत्र-बल से संसार को क्या कर दिखाया! मेरे-जैसे पिशाच को उस समय राजधानी दिल्ली-जैसा सुंदर शहर स्मशानवत् प्रतीत होता था, और इसीलिये मैंने वहाँ के कितने ही मनुष्य-देहधारी पिशाचों को खोज निकालने के लिये नवाब पीरबख़्श के नाम से अवतार धारण किया था। मुझे दिल्ली-शहर में बड़े ठाट-बाट से नवाबी शान में रहना था, इसलिये मुर्शिदाबाद से चलने के पहले ही मैंने अपने नौकर-चाकर दिल्ली को रवाना कर दिए थे, और उन्हीं के द्वारा दिल्ली में एक राजमहल-जैसे सुंदर मकान, बढ़िया घोड़े-गाड़ी और अन्य सुख-सामग्रियों का उत्तम प्रबंध करा लिया था; इसलिये मेरे दिल्ली में पहुँचने के पहले ही से शहर-भर में मेरा नाम प्रसिद्ध हो गया था। मैं दिल्ली में आकर बड़े ठाट-बाट से रहने लगा। और पानी की नाईं रुपया बहाने लगा। दिल्ली के सभी लोग, क्या अमीर, क्या रईस, मेरी शान और मेरा ख़र्चीलापन देखकर दंग रह गए।

उस भयंकर काले बुख़ार को शांत हुए साढ़े तीन मास व्यतीत हो चुके थे, इसलिये दिल्ली-शहर की उस समय की वह सारी उदासीनता नष्ट हो चुकी थी, और वही सदा कैसा रमणीयपन चारो ओर विराज रहा था। व्यापारियों के उद्योग-धंधे पहले ही की नाईं चालू हो गए थे, और सभी बाज़ार सदा की नाईं घमसान भरने लग गए थे। नाच-तमाशे भी पहले ही की नाईं होने लगे थे, और लोग बड़ी हँसी-ख़ुशी से जलूसगाहों में जमा होने लगे थे। संक्षेप में यह कि सारे दिल्ली-शहर ने अपना पूर्व वैभव धारण कर लिया था, और हर प्रकार से रम्य बन गया था; किंतु मेरे नेत्र तो विषमय थे, इस कारण मुझे शहर में कुछ

भी रमणीयपन प्रतीत न होता था, वरन् दिल्ली-शहर मुझे अत्यधिक भयंकर प्रतीत होता था, मानो मुझे काटने को दौड़ा पड़ता हो। सच है, मित्रो! पीलिया रोगवाले को संसार के सभी पदार्थ पीले दीखते हैं; ठीक यही स्थिति मेरी थी। मुझे ऐसा प्रतीत होता था, मानो दिल्ली-शहर का प्रत्येक दरवाज़ा मेरा तिरस्कार कर रहा है। मित्रो! मैंने स्वयं कोई अपराध न किया था, परंतु जिस प्रकार कुटुंब के किसी एक ही मनुष्य के दुराचारी प्रसिद्ध हो जाने पर सारे कुटुंब को कलंक लग जाता है, उसी प्रकार मैं भी कलंकित बना था, और इसीलिये शहर के मुख्य फाटक मेरा स्वागत न करके उलटे तिरस्कार ही कर रहे थे, और मेरा निजी प्रासाद तो मानो खिल्ली मारकर मेरा उपहास कर रहा था। भले ही कोई मेरा तिरस्कार अथवा उपहास करे, इस ओर तो मुझे कोई लक्ष्य देना ही न था। कारण, ऐसी बातों के विचार करने के लिये मेरे हृदय में कोई स्थान ही न था। सारे हृदय को तो प्रतिहिंसा के दारुण विचारों ने ठसाठस भर रक्खा था।

दिल्ली-शहर में आ पहुँचने के तीन-चार दिन बाद मैंने अमीरुद्दीन की पूरी दिनचर्या जान लेने का प्रयत्न किया। मैं अपने प्रयत्न में सफलीभूत भी हुआ। आप लोगों ने सुना ही होगा कि दिल्ली-शहर में अनेक मजलिसें हैं। इन मजलिसों में रात्रि के समय चैन उड़ाने के लिये अनेक श्रीमान् लोग जाया करते हैं। कितनी ही मजलिसें ख़ास-ख़ास प्रकार के ओहदेदारों या रईसों आदि के लिये पृथक् होती हैं, और उनमें नामांकित मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य कोई मनुष्य नहीं जा सकता। प्रायः सभी मजलिसें रात्रि के ही समय आबाद रहती हैं, और रात-भर ख़ूब ही चहल-पहल रहा करती है, किंतु दिन में वहाँ उल्लू बोला करते हैं। अमीरों की मजलिसों में प्रायः प्रत्येक रात्रि को कोई चतुर नायिका (रंडी) बुलाई जाती है, और थोड़े समय तक नाच-गाने का रंग जमा करता है। बड़े अच्छे-अच्छे शरबत, उम्दा-से-उम्दा शराबें और पान-सुपारी आदि सभी भोग्य पदार्थ इन मजलिसों में सदा तैयार रहते हैं, और रात-

भर खूब ही दौर-पर-दौर चला करते हैं। दिल्ली-शहर में 'दिलखुश' नाम की मजलिस सभी मजलिसों की नाक है। शहर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध रईस व अमीर-उमरा अधिकतर इसी मजलिस में जाया करते हैं। मेरे बचपन के दोस्त मित्र-द्रोही अमीरुद्दीन ने भी शहादतअलीख़ाँ की मृत्यु के उपरांत इसी मजलिस में जाना आरंभ किया था। अस्तु, मैंने भी पीरबख़्श के नाम से इसी मजलिस में जाना आरंभ कर दिया। दिल्ली में आते ही मेरा नाम सर्वतोमुखी बन गया था, इस कारण मेरे उस मजलिस में प्रवेश करते ही सबों ने मेरा भारी सत्कार किया; अमीरुद्दीन भी उस समय वहाँ उपस्थित था। अमीरुद्दीन एक सरदार के जैसे ठाट में था, और इसलिये उसे इस शान में देखते ही मैं तुरंत समझ गया कि मेरी संपत्ति दिलारा के हाथ से उसके खीसे में जा पड़ी है। अमीरुद्दीन के हाथ की उँगली में हीरे की एक अँगूठी झलक रही थी। मित्रो! यह वही अँगूठी थी, जिसे मैं स्वयं अपनी उँगली में पहने रहा करता था। मुझे क़ब्रस्तान में दफ़न करते समय उस फ़क़ीर ने यह अँगूठी मेरी उँगली से उतार ली थी, और मेरी अन्य वस्तुओं के सहित दिलारा को सुपुर्द कर दी थी। सो यही अँगूठी उस दुराचारिणी दिलारा ने अपने प्रियतम इस जारकर्मी अमीरुद्दीन को अपने प्रेम-चिह्न की नाईं भेंट की होगी, जिसे मैं अब प्रत्यक्ष ही अपनी आँखों के सामने अमीरुद्दीन को धारण किए हुए चैन से बैठा देख रहा था! हाय! यह सब मेरे भाग्य का ही खेल था! और क्या!! जिस कोच पर अमीरुद्दीन बैठा था, उसी के पासवाले एक सुंदर कोच पर मैं जा बैठा। अमीरुद्दीन रह-रहकर मेरा मुँह देखता था; परंतु मैंने उसकी ओर प्रत्यक्ष में कोई भी लक्ष्य न देकर पास ही रक्खा हुआ हुक़्क़ा गुड़गुड़ाना आरंभ कर दिया। जिन लोगों के वहाँ स्नेही उपस्थित थे, वे आपस में गप-शप मार रहे थे, परंतु अमीरुद्दीन अपने कोच पर अकेला ही बैठा था, इसलिये मैंने अनुमान कर लिया कि वहाँ उसका स्नेही कोई भी न था। वह बीच-बीच में अपनी जेब से सोने की एक डिब्बी निकालकर उसमें से थोड़ा सुगंधित हुलास सूँघ-सूँघ

कर अपना जी आप बहला लेने का प्रयत्न करता था। थोड़े समय बाद मजलिस से कुछ लोग अपने-अपने घर चले गए, परंतु जो कुछ अधिक मनचले थे, वे बैठे रहे। तदुपरांत एक सुंदर नर्तकी का थोड़ी देर गायन और नृत्य हुआ। फिर इस शग़ल के भी बंद किए जाने की बारी आई, और धीरे-धीरे मजलिस भी शांत हुई, केवल कुछ इने-गिने लोग वहाँ से अब तक न उठे थे। मैंने थोड़ी ही देर में मजलिस के नौकर-चाकरों में से दो-एक को पहचानकर उनके नाम याद कर लिए थे। उन नौकरों में से एक का नाम क़ासिम था। मैंने क़ासिम को अपने पास बुलाया, और एक प्याला शरबत लाने का हुक्म दिया। आज्ञा पाते ही क़ासिम चाँदी के एक तबक़ (थार) में एक प्याला शरबत रख लाया, और बड़े अदब से मेरे सामने पेश किया। मैंने प्याला उठाकर मुँह से लगाया, और शरबत का एक घूँट लेकर क़ासिम से पूछा—"जान पड़ता है, तू बहुत अर्से से दिल्ली-शहर में रहता है ?"

क़ासिम अत्यंत नम्रता-पूर्वक बोला—"जी हाँ हुज़ूर, बहुत अर्से से क्या, बल्कि मेरी पैदायश भी इसी दिल्ली-शहर की है।"

"वाह-वाह ! तब तो तुझे दिल्ली-शहर का रत्ती-रत्ती हाल मालूम होगा ?"

"जी हाँ हुज़ूर, दिल्ली-शहर से मुझे पूरी वक़फ़ियत है।"

"मैं बहुत वर्षों पहले दिल्ली आया था, तब से और अब से ज़मीन-आसमान का फ़र्क़ है। शहर का रंग ही अब कुछ और हो गया है। हाँ, वज़ीरअलीख़ाँ साहब का मकान तो तू जानता ही होगा ? मैं वज़ीर-अलीख़ाँ का एक बहुत ही नज़दीकी रिश्तेदार हूँ, इसीलिये उनके और मेरे दर्म्यान बड़ी मुहब्बत है। भला, उनका मकान किस रास्ते पर है ?"

"हुज़ूर बहुत पुरानी बात फ़र्मा रहे हैं। जनाब वज़ीरअलीख़ाँ साहब को तो गुज़रे एक ज़माना हो गया है।"

मैं आश्चर्य करता हुआ दुःखित स्वर में बोला—"अरे रे ! या ख़ुदा ! यह तो मैं जानता ही न था, और जानूँ भी तो कैसे ? मैं था मुर्शिदाबाद

में, और फिर तिजारत के लिये मुल्कों-मुल्कों फिरना ही पड़ता है; ऐसी हालत में अगर मुझे ख़बर न मिली, तो इसमें ताज्जुब ही क्या है ? ख़ैर, जो मर्ज़ी ख़ुदा की; मगर उनके साहबज़ादे से तो अब मिलना एक ज़रूरी फ़र्ज़ हो गया। क्यों जी, उसका लड़का शहादतअलीख़ाँ अब पच्चीस-छब्बीस बरस का होगा ? बड़ा होशियार लड़का है, जब वह छोटा था, तब बड़ा प्यारा लगता था।" उस नौकर के साथ बातचीत करते-करते मैं बीच-बीच अमीरुद्दीन को भी देख लिया करता था। मैंने तुरंत ही ताड़ लिया कि अमीरुद्दीन हमारी बातचीत को बड़े ध्यान-पूर्वक कान लगाकर सुन रहा है।

नौकर हताश हो बोला—"हुज़ूर ! शहादतअलीख़ाँ साहब भी इंतकाल फ़र्मा गए हैं। वह अगर जीते होते, तो उनसे आपकी मुलाक़ात इसी मजलिस में हो जाती। हुज़ूर ! ख़ुदा उन्हें बहिश्त बख़्शे ! बड़े ही फ़ैयाज़ नौजवान थे, और हम-जैसे ग़रीबों के लिये तो शहादतअलीख़ाँ साहब पूरे हातिम थे।"

मैं फिर सखेद विस्मय दिखाता हुआ बोला—"एँ ! क्या कहते हो !! शहादतअलीख़ाँ भी चल बसा ! ऐसी छोटी उमर में ही !!"

"हुज़ूर ! यह कंबख़्त मौत शिनोशबाब की कुछ भी तमीज़ नहीं रखती, और अपना हथियार सबों पर एक-सा ही चलाए जाती है; जईफ़ी-कमसिनी, अमीरी-ग़रीबी और भलाई-बुराई का तो मौत के सामने सवाल ही नहीं रहता। अभी थोड़े ही दिन हुए हैं कि जब इस शहर में काले बुख़ार की बीमारी चली थी, बस उसी कंबख़्त ने उन्हें भी अपने सपाटे में ले डाला ! हुज़ूर ! वह तो शहर के हीरा थे, हीरा ! हम लोग तो लुट गए, हुज़ूर ! हम ग़रीबों की तो वे जान थे।"

क़ासिम के इन शब्दों को सुनकर अमीरुद्दीन की आँखों में क्रोध और द्वेष की चिनगारियाँ चमकती हुई दिखाई दीं। मैं बोला—"ओहो ! बहुत बुरा हुआ ! शहादतअलीख़ाँ पर तो मेरी बड़ी मुहब्बत थी। ख़ैर, ख़ुदा की मर्ज़ी; मेरी और उसकी मुलाक़ात ही न होने को थी। मगर

मुझे कुछ थोड़ा काम है; उसके बाल-बच्चे तो होंगे न ? उसकी बीवी तो होवेगी ?"

"हाँ, हुज़ूर ! उनकी बेगम साहबा मौजूद हैं, और मरीना नाम की एक उनकी छोटी लड़की भी है; मगर सुना है, बाप के न रहने से वह लड़की बड़ी उदास रहती है, और दिन-पर-दिन सूखती जा रही है। उनकी बेगम साहबा की तबियत के बाबत तो मुझे कुछ नहीं मालूम, और मालूम भी कैसे हो, हुज़ूर ! बड़े घर की बात है, हम छोटे-छोटे ग़रीब आदमी क्या जान सकते हैं ? अल्लाह ! अल्लाह !!"

निर्बोध बेचारी निरपराधिनी बालिका मरीना ! तेरा तो कोई भी अपराध न था। तेरे लिये तो प्रतिक्षण मेरे प्राण व्याकुल रहते हैं। दिल्ली आने पर तेरे कुशल-समाचार सुनने के लिये मैं कैसा व्याकुल हो रहा हूँ, यह ख़ुदा ही जानता है। उसकी तबियत अच्छी नहीं रहती, और वह सूखती जा जा रही है, यह सुनकर तो मेरे हृदय पर भारी चोट पहुँची। अब भी बहुत कुछ प्रश्न पूछ-ताछकर मैं क़ासिम से दिलारा का रहस्य जान लेता; परंतु मरीना दिन-दिन सूखती जा रही है, इन शब्दों को सुनकर मेरा मन ठिकाने न रहा, और मैं ऐसा उद्विग्न हो गया कि फिर मुझे कुछ भी न सूझ पड़ा। मन ने चाहा कि मैं अपने मकान को दौड़ जाऊँ, और अपनी मरीना को हृदय से लगा लूँ; परंतु मैं अपने मकान में स्वयं ही प्रवेश करने का अब कोई भी अधिकार न रखता था। यदि दिलारा आज्ञा दे, तभी मैं उस मकान में घुस सकूँ। कारण, उस मकान की मालकिन दिलारा थी, और मैं तो अब चोर था। मरीना को आँखों-भर देखने का मुझे कोई अधिकार न था, क्योंकि मैं तटस्थ था। मैं मरीना का पिता था, किंतु उससे मिलने में अब असमर्थ था। मरीना ! प्यारी मरीना ! अब तो मेरा कोई भी उपाय नहीं। अब तो बिटिया ! तुझे केवल उस ख़ुदावंद करीम का ही सहारा रह गया है; तेरे पिता का छत्र तो तेरे सिर पर अब रहा ही नहीं; परंतु तेरी मा भी तेरे ऊपर कृपालु नहीं है, यह मेरा और तेरा दुर्भाग्य है ! ऐसे-ही-ऐसे विचारों से उस

समय मेरा मन बड़ा उद्विग्न हो गया था। स्वभावतः ही हृदय की इस उद्विग्नता का भाव मेरे मुख-मंडल पर भी प्रकट हुए बिना न रहा; किंतु मैंने शीघ्र ही बड़े ज़ोर से हुक़्क़े की एक कश खींची, और अपने तथा अमीरुद्दीन के बीच धुएँ के ग़ुब्बारों का एक परदा-सा बना दिया, जिससे मेरे चेहरे के भाव अमीरुद्दीन स्पष्ट रूप से न देख सका। इतने ही में दुष्ट अमीरुद्दीन बोला—"नवाब साहब! मैं बीच में बोलता हूँ, इसके लिये आप कृपा करके क्षमा कीजिएगा। इस क़ासिम की बनिस्बत मैं बहुत ज़्यादा हाल शहादतअलीख़ाँ के बाबत आपको बतला सकता हूँ। कारण, मेरा और शहादतअलीख़ाँ का बाल्यावस्था से ही पूर्ण परिचय था, इसलिये शहादतअलीख़ाँ के विषय में रत्ती-भर बात भी मुझसे छिपी नहीं है।"

अमीरुद्दीन की ओर फिरकर मैंने हँसते हुए उसे सलाम किया, और फिर बोला—"वाह! आप भले आदमी प्रतीत होते हैं। आपसे इस प्रकार अकस्मात् ही परिचय हुआ, यह भी ख़ुदा की ही मेहरबानी है। शहादतअलीख़ाँ के वालिद वज़ीरअलीख़ाँ से मेरी बड़ी मुलाक़ात थी। शहादतअलीख़ाँ के चचा जान उस्मानअलीख़ाँ मुर्शिदाबाद में रहते थे। यह तो आप जानते ही होंगे, उनकी और मेरी बड़ी मित्रता थी। उनके साथ मेरी बड़ी क़रीबी रिश्तेदारी थी। उस्मानअलीख़ाँ का लड़का दक्खिन की लड़ाई में काम आया था; उसके कुछ अर्से बाद मैं वज़ीरअलीख़ाँ के पास दिल्ली आया था, और बहुत दिनों तक उन्हीं के साथ यहाँ रहा था। उस समय मैंने शहादतअलीख़ाँ को देखा था। लड़का बड़ा सुंदर और होशियार था। आगे आकर उस्मानअलीख़ाँ भी गुज़र गए, फिर तब से मैं शहादतअलीख़ाँ से मिलने के लिये मौक़ा देखता रहा, और आजकल-आजकल करते-करते मैं अब कहीं दिल्ली आ सका, तो ख़ुदा की मर्ज़ी कि आज यहाँ उसका मृत्यु-समाचार सुनने में आया!"

अमीरुद्दीन बनावटी सहानुभूति दिखलाता हुआ बोला—"हिंदुओं ने इस दुनिया का नाम 'मृत्युलोक' ठीक ही रक्खा है; इस दुनिया में जो पैदा होता है, वह मरता भी ज़रूर है।"

मन-ही-मन दंतघर्षण करके मैं बोला—"आपका कहना अक्षरशः सत्य है। इस मृत्युलोक में किसी का भी भरोसा नहीं; आज शहादत चल बसा, तो कल आपकी और मेरी भी बारी होगी। आपका समय व्यर्थ न जाय, तो मैं आपको अपना परिचय भी दे दूँ। मैं मुर्शिदाबाद का रहनेवाला हूँ, और पीरबख़्श मेरा नाम है।" मैं आगे कुछ और बोलना चाहता था कि बीच में ही विलक्षण आनंद प्रकाशित करता अमीरुद्दीन उठ खड़ा हुआ, और मेरा हाथ अपने हाथ में ले हँसता हुआ बोला—"अहा हा! मैं अपने को बड़ा ही भाग्यशाली समझता हूँ कि जो मुर्शिदाबाद के कुबेर जनाब नवाब पीरबख़्श से मिल रहा हूँ, जनाब! मैं ग़रीब हूँ; किंतु आप मुझे अपना विश्वास-पात्र मित्र समझें। मेरा नाम अमीरुद्दीन है, और मैं चित्र-शिल्पी हूँ। आपकी जो आज्ञा होगी, सो मैं शिरोधार्य करूँगा।"

अमीरुद्दीन से मैंने हाथ तो मिलाया, किंतु उस मित्र-द्रोही का हाथ पकड़ते समय अंतःकरण की वैर-बुद्धि एकदम उछल आई। बड़े प्रयास से मैंने अंतःकरण का यह विकार दबाया, और अपने चेहरे पर कृत्रिम हास्य उत्पन्न करके मैं बोला—"आरंभ में ही मेरी और आपकी जान-पहचान हो गई, सो बहुत ही अच्छा हुआ। आप चित्रकार हैं; वाह, बड़ी अच्छी बात है। यद्यपि मुझे चित्रकला का कुछ भी ज्ञान नहीं, किंतु चित्रों के देखने का मुझे बड़ा शौक़ है।" मौक़ा अच्छा मिला था। अस्तु, मैंने इसका पूर्ण लाभ उठाने के निमित्त अमीरुद्दीन से हँसते हुए पूछा—"मैं समझता हूँ, मेरे साथ एकआध जाम शराब पीने में आपको कोई एतराज़ न होगा।"

अमीरुद्दीन गाल-ही-गाल में हँसता हुआ बोला—"मैं शराब कभी पीता नहीं हूँ; किंतु तो भी आपके साथ आज थोड़ी-सी ख़ुशी से ले लूँगा।"

मैंने क़ासिम को शराब लाने का हुक्म दिया। क़ासिम ने झुककर सलाम की, और बोला—"हुज़ूर अंदर चलें। अंदर एक कमरे में शराब का कुल इंतज़ाम बाक़ायदा है।"

क़ासिम के बतलाए हुए कमरे में हम दोनो जाकर एक उम्दा मख़मली कोच पर बैठ गए। क़ासिम ने एक बड़े तबक़ (थार) में उम्दा शराब की एक सुराही, छोटे-छोटे जाम और गज़क व कबाब की तश्तरी हम लोगों के समक्ष ला उपस्थित की, और फिर मेरी आज्ञा पाकर, हम दोनो को एकांत में छोड़ वहाँ से चला गया।

मैं जानता ही था कि अमीरुद्दीन निर्व्यसनी है, और आज केवल मेरे आग्रह करने पर ही वह दो-चार घूँट लेने के लिये तैयार हो गया है। अस्तु, मैंने दोनो जामों में थोड़ी-ही-थोड़ी शराब उँडेली। अमीरुद्दीन ने और मैंने साथ-ही-साथ यह पहला दौर उठाया, और फिर हम दोनो कबाब से ज़बान का ज़ायक़ा बाँधने लगे। गले से नीचे उतरते ही शराब ने अमीरुद्दीन पर रंग जमाना आरंभ कर दिया। बातों का प्रसंग छेड़ने के निमित्त मैं बोला—"आपको अगर हुलास वग़ैरा का कुछ शौक़ हो, तो मैं मँगाऊँ ?"

"नहीं, आप कष्ट न करें। यह लीजिए, मेरे पास बहुत उम्दा हुलास मौजूद है।" इस प्रकार कहते हुए अमीरुद्दीन ने अपनी जेब में हाथ डालकर सोने की एक डिब्बी निकाली, और मेरे सामने पेश की।

यह डिब्बी मेरी ही थी, और वही थी, जिसे मैं प्रतिदिन अपने व्यवहार में रखता था। इस डिब्बी को अमीरुद्दीन के पास देखकर मेरा अंतःकरण शल्यविद्ध हो गया। मैंने डिब्बी खोली, और उसमें से एक चुटकी भरकर हुलास निकाल लिया। मैं हुलास सूँघते-सूँघते बोला—"वाह-वाह! बड़ा बढ़िया हुलास है! और, यह डिब्बी भी बड़ी ख़ूबसूरत है। डिब्बी पर का काम तो बड़ा ही उत्कृष्ट है! वाह-वाह! और खुदाई भी कैसी कारीगरी से की गई है कि पूरा शिजरा (वंश-वृक्ष) तैयार हो गया है! यह आपका शिजरा खुदा है ?"

इस प्रश्न पर अमीरुद्दीन का चेहरा कुछ मलिन हो गया, किंतु इस भाव को छिपाते हुए वह बोला—"नहीं साहब! यह शिजरा शहादत-अलीख़ाँ का है, और उसी के व्यवहार में यह डिब्बी रहती थी; किंतु

जब वह इस काले बुख़ार से गुज़र गया, तब से यह मेरे हाथ आई है। मैं शहादतअलीख़ाँ का दिली दोस्त था, इसलिये उसकी मृत्यु के उपरांत उसकी पत्नी ने यह डिब्बी और यह अँगूठी मुझे भेंट कर दी, और तब से मैं मित्र के यह दोनो स्मारक सदैव अपने पास ही रखता हूँ।"

अमीरुद्दीन पर नशे ने अच्छा रंग न जमा पाया था, इसीलिये वह प्रयत्न करके चेहरे पर चढ़ आनेवाले भावों को दबा जाता था। अस्तु, मैंने जामों में शराब फिर डाली, और यह दूसरा दौर उठाकर अमीरुद्दीन को देता हुआ बोला—"अगर जनाब की अहदशिकनी न होती हो, तो जाम उठावें, क्योंकि एक दौर मेरे ख़याल में दुश्मन के साथ भी रवा नहीं, फिर आप तो अब मेरे दोस्त हो गए हैं।"

"अजी नवाब साहब ! आपकी ख़ातिर दिलोजान से मंज़ूर और हज़ार बार मंज़ूर। जनाब !

मैं वो ख़ातिर-शिकन नहीं
कि दिल किसी का तोड़ दूँ।

और नवाब साहब ! मैं कुछ यह अहद करके थोड़े ही बैठा हूँ कि इने-गिने दो ही घूँट आपके साथ लूँगा। और, फिर अहद ही तो क्या ? अहद को तो आपने ख़ूब कहा; अजी साहब !

अहद तो लाख किए, पर न निबाही तौबा ;
मैं वो तौबाशिकन हूँ कि इलाही तौबा।

उठाइए न फिर ; आप भी साथ-साथ जाम उठाते जाइए।" इस प्रकार कहते हुए अमीरुद्दीन ने मेरे हाथवाला जाम तसलीम कर लिया, और तबक़ पर से दूसरा जाम उठाकर मुझे दिया।

दूसरा जाम मैंने ओंठों से ही लगाकर तबक़ पर रख दिया, किंतु अमीरुद्दीन गट-गट ख़ाली कर गया। मैंने बीच ही में अमीरुद्दीन से पूछा—"वाह-वाह ! तब तो आपकी मित्र-पत्नी बड़ी गुणग्राहिका है। योग्य मनुष्य को योग्य ही भेंट उसने दी। मालूम होता है कि उसका शहादतअलीख़ाँ पर बड़ा प्रेम था ?"

दूसरे जाम के गले से उतरते ही अमीरुद्दीन की ज़बान की लगाम ढीली पड़ने लगी। वह बोला—"शहादतअलीख़ाँ मेरा स्नेही था; मगर नवाब साहब! यह तो मुझे तसलीम ही करना पड़ेगा कि उसमें कितने ही भारी दोष थे। आप तो अब वृद्ध हुए हैं, इसलिये इस विषय में आपसे बातचीत करने में कोई हानि नहीं देखता। देखिए, खरी बात तो यह है, भला आपसे छिपाने में क्या लाभ कि उन दोनो पति-पत्नी में केवल लौकिक और दिखाऊ प्रेम था; सच जानिए, नवाब साहब कि उन दोनो में वास्तविक प्रेम बिलकुल ही न था। नवाब साहब! दिलारा बड़ी ही अनुपम सुंदरी है, किंतु दुर्भाग्य से शहादत ऐसा न था। ज़रा खरी-खरी कहने के लिये मैं आपकी माफ़ी का ख़्वास्तगार हूँ। कारण, आप शहादतअली के निकट-संबंधी हैं। देखिए, सच तो यह है कि यदि उन दोनो की तुलना की जाती, तो इसको 'परी' और शहादत को 'भूत' की उपमा मिलती। अल्लाह-अल्लाह—

ज़ाग़ की चोंच में अंगूर ख़ुदा की क़ुदरत;
पहलुए हूर में लंगूर ख़ुदा की क़ुदरत।

फिर आप ही सोचिए नवाब सहाब कि ऐसे विरुद्ध युग्म (जोड़े) में प्रेम किस प्रकार स्थिर रह सकता है? मयाँ शहादतअली तो सदा अपनी दूकानदारी में ही मस्त रहते थे, फिर इस फूल के जैसी कोमलांगिनी सुंदर स्त्री की क़दर उन्हें क्या होती? अजी साहब! वह तो बड़ा ही अरसिक था, क्या जाने कि सुंदर और रसीली स्त्री का दिल हाथ में कैसे लिया जाता है? माफ़ कीजिएगा, नवाब साहब! शहादत के लिये तो वही मसल ख़ूब लागू पड़ती थी कि "भैंस के आगे बीन बाजो, और भैंस लगी पगुरान।" आहा! दिलारा कैसी सुंदरी है, और कैसी रसीली उसकी बातें हैं कि आप तो उसके एक ही शब्द से मुग्ध हो जायँ! किंतु बेचारा शहादतअली केवल रुपयों से ब्याज और ब्याज से रुपए बनाना ही जानता था। जनाब! औरत सिर्फ़ रुपए पर ही नहीं मरती। आप तो जानते ही हैं—

उल्फ़त का यह मज़ा है कि हों वो भी बेक़रार;
दोनो तरफ़ हो आग बराबर लगी हुई।

बेचारा शहादतअली तो बस रुपया-रुपया, 'रुपए' के ही ख़्वाब देखा करता था; जानता ही न था कि 'उल्फ़त' किस चिड़िया का नाम है।"

अमीरुद्दीन के यह शब्द सुनते ही मेरे हृदय में आग धधक उठी। उस समय मुझे अपना चेहरा शांत बनाए रखने में जो प्रयास पड़ा, वह मैं ही ख़ूब जानता हूँ। मुझे उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो कोई मेरे अंतःकरण को छुरी से छिन्न-विच्छिन्न किए डाल रहा है। यदि मेरे स्थान पर कोई दूसरा मनुष्य होता, तो अवश्य इतना सहन न कर सकता, और अपने वेषांतर की कोई भी परवा न करके अमीरुद्दीन की छाती में छुरी भोंक देता, और जी भरकर उसका अपवित्र एवं मित्र-द्रोही रक्त बहा डालता; परंतु मित्रो! मैं इस प्रकार का वैर लेना एक बहुत बड़ी बेवक़ूफ़ी समझता हूँ, और उसके दुष्कृत्यों का ऐसा विलक्षण प्रतिफल देना चाहता था कि जो निष्ठुरता के इतिहास में अपनी समता न रक्खे, इसीलिये मैंने बड़े भारी प्रयास से अपने हृदय का आवेग रोका, और फिर अमीरुद्दीन से बोला—"आप कहते हैं, सो ठीक ही होगा; परंतु जब वह बच्चा ही था, मैंने उसे देखा था, तब तो वह बड़ा सुंदर और होशियार प्रतीत होता था। उसका पिता बीच-बीच में मुझे पत्र भेजा करता था, उसमें भी वह लिखा करता था कि 'शहादतअली बड़ा व्यवहारशील और सुशील लड़का निकला है।' मैं यह भी जानता था कि शहादतअली व्यवहार-दक्ष तो अवश्य है, किंतु दीन-हीन परोपकार करने में हाथ नहीं सिकोड़ता। परंतु अबआप के कहने से प्रतीत होता है कि वह युवावस्था में बिगड़ गया था। यही न? कौन ठीक? युवावस्था में मनुष्य अनेकानेक दुर्गुण सीख लेते हैं; मतलब यह कि मनुष्य क्या से क्या हो जायगा, इसका कोई भी ठीक नियम नहीं है। आप तो उसके मित्र हैं, इसलिये आप तो उसके विषय में सभी बातें भले प्रकार जानते होंगे।"

मैं यह सब सहज ही बक गया; परंतु जब मैंने अमीरुद्दीन के चेहरे को ध्यान-पूर्वक देखा, तो मुझे प्रतीत हुआ कि अमीरुद्दीन गहरे नशे में न था, और इसलिये वह मेरे कथन में कुछ श्लेषार्थ का अनुमान कर बोल उठा—"हाँ, आप कह सकते हैं कि वह परोपकारी था, व्यवहार-दक्ष था, और बचपन में सुंदर भी था; परंतु इस पर भी मैं यह नहीं कह सकता कि वह एक अप्सरा-तुल्य सुंदर और रसिक स्त्री को राज़ी रख सकने के योग्य था।"

मैंने अमीरुद्दीन को जो सहायता दी थी, उसका इस प्रकार साँप को दूध पिलाने के नाईं उपयोग होता हुआ देखकर मुझे बड़ा बुरा लगा। अनेक प्रसंगों पर अनेक प्रकार से मैंने जिसे भारी सहायता प्रदान की थी; वही आज वे सभी उपकार भुलाकर कृतघ्न बन मेरी निंदा कर रहा है; यह देखकर मेरा मन बड़ा उद्विग्न हुआ। मरने और जीने में अंतर है, तो यही कि मृत्यु के उपरांत मृत मनुष्य के निंदकों की जीभ बहुत बड़ी हो जाती है; और वे फिर सत्यान्वेषण भी ख़ूब ही करते हैं, जैसा आपको इस मित्र-द्रोही अमीरुद्दीन के बखान से प्रकट हुआ होगा। एक बार मुझे ऐसा क्रोध आया कि इस कृतघ्नी नर-पिशाच की यह बढ़ी हुई जिह्वा जड़ से ही काट फेंकूँ; किंतु फिर बड़े प्रयत्न से मैंने अपने इस क्रोधावेग पर विजय प्राप्त की। मैंने उत्तर दिया—"हाँ, ठीक है; आपका कहना बिलकुल ही ठीक है कि मनुष्य में व्यवहारदक्षता चाहे हो या न हो, किंतु रसिकता अवश्य ही होनी चाहिए! आप बड़े रसिक दीखते हैं। मैं तो अब वृद्ध हुआ हूँ; किंतु फिर भी आपका कथन सुनकर मुझे भी रसिक बनने का शौक़ उभरा है, परंतु क्यों? शहादतअली अकस्मात् ही मर गया! एँ?"

अमीरुद्दीन यद्यपि गहरे नशे में न था, किंतु फिर भी उस पर रंग ख़ूब ही चढ़ गया था, इसीलिये मैं भी बन रहा था। ज़रा-ज़रा-सी बात पर हम दोनो खिलखिलाकर हँस पड़ते थे। मैंने समय उपयुक्त पाया था, इसीलिये अमीरुद्दीन की सारी तली झाड़ने के उद्देश्य से मैंने तीसरा दौर तैयार किया। अमीरुद्दीन ने हँसते हुए जाम उठा लिया, और गट-

गट गले के नीचे उतार गया; फिर कबाब की तश्तरी से चखना उठाता हुआ बोला—"लोग कहते हैं कि शहादतअली बड़ा परोपकारी था, किंतु मैं तो कहता हूँ कि वह पक्का मूर्ख था। भला, नवाब साहब! ऐसे भयंकर रोग के दिनों में शहादत जैसे श्रीमान् का घर-घर डोलना और चाहे जिसकी मैयत की कफ़न-दफ़न आदि क्रिया करते फिरना कोई अक़्ल-मंदी में शुमार कर सकता है क्या? अमीरों को ऐसे काम शोभा देते हैं क्या? मगर फिर इसका नतीजा भी मियाँ को ख़ूब मिला; ऐसा भारी ऐश्वर्य-सपन्न होकर भी अंत को मरा तो कहाँ, एक फ़क़ीर की दरगाह में! अरे वाह रे अक्लमंद की दुम!" अमीरुद्दीन की ज़बान बिलकुल ही लगाम में न रही थी। वह बातें करते-करते बीच-बीच में मुझे (शहादतअलीख़ाँ को) मूर्ख, गधा. बेवक़ूफ़ और अक़्लमंद की दुम आदि बनाता था।

अमीरुद्दीन की बातें सुनकर मुझे घड़ी-घड़ी बड़ा क्रोध चढ़ता, किंतु मैं उसे प्रयास से हृदय में ही दबा लेता था। मैंने फिर कहा—"हाँ साहब! यह कौन जान सकता है कि मृत्यु कब, कहाँ और किस प्रकार आएगी? इसका तो कोई नियम ही नहीं है। भला मृत्यु भी कहीं नियम के बंधन में बँधती है? अरे! कौन जानता है कि वह किस समय, कहाँ और कैसी स्थिति में मरेगा? मगर जनाब! उसके प्राणांत-समय उसकी स्त्री तो उसके पास थी न?"

अमीरुद्दीन ने ऊँचे स्वर में कहा—"अजी आप क्या फ़र्माते हैं साहब? उसी दीवाने ने अपनी स्त्री को अपनी बीमारी की कोई ख़बर तक न दी थी। उसे भय था कि यदि उसे अपने पास बुलाऊँगा, तो कदाचित् उसे भी यह रोग न हो जाय; किंतु नवाब साहब! सच तो यह है कि वह स्त्री के संबंध में उदासीन ही था। और जनाब! अगर वह बुलाता भी, तो उसकी स्त्री दिलारा कदाचित्—"

"जाती भी नहीं! क्यों?" मैंने बात का मूल-तत्त्व जानने के हेतु तुरंत ही उनके वाक्य की पूर्ति की।

"हाँ कदाचित् भी न जाती। ठीक किसे मालूम? किंतु नवाब साहब! आख़िर उसका दोष ही क्या? भला, जब सच्चा प्रेम ही नहीं है, तो और क्या आशा की जा सकती? स्त्रियाँ तो नवाब साहब! प्रेम की भूखी होती हैं। फिर आप ही सोचिए कि दिलारा का क्या दोष?"

"वाह-वाह! आप जैसे रसिक हैं, वैसे ही ऊँचे तत्त्वदर्शी भी हैं!! मैं समझता था कि शहादतअलीख़ाँ ऐसा अधिक अज्ञानी न होगा; किंतु अब आपके कहने से मालूम हुआ कि शहादत तो पक्का मूर्ख था। अच्छा हुआ कि वह मर गया। चलो छुट्टी हुई, बेचारी दिलारा का मार्ग खुल गया। अब वह अपना मनचाहा रसिया ढूँढ़ लेगी, और चैन से जीवन बिताएगी।"

मेरे अंतिम शब्द सुनकर अमीरुद्दीन ज़ोर से हँसते हुए बोला—"हाँ, अब कही आपने खरी। सच जानिए, नवाब साहब! केवल शहादत की अरसिकता के कारण ही उस बेचारी रँगीली-छबीली स्त्री की दुर्दशा हो रही थी; किंतु अब उसके सर से शहादत का मनहूसी साया दूर हो गया। अस्तु, अब उसके गुणों का विकास होने लगेगा।"

अमीरुद्दीन की बातें मैं शांति से सुन रहा था, किंतु बीच-बीच अंतःकरण में एकआध समय क्रोध का आवेग उछाल मार ही जाता था। मैं बड़े यत्न-पूर्वक क्रोधावेग रोकता था, और अपने मुख-मंडल पर क्रोध के भाव प्रकट न होने देता था। मैंने अमीरुद्दीन से फिर पूछा—"भला, शहादतअली की मरीना नाम की कन्या कैसी है? वह बाप पर गई है या मा पर? दिलारा का तो उस लड़की पर बड़ा प्रेम होगा? अब बेचारी के सिवा उस लड़की के और क्या रह गया है।"

नाक-भौं चढ़ाता हुआ अमीरुद्दीन तिरस्कार से बोला—"अरे, वह मुई तो अपने बाप को पड़ी है। शहादत के जैसी ही कुरूपा है, और वैसे ही बुरे स्वभाव उसमें विद्यमान हैं। अजी साहब! और की तो कौन कहे, उसकी मा भी उसे गोदी में उठाकर खिलाना पसंद नहीं करती।"

अब तक तो केवल मन ही उद्विग्न था; और जिस प्रकार हो सकता था, मन की उद्विग्नता मन मारकर मन ही में छिपाए रखता था; किंतु अब तो उद्विग्नता की हद हो गई, और मेरे हज़ार प्रयत्न करने पर भी मेरे मन के भाव मेरे मुख-मंडल पर प्रकट होने लगे। यह जानकर कि सभी कोई मेरी प्यारी मरीना का सदा तिरस्कार करते हैं, मेरा हृदय टूक-टूक हो गया। यह भी मैं तुरंत ही समझ गया कि मरीना की गर्भ-धारिणी माता का मरीना की ओर स्नेह-दृष्टि से देखना अमीरुद्दीन को अत्यंत असह्य प्रतीत होता है। शहादतअली तथा दिलारा का पति-पत्नी संबंध भी उसे नितांत असह्य है; इसी कारण यह नर-पिशाच अमीरुद्दीन उस निरपराधिनी बालिका से ऐसा महाद्वेष रखता है। तभी यह पापी कहता है कि लड़की सुंदर नहीं है, मोहक नहीं है, और स्वभाव की भी बुरी है। पूछो, क्या कारण? तो उत्तर क्या देता है कि वह मुई तो अपने बाप को पड़ी है। नन्हे-नन्हे बच्चों के तिरस्कार का यदि सचमुच यही कारण हो, तो मैं कहता हूँ कि कि ऐ बच्चो! जन्म लेते समय सावधान रहना; देखना अपने बाप के रूप-रंग और स्वभाव को न जाना, अन्यथा इस सभ्य-समाज में अमीरुद्दीन जैसे सभ्य (!) तुम्हारा घोर तिरस्कार करेंगे। मासूम बच्चो, जब अल्लामियाँ तुम्हारी माता के गर्भ में तुम्हें रंग-रूप और स्वभाव बख़्शें, तब तुम सिजदा कर मिन्नतें करना कि ऐ रहीम-उल्-करीम!' हम पर रहम कर और हमें हमारे बाप-जैसा रूप-रंग न दे, और अगर हमारी यह दुआ क़बूल न हो, तो ऐ रब्बे-उल्-आल्मीन! हमें उस रूप-रंग में यहीं रहने दे, हम अपनी ज़िंदगी इसी दोज़ख़ में ख़ुशी से बिता देंगे, मगर ऐ पाक परवरदिगार! हमें हमारे बाप का रूप-रंग देकर हमारा तिरस्कार न करा!" अरे रे! मित्रो! देखा ज़माना है! दुनिया की यदि अब यही इच्छा हो कि स्त्री के उत्पन्न होने-वाले बच्चे उसके पति के जैसे रूप-रंग के न होकर किसी रास्ता चलते लुच्चे-लफंगे के रूप-रंग के उत्पन्न हों, तो ऐ मित्रो! मैं यही प्रार्थना करूँगा कि ऐ ख़ुदावंद करीम! इस दुनिया को दरिया कर डाल। कारण,

जब हम सब जलचर प्राणी बन जायँगे, तो फिर हमारे ऐसे अविचार एक समय क्षम्य भी गिने जा सकेंगे ! मनुष्य के नाते तो अब हद हो ली !!

मित्रो ! उस दिन मेरा मन बड़ा ही उद्विग्न हो गया था, और मैंने बहुत कठिनाई से भी अपने को सँभाले रहने में अयोग्य समझा ; इसलिये उस दिन अमीरुद्दीन से बिदा हो मैं घर आया; किंतु उसके बाद उससे प्रतिदिन उसी मजलिस में मिलने लगा, और चार-पाँच दिन में ही मैंने उससे गाढ़ी मित्रता कर ली। मैं दिल्ली में नवाब पीरबख़्श के नाम से ख़ूब ही प्रसिद्धि पा गया था, और नवाबी नाम के उपयुक्त ठाट-बाट से ही मैं रहता भी था। यदि किसी ने रात्रि के १ और २ बजे के बीच मुझ पर पूर्ण दृष्टि डाली होती, तो वह सारी क़लई खुल जाती कि नवाब पीरबख़्श के पास इतनी दौलत कहाँ से और कैसे आई । मैं प्रति रात्रि एक बजे घर से बाहर निकलता था । अपने क़ब्रस्तान में जाकर वहाँ से जितनी संपत्ति मुझसे बन सकती थी, रोज़ ले आया करता था। इस क्रम से मैं वहाँ से सारी संपत्ति अनुमान से एक सौ फेरे में घर ले आया था। पहले तो मैंने यह नया मकान किराए पर ले रक्खा था, किंतु पीछे से मैंने उसे मोल ले लिया, और अपने इच्छानुसार उसमें सुधार कर लिए थे । अत्यंत विश्वास-पात्र दो नौकर मैं अपने साथ मुर्शिदाबाद से ही लाया था, और अन्य कई नौकर मैंने दिल्ली में आकर रक्खे थे ।

अमीरुद्दीन का और मेरा स्नेह प्रतिदिन बढ़ता ही चला जा रहा था, किंतु फिर भी मैंने यह दृढ़ निश्चय कर रक्खा था कि शहादतअली के संबंध में मैं स्वयं अपनी ओर से पहले कोई बात न उठाया करूँगा। परंतु मेरी मुग्धता दूर करने के लिये शहादतअलीख़ाँ का विषय ही अमीरुद्दीन को विशेष उपयोगी था, इसलिये जब वह मुझे मिलता, शहादतअली की ही बात उठाता था। अमीरुद्दीन ने यह नियम-सा कर लिया था कि ज्यों ही मैं मजलिस में पहुँचता, त्यों ही वह मेरे पास आ बैठा करता, और शहादतअलीख़ाँ के संबंध में बातचीत आरंभ कर दिया करता था। एक रात्रि उसने मेरे पास आकर बैठते ही शहादतअलीख़ाँ के

दोष दिखाना आरंभ कर दिए। मैंने हँसते-हँसते कहा—"शहादतअलीखाँ में चाहे जैसे दोष क्यों न हो, किंतु, फिर भी, जान पड़ता है, आपका उस पर पूरा स्नेह था। क्यों न हो, आखिर थे तो आप दोनो मित्र ही !"

अमीरुद्दीन ज़ोर से हँसते हुए बोला—"नवाब साहब ! मैं आपसे क्यों छिपाऊँ; सच तो यह है कि उसके साथ मेरा स्वार्थी दृष्टि का स्नेह था। मैं ग़रीब, किंतु वह श्रीमान् था; इसलिये उससे मीठी-मीठी बातें करके अपना स्वार्थ साधना ही मेरा कर्तव्य-कर्म था। जब मैं उसके समक्ष अपनी कोई रुपए-पैसे आदि की कठिनाई प्रकट करता, तब वह मेरी चित्रशाला में दौड़ा आता, और थोड़े चित्र पसंद करके मुझे मेरा मुँह-माँगा मूल्य ख़ुशी से दे जाया करता था। इस प्रकार मेरी ख़ूब ही चैन से गुज़रती थी। फिर नवाब साहब ! आप ही बतलाइए कि ऐसे भोले-भाले ग्राहक से कौन ऐसा बेवक़ूफ़ होगा, जो मीठा होकर न रहेगा ?"

"हाँ साहब ! आपका कहना बिलकुल ठीक है। जिसे संसार चलाना है, उसे इसी प्रकार का बर्ताव रखना चाहिए; किंतु मैं समझता हूँ कि छोटेपन में आपके मन में ऐसी स्वार्थ-बुद्धि न रही होगी। उस समय उसके साथ आपका जो स्नेह रहा होगा, वह अवश्य ही सच्चा होगा।"

"छोटेपन ही में क्यों ? जनाब ! उसके विवाह तक मेरा उस पर सच्चा स्नेह रहा; किंतु उस विवाह के बाद ही, बस, स्नेह में धीरे-धीरे कृत्रिमता आती गई।"

"तब तो आप दोनो का स्नेह दिलारा ने ही तुड़ाया। क्यों साहब ?"

अमीरुद्दीन का चेहरा लज्जा से कुछ मलीन हो गया। वह बोला—"विवाहोपरांत शहादतअली के स्वभाव में धीरे-धीरे अंतर पड़ता गया, इसी कारण मेरे स्नेह में भी परिवर्तन होता गया।"

"हाँ, मालूम होता है कि उसके जी में कोई वहम का भूत घुस गया होगा। ख़ैर जी, जो हो; जाने भी दीजिए। चलिए, आज ज़रा बाहर घूमें, देखिए, कैसी सुंदर चाँदनी खिल रही है ! रात्रि के समय मैं अकेला कभी बाहर नहीं निकला। कारण, मैं वृद्ध हूँ; इसलिये अनेक प्रकार से

डरता हूँ, किंतु अब तो सौभाग्य से आप-जैसे तरुण स्नेही मुझे मिल गए हैं। तनिक चाँदनी की ही बहार ले लें।"

मेरी बात सुनकर अमीरुद्दीन मुस्किराया, फिर हम दोनो थोड़ी शराब पीकर मजलिस से उठ गए। रास्ते में चलते-चलते मैं बोला—"अब इस शहर में मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अपनी युवावस्था में जब मैं यहाँ दो-चार बार आया था, तब मुझे बड़ा आनंद हुआ था। किंतु उस समय के मेरे कोई भी इष्ट-मित्र अब नहीं बचे, इसलिये मेरी तबियत यहाँ नहीं लगती। यहाँ पर आते ही आपसे भेंट हो गई, इसलिये मैं इतने दिन ठहर भी गया, नहीं तो इस शहर से मैं कभी का चला गया होता। आपका स्वभाव भी बड़ा रँगीला है, और फिर आप चित्रकार हैं, इसलिये आपसे बढ़कर सौंदर्योपासक और कौन हो सकता है? एकआध दिन में आपकी चित्रशाला में भी अवश्य आऊँगा, और जो तस्वीरें मुझे पसंद आवेंगी, अवश्य मोल ले लूँगा। हाँ, इससे भी मुझे समाधान होता है कि शहादतअली के घर में भी आपकी अच्छी जान-पहचान है।"

अमीरुद्दीन कृत्रिम भाव से बोला—"आप अकारण ही मेरी प्रशंसा करते हैं। मेरी चित्रशाला में कुछ विशेष देखने योग्य नहीं, फिर भी यदि आप-जैसे भाग्यवान् पुरुष इतना कष्ट उठाने की कृपा करेंगे, तो मैं अपने को धन्य मानूँगा। सच पूछिए, तो यह चित्रशाला मैंने नाम-मात्र को ही रख छोड़ी है; असल में इस धंधे से अब मुझे कोई अधिक लाभ नहीं मिलता। थोड़े ही दिनों में मैं उसे बंद ही कर देनेवाला हूँ।"

अमीरुद्दीन पर अवश्य ही शराब ने अपना रंग चढ़ा रक्खा था। मैंने पूछा—"मालूम होता है, आप चित्रशाला बंद करके कोई अन्य अधिक लाभदायक धंधा आरंभ करनेवाले हैं?"

"अजी नहीं साहब! मैं धंधा-वंधा कुछ भी नहीं करने का। बात यह है नवाब साहब! मैं शीघ्र ही एक श्रीमती स्त्री से विवाह करने को हूँ। बस, उससे विवाह हुआ कि मैं श्रीमान् बन जाऊँगा।"

मैंने हँसते-हँसते उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—"वाह-वाह! तब तो आप शीघ्र ही नगर-सेठ बन जायँगे!! अच्छा है भाई! खुदा करे जल्दी ही आपका मनोरथ सिद्ध हो।" मैंने ये शब्द कहे तो, किंतु मेरे लाख प्रयत्न करने पर भी उनमें घृणा-व्यंजक स्वर का मिश्रण हो गया; किंतु भाग्य से अमीरुद्दीन पर उस समय शराब ने अच्छा रंग चढ़ा रक्खा था। अस्तु, वह असल भाव न समझ सका। दिल्ली आने पर मैं जिस नए मकान में रहता था, उसी मकान की ओर हम दोनो बातचीत करते हुए चल रहे थे। जब हम लोग मकान के बिलकुल पास पहुँच गए, तब मैंने अमीरुद्दीन से कहा—"चलिए, तो हम लोग थोड़ी देर मकान में ही बैठकर बातचीत करें। तनिक मेरे घर की भी मीठी रोटी चख लीजिए। आप कुछ चिंता न करें, मैं आपके मकान पर आदमी भेजकर कहलाए देता हूँ कि आज आप घर पर खाना न खायँगे, इस-लिये कोई फ़िक्र न की जाय।"

अमीरुद्दीन हँसकर बोला—"अजी साहब! मेरे घर पर कोई भी नहीं है, इसलिये वहाँ पर आदमी भेजने की कोई भी आवश्यकता नहीं है।"

मकान में जाकर जब मैं अमीरुद्दीन को एक-से-एक सुंदर सजे हुए दीवानख़ानों में से लेकर निकलता हुआ चलने लगा, तब अमीरुद्दीन उन दीवानख़ानों की सजावट देखकर आश्चर्य से दंग हो गया। वह यह बिना जाने न रहा कि नवाब पीरबख़्श शहादतअलीख़ाँ से भी अधिक श्रीमान्, वैभवशाली एवं शौक़ीन हैं। एक के बाद एक दीवानख़ाना पार करते हुए हम दोनो उपहार-गृह में जाकर बैठे। तुरंत ही एक नौकर चाँदी की सुराही में उच्च श्रेणी की शराब और सोने के जाम लेकर हाज़िर हुआ। दूसरा नौकर सोने का फ़र्शी हुक़्क़ा भी भरकर रख गया। तीसरे ने आकर हम दोनो पर पवन झलना आरंभ कर दिया, जिसके कारण मनमोहिनी सुगंधित वायु हमारे शरीर पर बहने लगी। दोनो जाम भरे गए, और हम लोगों ने उठा भी लिए। ऐसी उत्तम शराब

अमीरुद्दीन को पहलेपहल आज ही नसीब हुई थी, इसलिये पीते ही अमीरुद्दीन का दिल बाग़-बाग़ हो गया। अमीरुद्दीन तो बेचारा क्या चीज़, अमीरुद्दीन के फ़रिश्ते तक ऐसी उत्तम शराब से तर हो जाते।

जिस अमीरुद्दीन ने मेरा हृदय टूक-टूक कर दिया था, जिस अमीरुद्दीन ने आस्तीन में साँप का काम किया था, जिस अमीरुद्दीन के कारण संसार में मेरा कोई अस्तित्व ही न रह गया था, मित्रो! वही मित्र-द्रोही, नर-पिशाच अब मेरे सामने बैठा था। मैं चाहता, तो एक निमिष-मात्र में उसके कलेजे में तीक्ष्ण धारवाली छुरी भोंककर उस नर-पिशाच का अंत कर देता, और किसी को भी कानोंकान कोई भी ख़बर न पड़ती कि अमीरुद्दीन क्या हुआ। उसे ज़मीन खा गई या आसमान हड़प कर गया, किंतु नहीं, मित्रो! मुझे इस प्रकार की प्रतिहिंसा पसंद न थी, मैं उससे पूरा-पूरा बैर भँजाना चाहता था, उसे मृत्यु-दंड से भी अधिक कड़ा दंड देने की मेरी इच्छा थी। मैं ऐसा बैर भँजाना चाहता था, जिससे प्रतिक्षण उसे अपने किए कर्मों के पश्चात्ताप से घोर वेदना हो, उसका हृदय धीरे-धीरे जल-भुनकर ख़ाक-स्याह बन जाय, और उसका सारा शरीर अंतर्वेदना की होली में जल जाय। मित्रो! यही कारण था कि मैंने हज़ारों मौक़े मिलने पर भी उसके प्राण-पखेरू नहीं उड़ा दिए।

मेरी उत्तम शराब ने अमीरुद्दीन के गले के नीचे उतरकर उस पर और भी गहरा रंग चढ़ा दिया। मैंने अमीरुद्दीन से फिर पूछा—"क्यों जनाब! उस श्रीमती स्त्री के साथ विवाह करके जब आप उसे अपना लेंगे, तब मुझे भी उसके हाथ के बनाए खाने खिलवाएँगे, या मुझे भूल ही जायँगे?"

हँसते हुए अमीरुद्दीन ने उत्तर दिया—"अजी वाह जनाब! मैं आपको भूल सकता हूँ भला? वाह-वाह! आप-जैसे को और मैं भूल जाऊँ, कदापि नहीं। हाँ, आप उस समय तक दिल्ली में ही रहें, तब है।"

"अभी मैं यहाँ से जल्दी ही न चला जाऊँगा। जब दिल्ली-जैसे शहर में आ ही पहुँचा हूँ, तो फिर बिना चालीस-पचास लाख के जवाहरात

बेचे ख़ाली हाथ कैसे चला जाऊँगा ? लेकिन जनाब ! आप अपनी शादी में आख़िर देर ही क्यों कर रहे हैं ?"

"केवल लोकापवाद के भय से । उस स्त्री को अभी दो मास और सूतक पालना है, फिर सूतक का समय समाप्त होते ही बस, शादी हो जायगी । केवल इतनी ही-सी देर है ।"

मैंने हँसते हुए कहा—"ठीक है यार ! अब समझा मैं । शहादत-अलीख़ाँ की बीबी के ही साथ ब्याह होने को है । क्यों ? वाह-वाह ! तब तो पौ बारह हैं; भला, फिर पूछना ही क्या है ? आप बड़े नसीबवाले हैं ।"

"हाँ, नसीब का ज़ोर तो है ही; मगर जनाब ! केवल संपत्ति की दृष्टि से आप मेरे बड़े नसीबे का अनुमान न करें, सबसे मुख्य बात तो यह है कि साहब ! वह बड़ी ही सुंदर एवं रसिक स्त्री है । भला नवाब साहब ! आपने तो तमाम मुल्क छान डाले हैं, बतलाइए तो कि किस मुल्क की औरतें बहुत ख़ूबसूरत होती हैं ?"

मैं एकदम खिलखिलाकर हँस पड़ा, और फिर बोला—"दोस्त ! सच पूछो, तो मैं इस प्रश्न का उत्तर देने के योग्य हूँ ही नहीं; इस व्यापार के धंधे के मारे मुझे स्त्रियों के देखने का अवकाश ही नहीं मिलता । जब से मैंने होश सँभाला है, तब से मैं पैसे ही के पीछे कमर कसकर पड़ा हूँ । बस, पैसा-पैसा, मेरे ऊपर पैसे का ही भूत सवार रहा । सभी सांसारिक सुखों का मूल पैसा ही है । अस्तु, मेरा विचार था कि ख़ूब अटूट धन जमा कर लूँ, फिर जब इच्छा होगी, सुंदर-से-सुंदर स्त्री मोल ले आऊँगा, और फिर ख़ूब चैन से गुज़रेगी । इसी कारण मैं पैसे के ही पीछे पड़ा रहा । अपने इस उद्देश्य की सिद्धि के निमित्त मैंने ऐसा तन-मन गलाया कि मेरी जवानी कब और किस रास्ते निकल गई, इसका मुझे कुछ भी भान न हुआ । जो इच्छा युवावस्था में भी नहीं हुई, वह अब इस वृद्धावस्था में कहाँ से आवे ? अब तो मेरी यह आयु ख़ुदा की बंदगी में ही बिताई जाने योग्य है; और यही मेरी इच्छा है कि जैसे

इतनी आयु बीती, ख़ुदावंद करीम इस बची हुई थोड़ी आयु को भी उसी प्रकार व्यतीत करा दे।"

मेरा यह कथन सुनकर अमीरुद्दीन को हँसी आ गई। वह बोला—"आपकी बातें सुनकर मुझे शहादतअलीख़ाँ की याद आ जाती है। शादी होने से पहले वह भी इसी प्रकार की ज्ञानगुदरी गाया करता था; परंतु घर में दिलारा के आते ही मियाँ के सभी सुर बदल गए थे।"

मैं आश्चर्य से बोला—"क्या दिलारा ऐसी बड़ी सुंदरी है? क्या उसने शहादतअली-जैसे को अपनी सुंदरता से उन्मत्त बना दिया था?"

"अजी दिलारा केवल सुंदर ही नहीं, वरन् उसमें एक ऐसा जादू है कि जिस पर वह अपनी दृष्टि फेकती है, उसी को अपना दासानुदास बना लेती है। आपकी नाईं शहादतअलीख़ाँ भी समझता था कि पैसे से ही सब कुछ हो सकता है; परंतु दिलारा को देखते ही उसका यह भ्रम दूर हो गया था। दिलारा ने केवल अपने एक दृष्टिपात से शहादत का सर्वस्व अपना कर लिया था। अजी नवाब साहब! स्त्रियाँ पैसे की लालचिन नहीं होतीं; वरन् कितनी हा स्त्रियाँ ऐसी अद्भुत सुंदरी होती हैं कि वे पुरुष को उसके सारे ऐश्वर्य, धन-संपत्ति एवं सुख-सौख्य-सहित विना मोल ही ख़रीद लेती हैं।"

"वाह-वाह! सौंदर्य की महिमा ऐसी बड़ी विलक्षण है क्या? क्यों साहब! सौंदर्य और प्रेम, ये दोनो वस्तुएँ तो जुदी-जुदी हैं न? सौंदर्य को प्रेम नहीं कहा जा सकता, यह तो ठीक ही है; और न धन-संपत्ति ही प्रेम कहाई जा सकती है। ख़ुदा जाने, सौंदर्य और प्रेम एक ही है या इनमें कुछ पृथक्ता है! मैंने तो जनाब! इसका कभी विचार तक नहीं किया, और फिर अब तो मेरी वह अवस्था ही नहीं रही कि ऐसे बखेड़ों में पड़ूँ। ओहो! मुझे अब पश्चात्ताप होता है कि मैंने अपना तारुण्य वृथा ही गँवाया; अपनी सारी आयु अरसिक बने रहकर ही पानी की नाईं बहा डाली।"

"किंतु मैं नहीं मान सकता कि आपकी आयु इतनी अधिक निराशा-

प्रद हो गई है।" इस प्रकार कहते हुए अमीरुद्दीन ज़ोर से हँस पड़ा, और फिर बोला—"कदाचित् आप सौंदर्योपासक नहीं हैं, किंतु फिर भी, सुंदर स्त्री के दर्शन करने में मैं आपकी कोई हानि नहीं देखता। शहादत-अलीख़ाँ के कुटुंब से आपका निकट-संबंध है ही, फिर एक बार आकर आप दिलारा से क्यों न मिलें? आप एक बार उससे मिले बिना तो मुर्शिदाबाद जा ही नहीं सकते।"

मैं आग्रह-हीन स्वर में बोला—"हाँ, सो तो ठीक है कि मुझे एक संबंधी की नाईं उसकी शोक-सांत्वना के लिये एक बार अवश्य ही शहादतअली के मकान पर जाना पड़ेगा, और यह मेरा परम कर्तव्य है; परंतु भाई अमीरुद्दीन! पर-स्त्री के साथ मिलना मुझे एक बड़ा संकट प्रतीत होता है। जनाब! मैंने यह भी सुना है कि वह अपने पति के सूतक का पालन बिलकुल शरह के मुताबिक़ कर रही है, जिससे उसके परिचित भी उससे मिल नहीं सकते। फिर जनाब! मैं तो उसके लिये अपरिचित ही हूँ, हज़ार मैं उसके कुटुंब का निकट-संबंधी हूँ, आख़िर इससे पहले तो मेरी और उसकी भेंट हुई ही न थी।"

"आप यह कुछ भी चिंता न करें। आप उसके नातेदार हैं, इसलिये आपकी भेंट से उसे बड़ा समाधान होगा। वह दुःख में इतनी अधिक तो डूब ही नहीं गई है कि आप-जैसे प्रतिष्ठित पुरुष की उपेक्षा करे।"

"उसे इतना अधिक दुःख नहीं है?"

"नवाब साहब! उसकी-जैसी अनुपम सुंदरी अपनी तरुणावस्था में ही मनुष्य-समाज की इस दुःख-शोक की रूढ़ि पर निरर्थक क्यों मर मिटे? सुंदर ललनाओं का जन्म ही पुरुषों को आनंद देने के लिये होता है; फिर ऐसी सुआनना स्त्रियाँ अपने मृत पतियों के लिये दुःख करने का विचार करें भी, तो उन्हें अवकाश कहाँ है, जो बैठकर थोड़ा-बहुत रुदन कर पाएँ? फिर नवाब साहब! दिलारा-जैसी अनुपम सुंदरी उस मूर्ख शहादत के लिये वृथा अश्रुपात करके अपने सौंदर्य को सदमा क्यों पहुँचाने लगी?"

"मूर्ख कह ले, गालियाँ दे ले, और जो चाहे सो कह ले। कारण, मृत

मनुष्यों की निंदा करने में कोई भी अपनी जीभ को लगाम में नहीं रहने देता; फिर अमीरुद्दीन-जैसा लुच्चा मेरी निंदा करे, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?"

मैं बोला—"आप कहते हैं, सो ठीक है; किंतु दिलारा की ओर से मुलाक़ात का योग्य बदला आप-जैसे तरुणों को ही मिल सकता है। मैं तो भाई वृद्ध हूँ, और फिर ऐसा कुरूप हूँ कि मुझे देखते ही दिलारा को अपने कुरूप पति शहादत की याद आ जायगी कि जिस कारण यदि मैं उसका क्रोध-पात्र बन जाऊँ, तो कोई आश्चर्य नहीं।"

"उँह ! आप व्यर्थ ही ऐसी शंका करते हैं। आप कुरूप कैसे ? अजी साहब ! आप तो ऐसे स्वरूपवान् हैं कि हज़ारों में एक। आपके बाल पककर श्वेत हो गए हैं, किंतु आपके मुख-मंडल का तेज जवानों को भी मात करता है। अहा ! आप अपनी युवावस्था में बड़े ही सुंदर होंगे। मुझे आश्चर्य तो यह है कि आप जिस देश में रहते हैं, उस देश की स्त्रियों के आँखें नहीं हैं क्या ?"

"मैं हँसते हुए बोला—"वाह-वाह ! वहाँ की स्त्रियों के आखें नहीं हैं, यह कैसे कहा जा सकता है ? किंतु हाँ, यह बात अलबत्ता है कि मैंने उनकी आँखों के सामने कभी देखा ही नहीं। भला साहब ! मैं पैसे के पीछे दौड़ता, या उनके सौंदर्य-जाल का शिकार बनता ! मैंने अपनी युवावस्था में कभी किसी स्त्री से चार आँखें नहीं होने दीं, और फिर अब तो जनाब ! मैं वृद्ध हुआ हूँ, दृष्टि क्षीण हो गई, बाल पककर श्वेत हो गए, और इंद्रियाँ भी धीरे-धीरे मेरी अवहेलना करने लग गई हैं। अस्तु, अब ऐसे बुड्ढे-ठुड्ढे की ओर कौन युवती आँख उठाकर देखना पसंद करेगी ?"

मेरा यह संभाषण सुन अमीरुद्दीन खिलखिलाकर हँस पड़ा, और बोला—"शहादतअली के विचारों से आपके विचार ख़ूब मेल खाते हैं, इसलिये मुझे अनुमान होता है कि पैसे के पीछे दौड़नेवाले सभी मनुष्य एक से ही विचारवाले होते हैं। वह शरीर से आप ही के जैसा हृष्ट-पुष्ट

था, उँचाई में भी आप ही के जैसा था, और रंग भी उसका आप ही का-सा गोरा-गोरा—"

मैं बीच में ही बोल उठा—"अजी साहब ! किंतु वह मेरे-जैसा कुरूप तो नहीं था ?"

"नवाब साहब को कुरूप कौन कहता है ? अजी साहब ! सौंदर्य तो आपका ऐसा उत्कृष्ट है कि शहादत तो आपके समक्ष सेर में एक पौनी भी न था। नवाब साहब ! सौंदर्य में आप यूसुफ़ से कुछ कम नहीं हैं। बस, केवल तनिक वृद्धावस्था की छटा आपके मुख-मंडल पर झलकती है।"

"हाँ, भाई ! यह छटा ही तो बुरी है ! तरुण स्त्री एक चोट कुरूप युवा को तो पसंद कर लेगी, किंतु वृद्ध चाहे जैसा सुंदर क्यों न हो, उसे कभी घर में न घुसने देगी।"

इस पर अमीरुद्दीन खिलखिलाकर हँस पड़ा। मैंने भी हँसकर उसका साथ दिया। इतने हो में मेरा नौकर दो थारों में उत्तम-उत्तम सुस्वादु खाद्य और पेय पदार्थों परोस लाया, और हम दोनो ने भोजन आरंभ किया। उन सुंदर खाद्य पदार्थ पर हाथ मारते समय अमीरुद्दीन कुछ विशेष नहीं बोला। भोजन समाप्त होने पर पान-बीड़ी खाते हुए अमीरुद्दीन बोला—"तो आपका पक्का निश्चय है कि आप दिलारा से मिलने के लिये न जायँगे ?"

मैं तुरंत ही बोल उठा—"नहीं, सो तो ऐसा निश्चय-विश्चय तो मैंने कुछ किया नहीं है। हाँ, यदि आपसे परिचय न हुआ होता, तो कदाचित् मुझे वहाँ जाना ही पड़ता; किंतु अब तो मैं अपना काम आप ही के द्वारा साध लूँगा।"

मेरे ये शब्द सुनकर अमीरुद्दीन का चेहरा जिज्ञासा से अति आतुर बन गया। वह झीने स्वर में बोला—"मैं नवाब साहब की किसी ख़िदमत के योग्य समझा गया हूँ, इसके लिये मुझे बड़ा आनंद होता है। मुझे आप अपना आज्ञानुवर्ती समझिए, और कृपा कर आज्ञा करें कि मुझे क्या करना होगा।"

कृत्रिम स्नेह से मैंने उसका हाथ पकड़कर कहा—"मित्र ! वाह, कैसी बातें करते हो ? मैं आपको अपना परम स्नेही मित्र समझता हूँ, और इसी स्नेह के कारण मैं अपना एक कार्य आपको सौंपूँगा। भला, कल सबेरे तो आपकी दिलारा से मुलाक़ात होवेगी ही ?"

मेरे इस प्रश्न का उत्तर जितनी जल्दी चाहिए था, उतनी जल्दी नहीं मिला। अमीरुद्दीन का चेहरा लज्जा से मलीन हो रहा था, किंतु फिर भी वह निर्लज्ज बोला—"हाँ, कल सबेरे तो होवे ही गी; किंतु आज रात भी किसी कारण से मैं उसके पास जाने को हूँ। यदि आपको कुछ संदेशा भेजना हो, तो बतलाइए, मैं जाकर उससे कह दूँगा।"

"मैं आपका बड़ा कृतज्ञ होऊँगा। शहादत के बाप का और मेरा परस्पर बड़ा स्नेह था, यह तो मैंने आपसे कहा ही होगा।"

"हाँ-हाँ, सो तो मैं जान चुका हूँ।"

"हम दोनों का धंधा भी एक ही था। उनकी दूकान पर मेरी हुंडी आया करती थी, और मेरी दूकान पर उनकी हुंडी जाया करती थी। एक समय अनेक व्यापारियों ने मेरी परीक्षा लेने के निमित्त लाखों रुपयों की हुंडियाँ एक ही साथ मेरे ऊपर भेज दीं, उस समय शहादत के बाप ने ही मेरी आबरू रक्खी थी। उनके इस उपकार का बदला देने के लिये मैंने उनके लिये अति उत्कृष्ट मोतियों का एक कंठा तैयार कर रक्खा था, और निश्चय कर रक्खा था कि जब मैं स्वयं दिल्ली जाऊँगा, तब यह कंठा उनकी भेंट करूँगा। परंतु उनकी मृत्यु के उपरांत मैंने वह कंठा शहादत को उपहार में देने की ठानी, किंतु यहाँ आने पर विदित हुआ कि शहादत भी कूच कर गया। अस्तु, अब मेरी इच्छा है कि वह कंठा मैं दिलारा को भेंट करूँ। इसलिये बस अब आपसे यही प्रार्थना है कि मुझ ग़रीब की तुच्छ भेंट आप दिलारा को स्वीकार करा दें; इसके लिये मैं आपका उपकार मानूँगा।"

अमीरुद्दीन का मलिन चेहरा मेरी बात सुनकर हर्ष से प्रफुल्लित हो गया, और वह बोला—"जनाब ! यह कार्य मैं बड़े आनंद से पूरा करूँगा।

मेरी धारणा है कि दिलारा आपके उपहार को अवश्य ही स्वीकार करेगी। कारण, सुंदर और रसिक स्त्रियों को स्वभावतः अलंकारों से विशेष प्रेम रहता है। अच्छा जनाब! अब आज्ञा चाहता हूँ। सलाम!"

यह कहकर अमीरुद्दीन ने झुककर मुझे सलाम किया, और मेरे मकान से बाहर निकला। मैंने ऊपर दुमंज़िले पर चढ़कर एक खिड़की से झाँककर देखा कि उसने कौन-सा मार्ग पकड़ा। वह निर्लज्ज मेरे ही मकान की ओर जाता हुआ मुझे दिखाई दिया। जा, अमीरुद्दीन! निःशंक मन से जा; किंतु देख, सँभले रहना; शहादतअलीख़ाँ का भूत अब तेरे पीछे छाया की नाईं लग गया है। थोड़े दिन स्वप्न-राज्य में विहार कर ले, अमीरुद्दीन! किंतु ध्यान रखना नर-पिशाच! जिसकी दया की भिक्षा से उन्मत्त होकर तू यह सब भोग-विलास कर रहा है, उसके हृदय में अब तेरे लिये दया नहीं है। हृदय में उस दया का स्थान अब प्रतिहिंसा ने छीनकर अपने अधीन कर लिया है; जिस अंतः में तेरे लिये दया का झरना बह रहा था, वहाँ अब तेरे लिये प्रतिहिंसा के विष का भयानक अंधकूप तैयार हो गया है। अमीरुद्दीन! अमीरुद्दीन! मैं तुझे क्षमा कर देता, और तेरे ऊपर कृपा करता; किंतु नहीं, नर-पिशाच अमीरुद्दीन! तू क्षमा के योग्य ही नहीं है, तू कृपा का समुचित पात्र ही नहीं है; तेरे ऊपर दया करना मानो कराल विषधर सर्प को दूध पिलाना है। अमीरुद्दीन! यदि उस शैतान की ख़ाला दिलारा ने ही तुझे कराल सर्पिणी की नाईं ग्रसित करके मनुष्यत्व से गिरा दिया होता, और मेरी दृष्टि में तेरे घोरतम अक्षम्य पाप न आए होते, तो अमीरुद्दीन! मैं तुझे अवश्य ही क्षमा कर देता; किंतु नर-पिशाच! तूने तो जिस पत्तल में खाया, उसी में निःशंक हो छेद किया, और अपने कृत्य पर तनिक भी न शर्माया। सारे दिल्ली-शहर में एक तू ही अकेला है, जो शहादतअलीख़ाँ को कुरूप, भूत, मूर्ख, चोर, न-जाने क्या-क्या उपाधियाँ देता फिर रहा है। मित्रो! अमीरुद्दीन के इन दोषों के पश्चात्ताप के लिये नरक की भयंकर-से-भयंकर यातनाएँ भी पर्याप्त नहीं। ऐ ख़ुदा! ऐसे दुष्ट, नर-पिशाच

अमीरुद्दीन पर तेरे पवित्र हाथ का साया न रहना चाहिए। मेरी तो धारणा है कि इस मुजस्सिम शैतान की शिक्षा करने का भार तूने ही मुझे दिया है, और तेरी ही प्रेरणा से मैं उसको योग्य शिक्षा करने में समर्थ होऊँगा। आमीन!

सातवाँ प्रकरण

जाल बिछा

रोज़ की नाईं दूसरे दिन प्रातःकाल सात-आठ बजे मैं जलपान कर रहा था कि उसी समय मेरे नौकर ने मुझसे इत्तिला की कि अमीरुद्दीन आए हैं। मैंने नौकर को आज्ञा दी कि वह अमीरुद्दीन को उपहार-गृह में ही ले आवे। मुझे तो कल्पना भी न थी कि अमीरुद्दीन की सवारी इस समय आएगी। अस्तु, मैं उत्सुकता से उसकी बाट जोहने लगा। यह तो मैं समझ ही गया कि कंठेवाला जादू दोनो पर काम कर गया। अमीरुद्दीन ने मेरे उपहार-गृह में पाँव रक्खा और प्रफुल्लित चेहरे से उसने मुझे झुककर सलाम किया। मैंने भी मुस्किराते हुए सलाम का प्रत्युत्तर दिया, और बैठने का इशारा किया। फिर मैंने हँसते हुए पूछा—"आप भी थोड़ा नाश्ता कीजिएगा? बड़े आनंद की बात है कि आज सबेरे ही आपके दर्शन मिले।"

मैंने वृद्ध का वेष बना रक्खा था, किंतु अपने युवावस्था की कितनी ही टेवें ज्यों-की-त्यों विद्यमान रक्खी थीं। छोटेपन से ही मुझे प्रातःकाल जलपान कर लेने की टेव थी। नाश्ते में जो पदार्थ मैं पहले खाता था, वही अब भी मेरे सामनेवाले थार में परोसे हुए रक्खे थे। कारण, उन पदार्थों में मैंने कोई भी फेर-बदल न किया था। अमीरुद्दीन के मस्तिष्क में तो गोबर भरा था, यदि उसे तनिक भी बुद्धि होती तो मेरे सामने रक्खे हुए जलपान के सामान से ही वह शहादतअलीखाँ के भूत का पता लगा लेता; किंतु उसकी बुद्धि इतनी दूर न पहुँच सकी। वह बोला—"मैं आपके नाश्ते के वक़्त आ पहुँचा, सो इसके लिये आपसे क्षमा-प्रार्थी हूँ। मैं इस समय न आता, किंतु क्या करूँ, दिलारा की बात मैं नहीं

टाल सकता। कहिए, नवाब साहब ! सुंदर स्त्री की अवज्ञा कौन कर सकता है ?"

मैंने हँसते-हँसते उत्तर दिया—"जो मेरे-जैसा अरसिक हो, वह। आप थोड़ा नाश्ता तो कर लें।"

"न साहब ! मुझे इस समय खाने की टेव नहीं है। मैं तो प्रातःकाल केवल थोड़ा-सा क़हवा पीता हूँ, और वह भी अभी-अभी पीकर ही आ रहा हूँ।"

"आज का नाश्ता भी कुछ अच्छा नहीं है। मुझे नाश्ते में कबाब और कचौरी बहुत अच्छी लगती हैं; किंतु बावरची ने आज कुछ और ही चीज़ें तैयार करके रख दी हैं। अगर कोई अच्छा बावरची आपकी तलाश में हो, मेहरबानी करके मेरे पास नौकर करा दीजिए।"

"हाँ, मैं आपको एक बावरची दूँगा। काम में तो वह बड़ा होशियार है, लेकिन है अविश्वासी। पहले वह शहादतअलीख़ाँ के यहाँ नौकर था, और उसका बड़ा ही विश्वास-पात्र था। रह-रहकर वही बात कहनी पड़ती है कि शहादतअली बड़े ही परले सिरे का मूर्ख था। नवाब साहब ! उसके-जैसा मूर्ख तो मैंने अन्य कोई नहीं देखा। देखिए, शहादतअली के मरने के बाद एक दिन उस रसोइए ने घर में से कुछ जवाहरात चुराए। उसे पकड़कर मैंने अदालत भिजवा दिया। हम सबों की धारणा थी कि उसे चोरी के लिये अदालत से सज़ा दी जायगी; किंतु वहाँ तो बात ही और की और हो गई। उस बावरची ने क़ाज़ी को शहादतअलीख़ाँ के हाथ का लिखा हुआ कोई काग़ज़ दिखाया, जिसके देखते ही क़ाज़ी ने उसे साफ़ छोड़ दिया, और वह सभी जवाहरात भी उसी को दे दिए। और फिर, नवाब साहब ! वह बावरची भी कैसा बेवक़ूफ़ निकला कि उसने वह सभी जवाहरात अनाप-शनाप ख़र्च कर डाले। उन जवाहरात की रक़म से उसने शहादतअलीख़ाँ के स्मरणार्थ दिल्ली-शहर के बाहर उत्तर की ओर एक बड़ा बाग़ तैयार करवाया, और उसमें एक मुसाफ़िरख़ाना, एक मसजिद और दो कुएँ बनवाए। अब

तो नवाब साहब ! आप समझ ही गए होंगे कि शहादत का दिलारा पर कितना प्रेम था, उस प्रेम का ही यह एक नमूना मैंने आपको सुनाया। और सुनिए, बहुतेरे लोगों पर क़र्ज़ बाक़ी था, किंतु अब जिस से तक़ाज़ा किया जाता है, वही शहादत के हाथ की चुकते की रसीद दिखाकर फ़ारिग़ हो जाता है। नवाब साहब ! वह बेवक़ूफ़ की दुम शहादत मरते समय क़रीब-क़रीब अपने सभी ऋणियों को इसी प्रकार ऋण-मुक्त कर गया है।''

अमीरुद्दीन की ये बातें सुनते हुए मुझे हँसी आ रही थी, किंतु मैं हँसी को बलात्कार-पूर्वक दबाए हुए था। उसकी बात पूरी होते ही मैंने गंभीर स्वर में कहा—"ओहो ! यह तो उसने अच्छा नहीं किया। अपनी स्त्री की अव्यवस्था करके औरों की व्यवस्था करना बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती।'' फिर मैं बात का रुख़ बदलने के उद्देश्य से बोला—"मालूम होता है कि आपका और दिलारा की कल रात्रि को ही भेंट हो गई थी; क्यों ? मैं न जानता था कि बड़े घर की स्त्री इतनी अधिक रात तक जागती होगी। किंतु हाँ, कदाचित् सुंदर और रसिक स्त्रियाँ मध्य रात्रि-पर्यंत जागा करती होंगी; क्यों साहब ?''

लज्जा से मुँह नीचा करके अमीरुद्दीन बोला—"अब तो उसके सभी व्यवहारों का उस पर ही अवलंबन है, और फिर आजकल उसकी सांपत्तिक स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं है; इसीलिये इन सब अड़चनों के कारण उसने कल रात्रि को मुझे सलाह-मशविरे के लिये बुलाया था, इसलिये उसी समय मैंने आपका संदेश भी उसे सुना दिया। यह सुनकर उसे बड़ा आनंद हुआ कि अपने कुटुंब का कोई सगा-संबंधी दिल्ली आया है। वह आपका अलंकार भी स्वीकार करने के लिये तैयार है; किंतु उसकी इच्छा है कि वह अलंकार आप स्वयं ही अपने हाथ से उसे अर्पण करें। आपके अलंकार से वह आपकी भेंट को अधिक मूल्यवान् समझती है, और फिर उसकी धारणा है कि ऐसे समय यदि आप उससे भेंट करेंगे, तो आपकी भेंट से उसका दुःख बहुत कुछ हलका हो जायगा।

उसने मुझे आपके लिये आमंत्रण देने को भेजा है, और मेरी भी नवाब साहब ! यही इच्छा है कि आप उसके मकान में ज़रूर ही क़दमरंजा फ़रमाएँ और उसे ममनून व मशकूर करें ।"

मैंने जल्दी-जल्दी अपना नाश्ता समाप्त किया, और फिर अमीरुद्दीन को साथ लेकर अपने मुख्य दीवानख़ाने में आ बैठा। हुक़्क़े की नली मुँह में दबाकर धुएँ के गुब्बारे उड़ाता हुआ मैं बोला—"आपने उससे मेरा संदेश कह सुनाया, इसके लिये मैं आपका अत्यंत कृतज्ञ हूँ; परंतु मैं उसका आमंत्रण स्वीकार करने में असमर्थ हूँ। मैं जानता हूँ कि वह मुझे अरसिक ठहराएगी, किंतु क्या करूँ। मुझे इसका कोई इलाज दिखाई नहीं पड़ता। मैं अपने उद्योग-धंधे के कारण पानी तक पीने का अवकाश नहीं पाता, फिर उसके पास कैसे और कब पहुँच सकता हूँ? जनाब! आप ही कृपा करके कोई ऐसी युक्ति-प्रयुक्ति लड़ा दीजिएगा कि मुझे वहाँ न जाना पड़े, और दिलारा बुरा भी न माने।"

अमीरुद्दीन आश्चर्य-भाव दिखाता हुआ विरक्त स्वर से बोला—"वाह साहब! क्या आप सचमुच दिलारा के यहाँ न जायँगे, और उसके निमंत्रण का तिरस्कार करेंगे?"

मैं हँसकर बोला—"दोस्त! हम दोनो के बीच यदि कोई अंतर है, तो यही कि आप तरुण हैं, और मैं वृद्ध हूँ। बस, यही बात आपको ध्यान में रखनी चाहिए। आप यह न समझें कि मैं दिलारा का अपमान करने के लिये उसका आमंत्रण स्वीकार नहीं करता, परंतु असल बात तो यही है कि मेरे-जैसे वृद्ध के साथ तरुण स्त्री के निमंत्रण का महत्त्व लागू नहीं पड़ता, और फिर दूसरी बात यह भी है कि काम-काज के मारे मुझे समय नहीं मिलता। जब से मैं मुर्शिदाबाद से आया हूँ, तब से आज तक मेरा एक भी अभी अच्छा सौदा नहीं हुआ, और प्रतिदिन का ख़र्च जो मेरी दम से लगा है, सो आप देखते ही हैं। मेरे-जैसे पैसे के पीछे पड़े हुए बुड्ढे को भाग्य से आप-जैसा तरुण और सरस वकील मिल गया है। अस्तु, कुछ कह-सुनकर दिलारा को समझा-बुझा देना आप-जैसे

तरुण रसिया के बाएँ हाथ का खेल है। कहो मित्र ! मेरी इतनी वकालत आप कर दोगे क्या ?"

"हाँ-हाँ, नवाब साहब ! भला मैं नाहीं थोड़े ही कर सकता हूँ। किंतु जनाब ! यह तो बतलाइए कि आपके मन में स्त्रियों के संबंध में इतना तिरस्कार क्यों है ?"

"तिरस्कार, वाह, आपने भी खूब कही। अजी साहब ! मेरे मन में स्त्रियों के संबंध के विचार ही नहीं आते, तो फिर तिरस्कार कहाँ से हो ? देखिए, मुख्य बात तो यह है कि जहाँ प्रेम होता है, वहीं तिरस्कार उत्पन्न होता है। जब मैंने जन्म से ही किसी स्त्री के साथ प्रेम नहीं किया, तो फिर अब स्त्रियों के प्रति तिरस्कार कैसे उत्पन्न हो सकता है। अब मुझे स्त्रियों से मिलने के लिये तनिक भी उत्साह नहीं होता, यह मेरा दोष नहीं, किंतु मेरी वृद्धावस्था का ही दोष है। युवावस्था में स्त्रियों का भार गुलाब के फूल की नाईं हलका प्रतीत होता है, किंतु वृद्धावस्था में वही भार सहन करना जीव को नितांत कठिन और अत्यंत भारू पड़ जाता है। यह भी खुदा की एक मेहरबानी है कि मैं इस तापत्रय से मुक्त हूँ।"

"किंतु व्यवहार में तो यह भार सहन करने के लिये वृद्ध भी उत्सुक दीखते हैं।"

"अरे, यह कोई उनकी स्वेच्छा नहीं होती, यह सभी उनकी क्षुद्र मनोवृत्तियों का ही खेल समझना चाहिए। मनुष्य निग्रह से अपने मनोविकार पर विजय प्राप्त कर सकता है। किसी क्षुद्र लालसा के आवेग में आकर प्रेम-प्रेम कहकर जहाँ-तहाँ आलिंगन प्रदान करते फिरना, यह जान-बूझकर विष पान करने के सदृश है। दोस्त ! मुझ वृद्ध का यह कथन आपको पसंद नहीं आ सकता; किंतु प्रसंग आ जाने पर इतना मैं कह गया, सो इसके लिये आपसे क्षमा-प्रार्थी हूँ।"

"हाँ, आपका कहना ठीक है, किंतु फिर भी मेरा आपका इस विषय का मतभेद ज्यों-का-त्यों ही विद्यमान है। मैं वाद-विवाद करने की धृष्टता नहीं कर सकता; किंतु फिर भी अति नम्रता से मैं नवाब साहब से यह

प्रार्थना किए विना नहीं रह सकता कि स्त्रियों के विषय में उनकी उदासीनता उनके सभी बर्ताव के साथ विसंगत-सी प्रतीत होती है। युवा पुरुष प्रत्येक श्वास के साथ रमणी के सहवास-सुख की कल्पना किए विना नहीं रहते। नवाब साहब ! जिस तरुण का हृदय रमणी के हास्य, उसके नेत्र-कटाक्ष और उसके अंग-विक्षेप को देखकर प्रेम से भर नहीं आता, वह तरुण तरुण कहाने के योग्य नहीं है। मैं तो यही कहूँगा कि फिर उसने अपनी हीरे-जैसी तरुणावस्था का नितांत ही दुरुपयोग किया। प्रेम एक बहिश्ती तोहफ़ा (स्वर्गीय भेंट) है। जो हृदय पत्थर से भी अधिक कड़ा और निकम्मा होता है, केवल उसी में यह प्रेम उत्पन्न नहीं हो पाता। मैं नहीं कहता कि आपके अंतःकरण में प्रेम नहीं है, प्रत्युत मुझे विश्वास है, और मैं बल-पूर्वक कहता हूँ कि आपके अंतःकरण में प्रेम है, और ख़ूब है, किंतु बात केवल यही है कि वह प्रेम आपने अब तक किसी को अर्पण नहीं किया, इसीलिये, मुझे डर है कि उसमें कोई काट-छाँट होना आरंभ न हो जाय।"

मैं हँसते हुए बोला—"यह तो आपने मुझे एक नई बात सुनाई कि प्रेम ऐसी चामत्कारिक वस्तु है ! तो फिर मैं स्त्रियों को नहीं घूरता। यह एक रीति से अच्छा ही करता हूँ; अन्यथा एकआध स्त्री के दृष्टिपात से मेरे प्रेम की वह काट-छाँट बंद हो गई होती, और फिर मेरा प्रेम स्वर्ण-मुद्रा से भी अधिक चमचमाने लगता। यदि दुर्दैव से ऐसा हो गया, तो अरे रे ! नवाब पीरबख़्श इस बुढ़ापे में पैसे का पीछा छोड़कर प्रेम का पीछा पकड़ लेगा।"

अमीरुद्दीन विद्रूप स्वर में बोला—"पैसे और प्रेम में ज़मीन-आसमान का अंतर है। पैसे की नाई प्रेम को हाथ में नहीं पकड़ सकते। एक बार प्रयत्न करके पैसे को प्राप्त कर सकते हैं, किंतु प्रेम लाखों प्रयत्न करने पर भी नहीं मिलता। पैसे को उद्योग से प्राप्त कर सकते हैं, किंतु प्रेम भाग्य से ही प्राप्त होता है। रमणी के सहवास में जो सुख है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।"

"यही अच्छा है भाई कि मैं काल्पनिक सुख के लिये प्रयत्न न करके प्रत्यक्ष सुख के ही निमित्त योग्य प्रयत्न करता हूँ। क्या स्त्रियों से अधिक आनंदप्रद अन्य कोई वस्तु इस संसार में नहीं है ? दूर क्यों जाँय, आप अपनी चित्रशाला की ही उपमा लें न ? देखिए, जब आप एकआध चित्र पर रंग करने के लिये बैठते हैं, तो उस कार्य में आप इतना आनंद प्राप्त करते हैं कि दीन-दुनिया की सुध भुला देते हैं। हाँ, ख़ूब याद आई ; भाई ! अपनी चित्रशाला तो मुझे एक बार दिखाओगे न ?"

"हाँ-हाँ ! अवश्य ही दिखाऊँगा; किंतु आप ध्यान रखिए कि विधाता की निर्माण की हुई सुंदर स्त्रियों की अपेक्षा मेरे चित्र अधिक आनंदप्रद कदापि नहीं हैं। और, फिर दिलारा-जैसी सर्वांग-सुंदरी ललना की प्रतिकृति खींचने का विचार तक मैं लाने में असमर्थ हूँ।"

"प्रेम-बाहुल्य के कारण ही न ? यह आपकी सभ्यता है कि आप अपने को उत्कृष्ट नहीं गिनते, आप तो कदाचित् विधाता की अपेक्षा भी कहीं अधिक सुंदर चित्र बना सकते हैं। मुझे तो आप बड़े ही कुशल चित्रकार प्रतीत होते हैं। आपकी इस समय की बातचीत सुनकर मैं आपकी चित्रशाला देखने के लिये और भी अधिक उत्सुक हो गया हूँ, और मेरी यह उत्सुकता क्षण-क्षण बढ़ती ही जा रही है। मैं स्वयं कोई चित्र-शिल्पी नहीं हूँ, किंतु मुझे चित्र देखने का बड़ा शौक़ है।"

"मैं कोई पेशेदार चित्र-शिल्पी नहीं हूँ, केवल अपने दिल-बहलाव के निमित्त ही व्यवसाय करता हूँ। मेरे चित्रों में देखने योग्य ऐसी कुछ विशेषता नहीं है।"

अमीरुद्दीन को यह भी कहने की कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि मैं उसकी चित्र-कला पहले ही से जानता था। अमीरुद्दीन कोई अच्छा चित्रकार न था, किंतु फिर भी मैं उसकी सिफ़ारिश किया करता था कि जिससे उसका धंधा चलता रहे। परंतु अब शहादतअलीख़ाँ के मर जाने से उसे रंग की कूचियाँ फेरने की कोई आवश्यकता ही न रह गई थी, क्योंकि उसका सभी ख़र्च दिलारा चलाती थी। अस्तु, मैंने अनुमान

से जान लिया कि अमीरुद्दीन की चित्रशाला अब धूल खा रही होगी। मैंने हँसते-हँसते अमीरुद्दीन से कहा—"आप चित्र-शिल्पी हैं; अस्तु, यद्यपि आप अलंकारों के मूल्य नहीं आँक सकते, किंतु यह तो आप अवश्य ही जान सकते हैं कि अमुक अलंकार की बनावट अच्छे तर्ज़ की है, अथवा उसमें कहीं छोटाई-बड़ाई का अंतर है, अथवा वह बेडौल है, इत्यादि-इत्यादि। जो अलंकार मैं आपके द्वारा दिलारा को भेंट करना चाहता हूँ, वे मैं आपको दिखाना चाहता हूँ; आप देखेंगे क्या ?"

मेरी बात सुनकर अमीरुद्दीन का चेहरा हर्ष से प्रफुल्लित हो उठा; वह झट उत्सुकता-पूर्वक बोल उठा—"हाँ-हाँ, अवश्य।"

"अच्छा, तो आप तनिक यहीं ठहरें, मैं अभी यहीं लिए आता हूँ।"

मैं उठकर अंदर गया, और वहाँ से चंदन की एक छोटी संदूक़ची उठा लाया। उस संदूक़ची पर बड़ा बारीक नक़्क़ाशी का काम था, जो देखने ही के योग्य था। संदूक़ची बहुत ही उत्तम चंदन की लकड़ी की बनी थी, इसलिये उससे सुगंध की लपटें निकल रही थीं। यह संदूक़ची अंदर की ओर मख़मल से मढ़ी थी, और उसमें एक रत्नहार, हीरा-जटित एक जोड़ चूड़ियाँ, एक शीशफूल और हीरे की एक अँगूठी, इतने अलंकार सजे रक्खे थे। मैंने वह संदूक़ची खोलकर अमीरुद्दीन के सामने सरका दी, और कहा—"देखिए साहब ! ये हैं वह अलंकार। मुझे तो शंका है कि दिलारा इन्हें पसंद भी करेगी या नहीं; "राजा के घर मोतियों की क्या थाह", दिलारा-जैसी श्रीमती स्त्री के यहाँ अलंकारों की क्या कमी, एक-से-एक बढ़कर अलंकार उसके पास होंगे। परंतु हाँ, यदि दिलारा इन अलंकारों की ओर न देखकर यह विचार करेगी कि यह अलंकार मेरे श्वशुर के एक प्रिय मित्र की ओर से भेंट में आए हैं, तो कदाचित् वह यह तुच्छ भेंट स्वीकार करके मुझ ग़रीब को कृतकृत्य करेगी ! देखिए; अच्छी तरह देखिए। आप तो दिलारा की प्रकृति से ख़ूब ही परिचित हैं। अस्तु, आप यह अवश्य ही समझ सकते हैं कि उसे यह अलंकार पसंद होंगे या नहीं।"

उन स्वप्नातीत बहुमूल्य अलंकारों को देखकर अमीरुद्दीन दंग रह गया, और उसके हर्ष का भी पार न रहा। कारण, मेरे कथनानुसार यह सभी अलंकार दिलारा को मिलनेवाले थे, और इसलिये एक प्रकार से वे अमीरुद्दीन की ही जेब में जाने को थे, इसलिये अपने इस भावी लाभ को देख अमीरुद्दीन मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हो रहा था। अलंकार देखते हुए अमीरुद्दीन बोला—"ऐसे अलंकार मैंने अब तक कहीं भी नहीं देखे। अवश्य ही इन अलंकारों से दिलारा को अत्यंत आनंद होगा।"

"मुझे तो शंका ही है, क्योंकि ऐसे अलंकार दिलारा के लिये कुछ नवीन नहीं हैं। हाँ, केवल इस बात से ही उसे आनंद हो, तो हो कि यह अलंकार अपने एक आप्त की ओर से भेंट मिल रहे हैं।"

"और फिर यह अलंकार यदि आप स्वयं ही जाकर अपने हाथों अर्पण करेंगे, तो उसे और भी अधिक आनंद होगा। ऐसे मूल्यवान् अलंकारों को भेंट करनेवाले हाथ भी वैसे ही मूल्यवान् होने चाहिए।"

"इसके लिये मैंने आपकी योजना की है। जिस हाथ की नाड़ियों में तरुणावस्था का रक्त बह रहा है, वही हाथ सुंदर स्त्रियों को अधिक पसंद होता है। हाँ, प्रतीत होता है कि मुझ वृद्ध का यह कथन आपको भी पसंद हुआ है।"

लज्जित होकर अमीरुद्दीन हँसता हुआ बोला—"आपका स्वभाव बड़ा ही विनोदी प्रतीत होता है। जो हो, मेरी तो यही इच्छा है कि यह अलंकार आप स्वयं ही अपने हाथों से दिलारा को अर्पण करें। आप उसके संबंधी हैं, फिर आपको उससे भेंट करने में असमंजस क्यों होना चाहिए।"

मैं यही जानना चाहता था कि अमीरुद्दीन का यह आग्रह अधिकाधिक क्यों होता जा रहा है, और मेरी यह योजना सफलीभूत भी हुई। मित्रो! किसी बाला पर यदि किसी पुरुष का प्रेम हो, तो वह किसी अन्य पुरुष को उस तरुणी के पास कभी न ले जायगा, क्योंकि प्रेमी हृदय में इससे सहज ही वैषम्य उत्पन्न हो आया करता है, परंतु एक बात तो यह कि मैंने

तरुणी और रसिक स्त्रियों के संबंध में अमीरुद्दीन से बात-बात में ख़ूब ही अपनी अरसिकता एवं अनिच्छा और कदाचित् एक प्रकार का तिरस्कार भी दिखलाया था। दूसरी बात यह कि अमीरुद्दीन को यह विश्वास हो गया था कि इस भोले वृद्ध नवाब पीरबख़्श से दिलारा का परिचय हो जाने पर सदा लाभ की ही आशा है। अस्तु, इन्हीं दो कारणों से अमीरुद्दीन मुझे दिलारा के पास ले जाना चाहता था। अमीरुद्दीन का पक्का विचार था कि एक संबंधी की दृष्टि से दिलारा इस मुर्शिदाबादवाले नवाब से ख़ूब मेल-जोल बढ़ा ले, और फिर मौक़ा पाकर इस नवाब साहब की ख़ूब ही उलटे छुरे से हजामत बनाई जाय, और जब नवाब साहब की स्थिति 'कौड़ी के तीन-तीन' वाली हो जाय, तब एक लात जमाकर निकाल बाहर किए जायँ। किंतु मित्रो ! अमीरुद्दीन को क्या पता था कि यह नवाब पीरबख़्श उसी शहादतअलीख़ाँ का मुजस्सिम भूत है, जो अपनी कीर्ति, धन-संपत्ति और सर्वस्व, यहाँ तक कि अपना जीव तक गँवा बैठा है, और अब अपना वैर भँजाने के लिये यह सब जाल फैला रहा है। इन सब बातों का मन-ही-मन विचार करके मैं अमीरुद्दीन से बोला—"दोस्त ! आप जानते हैं कि जब से मैं दिल्ली आया, रात-दिन अपने उद्योग-धंधे में ही फँसा रहता हूँ, और तनिक भी अवकाश नहीं पाता। हाँ, यदि यहाँ कुछ अच्छा सौदा हो गया, तो फिर मुझे आवश्यकतानुसार अवकाश मिल जायगा। हाँ, आजकल रात्रि-समय थोड़ी-बहुत फ़ुर्सत मिल जाया करती है; किंतु मैं रात-बिरात दिलारा के यहाँ जाना पसंद नहीं करता, और न यह बात उसे पसंद आएगी। अस्तु, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि कृपा कर आप मुझे वहाँ बुलाने का प्रयत्न न करें, और न इसके लिये मुझसे आप विशेष आग्रह ही करें। आप मेरी ओर से यह अलंकार दिलारा को भेंट करने का कष्ट स्वीकार करें, और मुझे वहाँ ले चलने के लिये बाध्य न करें। हाँ, जब मुझे कुछ अवकाश हो जायगा, तब मैं दिलारा से एक बार अवश्य मिल लूँगा। मुझ ग़रीब की यह भेंट दिलारा को पसंद आई या नहीं, सो कृपा कर मुझे अवश्य ही बतलाइएगा।"

इस प्रकार कहकर मैंने वह संदूक़ची अमीरुद्दीन के हाथ में दे दी। उस समय अमीरुद्दीन को भारी आनंद हुआ, किंतु वह उस आनंद-प्रवाह को भीतर-ही-भीतर दबाने का प्रयत्न करने लगा, फिर भी आनंद की रेखाएँ उसके मुख-मंडल पर स्पष्ट प्रकट हो गईं। वह बोला—"यदि ये अलंकार दिलारा को आपके हाथ से मिले होते, तो उसे बड़ा आनंद होता। यदि उसके कृतज्ञता-प्रकाशक चार बोल भी आपके कान पड़ जाते, तो उसे बड़ा समाधान होता।"

"यह ठीक है, किंतु वह बेचारी इस समय अपने पति-वियोग के दुःख से दुःखित है। अस्तु, ऐसे समय मेरा वहाँ जाना मुझे प्रशस्त प्रतीत नहीं होता। आपके द्वारा अभी मेरा यह थोड़ा-सा परिचय उसे हो ही जायगा; फिर आगे प्रत्यक्ष परिचय का भी समय आवेगा। सच पूछिए, तो इस समय मुझे उसके मकान पर जाना अच्छा नहीं लगता। मेरा परमप्रिय बंधु मरा, फिर उसका प्रिय पुत्र शहादत भी चल बसा; इस कारण मुझे उस मकान में जाकर अधिक संताप ही होगा, और क्या? अब केवल दिलारा ही उस मकान में रह गई है, सो वह बेचारी शोक-संतप्ता होगी। मैं यह भी तो नहीं जानता कि उसकी शोक-सांत्वना कैसे करूँ। अस्तु, आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप कृपा करके ये अलंकार ले जायँ, और मेरी ओर से उसे भेंट कर दें। हाँ, मेरी ओर से सहानुभूति प्रकट करना न भूलिएगा। उसे समझा दीजिएगा कि उसके दुःख को मैं अपना ही दुःख समझता हूँ। भला, दिलारा मेरी कोई ग़ैर थोड़े ही है। अमीरुद्दीन! मुझे फिर वही बात पूछनी पड़ती है; भला सच तो कहो कि दिलारा इन अलंकारों को पसंद भी करेगी या नहीं?"

"अजी, आप यह क्या फ़र्माते हैं साहब! सच पूछिए, तो अनायास ही ऐसा प्रसंग जुड़ा है, मानो यह अलंकार दिलारा की ख़ास फ़र्मायश के मुताबिक़ ही बनवाए गए हों; ऐसे प्रतीत होते हैं। वाह! यह आप अच्छी तरह जानते हैं कि सुंदर स्त्री को कौन-सा और कैसा अलंकार शोभा देता है।"

"दोस्त ! तुम्हारे इस सौंदर्य को मैं तराज़ू में कैसे तौलूँ; यह विद्या न तो मुझे साध्य थी, न है, और न होगी ! जो हो; इस सौंदर्य और प्रेम का पचड़ा मेरी समझ में तो नहीं आता, और न आ सकता है। हाँ, अब मैं ज़रा बाहर जाऊँगा; एक सरदार को कुछ जवाहरात दिखाने हैं।"

"अच्छा, तो मुझे रुख़सत दीजिए। सलाम ! मैं संध्या-समय आप के पास अवश्य आऊँगा। और दिलारा के कृतज्ञता-सूचक वाक्य आपको सुना जाऊँगा।" इस प्रकार कहते हुए अमीरुद्दीन ख़ुशी-ख़ुशी मेरे पास से बिदा हो गया। अमीरुद्दीन ! अमीरुद्दीन ! तू प्रसन्न है कि बहुमूल्य अलंकार हाथ लग गए; किंतु बेवक़ूफ़ ! तुझे यह तो सोचना ही चाहिए था कि आख़िर इसमें क्या रहस्य है, जो यह नवाब पीरबख़्श इतने बहुमूल्य अलंकार अकारण ही इस प्रकार बहाए दे रहा है। अरे, कहाँ गई तेरी वह अक़्ल, जिसके ज़ोर से तूने शहादतअलीख़ाँ को अपने फंदे में फाँस रक्खा था ? सँभलना रे शैतान ! अब मेरा जाल बिछ चुका। रे स्वार्थी ! धन-लोलुप ! कामांध ! तेरे-जैसे को प्रतिदंड देने में कितनी देर लगती है ! अब तू और वह पिशाचिनी दिलारा, दोनो ही शीघ्र इस जाल में फँसने को हैं। वाह-वाह ! शहादतअलीख़ाँ के भूत नवाब पीर-बख़्श ! वाह-वाह ! ख़ूब किया, एक ही तीर में दो शिकार !

इसके उपरांत तीन-चार दिन तक मैं जान-बूझकर अमीरुद्दीन से नहीं मिला। मैं जानता ही था कि जब वे अलंकार दिलारा को मिलेंगे, तब दिलारा और अमीरुद्दीन के बीच अवश्य ही कुछ परामर्श होगा, और उसके अनुसार कार्य करने के लिये अमीरुद्दीन की उत्सुकता बढ़ेगी। अस्तु, ऐसे समय दो-चार दिन की टालमटोल करना ही मैंने उचित समझा। इसमें मैंने दो लाभ तो अवश्य ही अनुमान किए, एक तो यह कि उन दोनो की आतुरता और लोभनीय वृत्ति बढ़ जायगी। दूसरे यह कि उन दोनो को इस बात का विश्वास हो जायगा कि मैं स्त्रियों के विषय में कितना अधिक उदासीन हूँ। अस्तु, मैं जान-बूझकर चार दिन के लिये आगरे चला गया, और वहाँ के एक श्रीमान् को थोड़े-से जवाह-

शाल बेचकर दिल्ली लौट आया। मकान पर आते ही मुझसे नौकरों ने कहा कि मेरी अनुपस्थिति में अमीरुद्दीन दस-बारह बार मुझसे मिलने के लिये हो गया था। मैंने भी उसी दिन उससे मिलने का निश्चय किया। मैं जानता था कि संध्या-समय अमीरुद्दीन दिलारा के यहाँ नहीं जाया करता; किंतु फिर भी मैंने जान-बूझकर एक चिट्ठी में दिलारा के यहाँ अमीरुद्दीन के नाम यह लिख भेजा कि "आज सायंकाल मैं आपकी चित्रशाला देखने के लिये आऊँगा, और जो कुछ बातचीत होगी, सो भी वहीं करूँगा।" इसी आशय की एक चिट्ठी मैंने अमीरुद्दीन के घर भी भेज दी। मैं तो जानता ही था कि मैंने दिलारा से भेंट नहीं की, इसलिये स्वभावतः ही वह 'मानिनी' बन बैठी होगी। अस्तु, वह अवश्य ही मेरा शासन करने के लिये समय की प्रतीक्षा करती होगी। सभी लावण्यमयी युवती स्त्रियों का यह स्वाभाविक धर्म है, और फिर मैं जानता ही था कि दिलारा में तो यह गुण बहुत ही अधिकता से विद्यमान है, क्योंकि उसकी कोई भी प्रकृति मुझसे छिपी न थी। अस्तु, यही समय देने के लिये मैंने जान-बूझकर अमीरुद्दीन के नाम की वह चिट्ठी दिलारा के यहाँ भिजवाई थी। मुझे विश्वास था कि वह चिट्ठी देखकर दिलारा अवश्य सोचेगी। हाँ, पीरबख़्श आज अमीरुद्दीन के यहाँ जाने को है? अच्छा, ठीक है, तब तो मैं भी समय पर वहीं पहुँचूँ, और उस पर से अरसिकता का सारा भूत उतार दूँ।

संध्या को लगभग चार बजे के समय नवाब पीरबख़्श की सवारी शुभ्रवर्ण की जोड़ी जुती हुई गाड़ी में बैठकर अमीरुद्दीन के मकान के सामने आ खड़ी हुई। स्वागत करने के लिये स्वयं अमीरुद्दीन अपने दरवाज़े पर उपस्थित था। अमीरुद्दीन का मकान मेरे लिये कुछ नया न था। उसके घर का कोना-कोना मेरा देखा हुआ था, तथापि एक नए मनुष्य की नाईं मैं उसके मकान को इधर-उधर देखता हुआ और उसकी स्वच्छता की प्रशंसा करता हुआ अपने हाथ की लकड़ी पर थोड़ा बल देता हुआ अमीरुद्दीन के पीछे-पीछे चलने लगा। वास्तव में अमीरुद्दीन

अब बहुत ही कम अपने मकान में रहता था, अधिकतर समय उसका दिलारा ही के यहाँ व्यतीत होता था। इस कारण उसके मकान की स्थिति वैसी अच्छी न रह गई थी। उसका चित्रशालावाला कमरा जब मैंने देखा, तो तुरंत समझ गया कि न-जाने कितनी मुद्दत बाद हज़रत ने आज उसे साफ़ कराया है, और चित्रों पर चढ़ी हुई धूल भी आज ही प्रथम बार झाड़ी गई है। मैंने उसकी चित्रशाला में पूरे चित्र बहुत कम देखे, अधिकतर चित्र अधूरे ही पड़े थे; परंतु फिर भी मैंने उसके चित्रों की बड़ी प्रशंसा की, और कितने ही चित्र ख़रीद भी लिए। जो मूल्य उन चित्रों के उसने बताए, उनसे भी अधिक उसे देते हुए मैंने कहा—"यह मैं आपको आपके चित्रों का मूल्य नहीं दे रहा हूँ, वरन् आपकी क़लम पर लुब्ध होकर कुछ थोड़ा-बहुत दे रहा हूँ। इसे आप स्वीकार करके मुझे कृतज्ञ करें।"

ऊपर से 'नाहीं-नाहीं' करते हुए अमीरुद्दीन ने वह रक़म ले ली, और मन-ही-मन घर बैठे अच्छी रक़म पा जाने के लिये अत्यंत प्रसन्न हुआ। फिर वह मुझसे बोला—"आप ज़रा आराम से बैठें। मैंने थोड़े-से उपहार की व्यवस्था की है, सो आप कृपा कर मुझ ग़रीब की मीठी रोटी स्वीकार करके मुझे कृतकृत्य करें।"

मैं एक कोच पर बैठकर हँसता हुआ बोला—"वाह, भाई! चित्र-शिल्पी बड़े सभ्य होते हैं कि चित्र-के-चित्र दें, और फिर खाना भी खिलावें।"

अमीरुद्दीन ने उत्तर में केवल तनिक हँस दिया, और तुरंत ही भोजन लाकर मेरे सामने रक्खा। कहना न होगा कि भोजन के साथ ऊँची श्रेणी की मद्य भी तैयार थी। अमीरुद्दीन आज विशेष उत्साहित था, इसलिये जाम पर जाम उड़ा रहा था। मैं उसके कितने ही चित्रों पर दृष्टि डालता हुआ बोला—"इन चित्रों में से बहुतों के चेहरे आपके चेहरे से मिलते हैं। और आप ही-जैसे सुंदर हैं। मालूम होता है कि सौंदर्य और चित्र-कला का परस्पर बड़ा संबंध है। मेरी धारणा है, जो मनुष्य सुंदर

होते हैं, वे ही अच्छे चित्रकार बन सकते हैं, अन्य नहीं। क्यों साहब! ठीक है न मेरा ख़याल ?"

अमीरुद्दीन बोला—"आप अकारण ही मेरी प्रशंसा करते हैं। इस संसार में मुझसे भी अधिक सुंदर अनेकानेक मनुष्य हैं। आप ही अपना उदाहरण लीजिए न? सचमुच ही नवाब साहब का मुख-मंडल बड़ा चित्ताकर्षक है। वाह-वाह! सौंदर्य इसी का नाम है। हाँ, ठीक याद आई। आपके आज्ञानुसार मैंने आपके वे अलंकार दिलारा को भेंट कर दिए हैं।"

"मेरी आज्ञा! वाह साहब! यह ख़ूब कही आपने। अजी जनाब! मैं तो इसके लिये आपका उपकारी हूँ कि आपने कृपा करके मुझे दिलारा के श्वशुर के उपकार-ऋण से अंशतः मुक्त कर दिया है। शहादतअली पर भी मेरा बड़ा स्नेह था। उसकी स्त्री को दो-चार अलंकार मैंने अर्पण किए, तो क्या बड़ी बात की।"

"दिलारा ने जब आपकी भेजी हुई वह संदूक़ची खोलकर देखी, तो बड़ी प्रसन्न हुई, और उसे आश्चर्य भी बहुत हुआ। वह बोल उठी—"आज तक मैंने ऐसे उत्कृष्ट अलंकार कभी देखे ही न थे जिन्होंने कृपा करके ये अलंकार भेंट में भेजे हैं, उनसे मैं समक्ष मिलकर उनका उपकार मानना चाहती हूँ।"

"यह उसकी सज्जनता है; किंतु उसे उपकार मानने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि मेरा यह कार्य उसके उपकार मानने योग्य है ही नहीं। मुझे चाहिए कि और बहुत कुछ भेंट दिलारा को भेजूँ।"

मेरा अंतिम वाक्य सुनकर अमीरुद्दीन को सहज ही बड़ी प्रसन्नता हुई, किंतु इतने ही में अचानक उसका मुख-मंडल लाल हो गया, और वह खिड़की से रास्ते की ओर देखने लग गया। सामने से दो घोड़े जुती हुई और बुरक़े से ढकी हुई एक गाड़ी आती हुई दृष्टि पड़ी। इस गाड़ी को देखते ही अमीरुद्दीन का चेहरा चामत्कारिक रूप से लाल बन गया था। मैं भी इस गाड़ी को पहचान गया, और यह भी जान गया

कि गाड़ी में कौन आ रहा है। मैंने अमीरुद्दीन से पूछा—"मालूम होता है कि आप किसी की बाट देख रहे हैं; क्या कोई चित्रशाला देखने को आनेवाला है ?"

"हाँ, एक बेगम साहबा आज अवश्य ही आने को हैं; किंतु उनके यहाँ आए बिना नहीं कहा जा सकता कि यह वही बेगम साहबा हैं या कोई और। माफ़ कीजिएगा, साहब! ज़रा मैं नीचे जाकर उनका स्वागत कर लाऊँ, आप खाना बंद न कीजिएगा।"

मैं तो जान ही गया था कि गाड़ी में कौन आ रहा है। मैं बोला—"मुझे अब भूख नहीं है। आप कृपा कर आज्ञा दीजिए कि अब मैं घर जाऊँ।"

अमीरुद्दीन मुझे कुछ उत्तर देकर जब तक नीचे जाय कि इतने ही में पाँव का शब्द सुनाई दिया, और स्वयं दिलारा ही चित्रशाला में आ पहुँची। इस समय मेरी और अमीरुद्दीन, दोनो ही की स्थिति बड़ी चामत्कारिक हो गई। मैंने तो अभ्यास कर लिया था कि कोई भी हृदय का विकार अपने मुख-मंडल पर यथार्थ प्रकट न होने देता था; परंतु अमीरुद्दीन को इसकी कुछ आवश्यकता अब तक न पड़ी थी, इसलिये उसके मनोविकारों ने उसके चेहरे पर प्रकट होकर सारे मुँह को लाल बना दिया। मैंने अपने भाव मन के मन ही में रक्खे, और चेहरे पर प्रकट न होने देने के लिये बड़ा उद्योग किया। अस्तु, मेरे अंतःकरण में उस समय बड़ी खलबलाहट मच रही थी, मारे संताप के मेरा ख़ून उबल रहा था। मेरे बहुत उद्योग करने पर भी मारे क्रोध और संताप के मेरे माथे पर पसीने की बूँदें झलक आईं। मैंने तुरंत ही रूमाल की सहायता ली, और इस प्रकार से चेहरे का अन्य भाव बदल दिया। फिर मैं अपनी श्वेत दाढ़ी पर बार-बार हाथ फेरता हुआ चित्रों का निरीक्षण करने लगा। दिलारा का चित्रशाला में इस समय आना अमीरुद्दीन को अच्छा न लगा; परंतु अब वह करता ही क्या ? आख़िर झख मारकर वह दिलारा के सामने पहुँचा, और झुककर अदब से 'आइए बेगम साहबा! तशरीफ़ लाइए !!'

इत्यादि कहकर उसका स्वागत करने लगा। दिलारा का मुख-मंडल स्वभावतः ही अत्यंत रमणीय था, फिर उस समय उसने सूतक के कारण स्वच्छ श्वेत वस्त्र धारण कर रक्खे थे, इसलिये सफ़ेद पोशाक में दिलारा और भी अनुपम सुंदरी जँच रही थी। दिलारा ने अपने मुँह पर नाम-मात्र को ही एक अत्यंत झीना जालीदार बुरक़ा डाल रक्खा था। जैसे ही दिलारा ने मेरी ओर देखा, क्षण-मात्र के लिये मैं अपना सभी क्रोध-संताप भूलकर मोह-ग्रस्त बन गया; किंतु तत्काल ही मैंने अपने को सँभाला, और अपना निग्रह दृढ़ करके शांत-वृत्ति से इधर-उधर घूम-घूमकर चित्रशाला में सजे हुए चित्र देखने लगा। मैं सुंदर स्त्रियों के संबंध में कितना अधिक उदासीन हूँ, यह अमीरुद्दीन ने दिलारा को पहले ही से सुना रक्खा था; किंतु अब उसे प्रत्यक्ष ही वैसा अनुभव मिला, इसलिये दिलारा का मान सहज ही बढ़ा। अपनी कटि को बल देती हुई लचक चाल चलकर दिलारा मेरे सामने आ खड़ी हुई, और मुँह से बुर्क़ा हटाकर उसने अपनी सर्वविजयी हास्यमय दृष्टि मुझ पर फेंकी। फिर सहज ही विनीत भाव दर्शाकर हँसती हुई अपने वीणा-विनिंदित स्वर में बोली—"मुर्शिदाबाद के नवाब पीरबख़्श साहब की सवारी है क्या? वाह-वाह! मेरे बड़े भाग्य हैं, जो नवाब साहब से इस प्रकार अकस्मात् ही यहाँ भेंट हो गई!"

मुझे दिलारा को कुछ प्रत्युत्तर अवश्य ही देना चाहिए था; किंतु उत्तर मैं दूँ, तो कैसे? मेरे मुख से तो उस समय कोई शब्द ही न निकलता था। मारे क्रोध के मेरा कंठ रुँध रहा था। यदि उस समय बाघ की नाईं मेरे नख और दाँत होते, तो मैं झपटकर दिलारा पर टूट पड़ता, और उसका हृदय चीरकर सारा विष बहा देता। मैंने अपना क्रोधावेग रोकने के लिये बड़ा प्रयत्न किया; किंतु सब निष्फल हुआ। मेरे मुँह से कोई शब्द न निकला। मुझे स्तब्ध देखकर दिलारा फिर बोली—"मैं आप ही के कुटुंब की हूँ, और आपकी कुलवधू हूँ। फिर मुझे परकीया समझने का कोई कारण नहीं। आपके सौजन्य की प्रशंसा मैं अमीरुद्दीन के मुँह से सुन चुकी हूँ। आपके भेजे हुए अलंकार बड़े ही उत्कृष्ट हैं, सचमुच ऐसे

उत्तम पानीदार मोती और तेजस्वी हीरे मैंने पहले कभी न देखे थे; अलंकारों की बनावट भी बड़ी मनोहर है। केवल मेरे ही ऊपर नहीं, वरन् मेरे सारे कुटुंब पर आपने जो प्रेम व्यक्त किया है, उसके लिये मैं सच्चे हृदय से आपकी कृतज्ञ हूँ।"

मीठा—शक्कर-सा मीठा भाषण करके दिलारा ने अपना कोमल, सुडौल और गोरा-गोरा हाथ आगे बढ़ाया, उसके हाथों में उस समय मेरी भेजी हुई बंगलियों की जोड़ी शोभा पा रही थी। पिशाचिनी दिलारा का अपवित्र हाथ कदापि स्पर्श योग्य न था; परंतु क्या करता, अपना परिवर्तित वेष सार्थक करने के लिये मुझे उसका हाथ अपने हाथों में लेना ही पड़ा। उसके कोमल हाथ से एक प्रकार की अद्भुत विद्युत्-शक्ति निकल-निकलकर मेरे हाथों द्वारा मेरे सारे शरीर में प्रवेश करने लगी, जिसके कारण मेरे प्राण विकल होने लगे। मेरे मन में अनेकानेक पूर्व स्मृतियाँ उदय होने लगीं—जिस दिलारा को मैंने अपने हृदय में अत्यंत उच्च स्थान दिया था, जिस दिलारा पर मैंने अपना पूर्ण विश्वास रक्खा था, और जिस दिलारा के अतिरिक्त मुझे कुछ भी सुखकर प्रतीत नहीं होता था, वही दिलारा ऐसी कृतघ्न निकली! जिस दिलारा को मैं अमृत-घट समझकर प्राणाधिका मानता था, वही दिलारा गरल-बेलि निकली! हाय!! यही सब सोच-सोचकर मेरा मन विलक्षण प्रकार से उद्विग्न था। मित्रो! सहनशीलता की तो हद हो चुकी थी; किंतु मैंने बड़े प्रयास से अपने सभी भाव छिपाए, और फिर धीरे से हँसकर बोला—"नहीं दिलारा! कृतज्ञ तू नहीं, मैं हूँ। ऐसी शोक-संतप्त स्थिति में भी तुमने मेरे क्षुद्र अलंकार स्वीकार किए, इसके लिये मैं अपने को तुम्हारा कृतज्ञ समझता हूँ। यदि आज को तेरा पति शहादतअलीख़ाँ जीवित होता, तो यह अलंकार तुझे उसी के हाथ भेंट मिलते, और इस कारण तुझे विशेष आनंद होता। ख़ैर, ख़ुदा की मर्ज़ी! उसके आगे किसी का क्या चारा है।"

मेरे मुँह से मृत पति का नाम सुनते ही दिलारा का सिर नीचे

झुक गया, और उसके मुख-मंडल का उत्साह भी कुछ कम हो गया। एक विलक्षण प्रकार से दिलारा ने अपना हाथ मेरे हाथों से छुटा लिया, और खिन्न होकर पास ही पड़े हुए एक कोच पर बैठ गई। मैं उसके सामने ज्यों-का-त्यों खड़ा रहा; किंतु अमीरुद्दीन उस समय वहाँ न था। वह हम दोनो के सत्कार के लिये उपहार की कुछ और वस्तुएँ लाने के लिये वहाँ से चला गया था। जब वह लौटकर चित्रशाला में आया, तो उसने दिलारा को खिन्न मन किए हुए कोच पर बैठी पाया, और मुझे उसके सामने ही खड़ा देखा। यह दृश्य उसे कुछ असह्य-सा प्रतीत हुआ; किंतु कर ही क्या सकता था। एक कृत्रिम हास्यकारक स्वर से बोला—"क्यों नवाब साहब! दिलारा ने किस युक्ति से आपसे भेंट की? आप तो उससे मिलना ही न चाहते थे न? किंतु उसने कैसी युक्ति से आपसे मुलाक़ात की, और आपका उपकार भी माना। जनाब! ऐसी कुलवधुएँ उभय कुल का उद्धार करती हैं। उसके इस सभ्य और शील आचरण से नवाब साहब को ख़ुशी तो हुई?"

मैंने गंभीर होकर कहा—"अमीरुद्दीन! यह अच्छा ही हुआ कि मैं आपकी चित्रशाला देखने आया। कारण, यहाँ आने से मुझे दिलारा के दर्शन तो हुए। सचमुच अमीरुद्दीन! मैं दिलारा के सौंदर्य, आचरण और सभ्यता से अत्यंत ही प्रसन्न हुआ हूँ। मुझे तो यह कल्पना ही न थी कि मेरे मित्र को ऐसी सद्गुणी पुत्र-वधू मिली होगी। सचमुच ही शहादतअलीख़ाँ बड़ा ही भाग्यवान् था; किंतु शोक है कि बेचारा बहुत दिन न जिया! दिलारा! मैं तेरा बड़ा निकट-संबंधी हूँ, तू मुझे कोई ग़ैर न समझ; तेरे ऊपर जो आपत्ति आ पड़ी है, उसमें मैं भी तेरा हिस्सेदार हूँ।"

दिलारा किसी से भी कुछ न बोली। शून्य दृष्टि से आकाश की ओर देखकर उसने एक निःश्वास परित्याग की, और फिर स्वयं ही बड़बड़ा उठी—"प्यारे शहादत! तुम अब कहाँ हो? बहिश्त में हो? चाहे कहीं हो, किंतु अपनी इस दासी पर कृपा-दृष्टि रखना!" ये शब्द कहते हुए दिलारा का कंठ भर आया, उसके चेहरे पर उदासीनता छा गई। मुख-

मंडल के भाव बदलने में उसकी यह क्षमता देखकर मैं आश्चर्य से दंग रह गया। फिर दिलारा आँसू पोंछती हुई बोली—"आहा ! आज के दिन जो वह जीते होते और आपका आदरातिथ्य करते, तो आपको बड़ा आनंद होता। न-जाने मेरे इस भाग्य में क्या बदा है ? केवल एक क्षण में ही वह चल बसे, और मुझे वैधव्य में फँसा गए ! हाय ! हाय !! एक स्वप्न की नाईं कुछ-का-कुछ हो गया ! अहा ! कैसे प्रेमालु थे !"

शाबाश, दिलारा ! शाबाश। पति पर के पोले प्रेम की नाट्य-छटा तो तूने ख़ूब ही एक कुशल नटी की नाईं कर दिखाई। किंतु ध्यान रखना, यह प्रेक्षक फँसनेवाला नहीं है। मैं ख़ूब जानता हूँ कि जिस कंठ से अभी रुदन का आर्तनाद निकल रहा है, वही कंठ निमिषार्ध में हर्ष की तरंगें बहाने के लिये तैयार है। जिन नेत्रों से अभी दुःखाश्रु निकल-निकल तेरे कपोलों को भिगो रहे हैं, वही नेत्र इन अश्रु-धाराओं के सूखते-न-सूखते कामुकों के हृदय बिद्ध कर डालने के लिये तत्पर हैं। जो अंतःकरण अभी दुःख की निःश्वासें परित्याग कर रहा है, वही अंतःकरण वस्तुतः पर-पुरुष के आलिंगन के लिये आतुर हो रहा है। हाय ! हाय ! स्त्री है कि शैतान की ख़ाला ! दिलारा ! ओ पिशाचिनी दिलारा ! समझ ले, और अच्छी तरह समझ ले कि पीरबख़्श ऐसा भोला नहीं है, जो तेरे छू-मंतर में फँस जाय। उसका भोलापन कभी का रफ़ूचक्कर हो गया है, और अनुभव की कड़ुवी-से-कड़ुवी एवं ज़हरीली मात्रा ने उसे सदा के लिये सावधान कर दिया है। शहादतअलीख़ाँ तेरे जाल में फँसने के लिये पीरबख़्श बनकर नहीं जिया है, वरन् दूसरों को अपने जाल में फँसाने के लिये जीवित हुआ है। इसी से कहता हूँ कि दिलारा ! तेरी यह नाट्य-भूमिका व्यर्थ है। सावधान रह, नर-पिशाचिनी ! सावधान रह। देख, शहादत का मुजस्सिम भूत पीरबख़्श अपना जाल बिछा चुका, और तुम दोनो के पापी हृदय उस जाल में अब फँस भी चुके। मेरे हृदय में यह विचार-तरंगें बड़े ही वेग से उठ रही थीं, साथ ही मैं अमीरुद्दीन के चेहरे का उतार-चढ़ाव भी भली भाँति देख रहा था। दिलारा की यह

नाट्य-भूमिका देखकर अमीरुद्दीन का चेहरा सचमुच देखने ही योग्य विलक्षण बन गया था। दिलारा की आँखों से शहादतअली के लिये आँसू की एक बूँद भी निकलना उसे असह्य थी। कारण, वह इसमें अपना घोर अपमान समझता था। अरे वाह रे मूर्ख ! अबे उल्लू के पट्ठे ! जिस दिलारा ने अपने ब्याहता ख़सम शहादत को भी फँसाने में कोई कसर न रक्खी, और ऐसा भारी विश्वासघात किया, वह दिलारा समय आने पर क्या तेरे साथ कुछ उठा रक्खेगी ? क्या वह तेरे साथ विश्वासघात न करेगी ? अरे बेवक़ूफ़ ! वह तेरी जान तक ले लेने में उफ़ न करेगी। अरे, तुझे इन सब बातों का कुछ भी तो विचार करना चाहिए था; मगर तू करे भी, तो क्या ? तू ठहरा पल्ले सिरे का रसिया, और फिर तेरे सारे ही विचार हैं काव्यमय। तिस पर ख़ुदा की मार कि तू प्रेम-मदिरा में उन्मत्त बना हुआ है। तब यदि दिलारा की यह नाट्य-छटा तुझे दुःसह प्रतीत हुई, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ? अब तक मैं और अमीरुद्दीन दोनो ही खड़े थे। दिलारा जिस कोच पर बैठी थी, उसी कोच पर बैठने के लिये उसने मुझे इशारा किया, और मेरे योग्य कोच पर जगह भी कर दी। इस समय दिलारा उस कोच के एक कोने पर सरककर इस भाव से बैठी थी कि मानो सभ्यता और विनय की साक्षात् मूर्ति ही हो ! दिलारा की इस हरकत से अमीरुद्दीन का संताप और भी अत्यधिक बढ़ गया; किंतु बेचारा कर ही क्या सकता था। अब अमीरुद्दीन ने हम दोनो के सामने एक तिपाई बिछा दी, और उस पर उपहार की सामग्री सजा दी। फिर आप स्वयं भी एक कुरसी सरकाकर हम दोनो के पास ही बैठ गया। मैंने अमीरुद्दीन को कुढ़ाने के ही लिये जान-बूझकर दिलारा पर एक प्रेम-पूर्ण दृष्टि डाली, और फिर सहानुभूति दिखाता हुआ बोला—"सचमुच, दिलारा ! तेरे ऊपर दुःख का पहाड़ ही टूट पड़ा है, और तेरे संकट की कोई सीमा ही नहीं है; परंतु दिलारा ! भाग्य का लिखा मिटता नहीं है। जो होनहार थी, सो हुई, अब शोक करना वृथा है। दिलारा ! देख, ईश्वर ने तुझे धन-संपत्ति से ख़ूब माना है, शहादत ने तुझे हर प्रकार से

आसूदा छोड़ा है, फिर तू चिंतातुर क्यों होती है ? देख दिलारा ! मेरी कही मान, और अपना यौवन एवं अप्सरा-तुल्य उत्कृष्ट सौंदर्य रो-रोकर बर्बाद न कर। तेरे रो-रोकर मर जाने से भी शहादतअलीख़ाँ अब वापस नहीं आ सकता; इसलिये मैं कहता हूँ कि तू धीरज धर। जो एक दिन अवश्य ही होने को था, सो हुआ, फिर तू सयानी होकर दीवानी क्यों बनती है, और क्यों व्यर्थ ही अपनी जान हलकान करती है ? देख दिलारा ! ख़ुदा के लिये तू अपने अनुपम सौंदर्य को न बिगाड़।"

मैं जानता था कि दिलारा को अपने सौंदर्य का बड़ा ही अभिमान है। वह अपने सौंदर्य की प्रशंसा सुनते ही प्रसन्न हो जाया करती थी। इस समय भी वही हुआ। मेरी उपर्युक्त बात सुनते ही उसकी आँखों से निकलती हुई अविरल अश्रु-धार तत्काल बंद हो गई, और उसके नेत्र कटाक्षपात करने के लिये उतावले होने लगे। उसके मुख-मंडल पर से करुणा के भाव हवा हो गए, और हास्य की छटा सारे मुख-मंडल पर छा गई। फिर शरमाती हुई मुझसे बोली—"सचमुच आपका अंतःकरण बड़ा ही उदार प्रतीत होता है। आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। अब मुझे विश्वास हो गया है कि जैसी कृपा आप मेरे श्वशुर और पति पर करते थे, वैसी ही कृपा-दृष्टि आप मुझ पर भी रखते हैं; किंतु फिर भी जान पड़ता है कि आप मुझसे कुछ क्रुद्ध हैं। कारण, मैंने सुना है कि आपने मेरे घर पर न जाने का निश्चय किया है।"

अमीरुद्दीन नाहित की नाईं जुदा पड़ गया था, इसलिये उसे कुछ बुरा लग रहा था। बहुत देर में उसे अब कुछ बोलने का मौक़ा हाथ लगा। अस्तु, अपनी डेढ़ टाँग अड़ा ही बैठा; बोला—"नहीं-नहीं, यह बात नहीं है। असल में नवाब साहब को स्त्रियों के साथ बैठना या बात-चीत करना पसंद नहीं है। सच पूछिए, तो नवाब साहब स्त्रियों से झेंपते हैं। और—"

अमीरुद्दीन कुछ और कहना चाहता था, किंतु मैं बीच ही में बात काटकर कुछ उत्तेजित स्वर में बोल उठा—"हाँ, अमीरुद्दीन साहब ! जो

कुछ आप फ़र्माते हैं, सो ही ठीक है। उठते-बैठते, बात-बात में, ज़रा-ज़रा में स्त्रियों के बीच जा घुसना और उन्हीं के साथ बातें मठोलते रहना, मुझे ही अकेले को क्यों, किसी भी पुरुष को पसंद नहीं होने का। परंतु जनाब ! यह नियम सभी जगहों के लिये और सभी समयों पर एक-सा लागू नहीं हो सकता। दिलारा मेरे लिये कोई परकीया नहीं है। अस्तु, उसके घर जाने में मुझे कोई भी आपत्ति नहीं है। अब यह भी मैं जान गया कि दिलारा का स्वभाव वस्तुतः बड़ा ही सरस है, इसलिये दिलारा का आमंत्रण स्वीकार करने में मुझे संतोष ही होगा। ऐसी सौजन्ययुक्ता, सौंदर्य-संपन्ना एवं लावण्यमयी बाला जिस घर में वास करती है, उस घर में अतिथि होने का सम्मान बड़े भाग्य से बिरलों को ही प्राप्त होता है।"

मेरे ये शब्द सुनकर अमीरुद्दीन जितना अधिक लज्जित हुआ, दिलारा उतनी ही अधिक प्रसन्न हुई, और हँसते हुए बोली—"ओह ! अमीरुद्दीन ने मुझसे कुछ और ही कहा था। वाह ! आपको अरसिक कौन कहता है ? स्त्रियों का मान-मर्तबा रखना आप ख़ूब जानते हैं। मेरा घर काहे को, वह तो आप ही का मकान है। आप कल उपहार के लिये मेरे ग़रीबख़ाने पर ज़रूर ही तशरीफ़ लाइए। अमीरुद्दीन ! तू भी— ओह ! अमीरुद्दीन साहब ! आप भी नवाब साहब के साथ तशरीफ़ लाइएगा। नवाब साहब का आदर-सत्कार वहाँ पर आप ही को करना होगा।"

अमीरुद्दीन निरुत्सुक एवं व्यंग्य स्वर में बोला—"हाँ-हाँ, नवाब साहब के आदरातिथ्य से कौन पीछे हटता है ? मैंने भी नवाब साहब से यही प्रार्थना की थी; किंतु उस समय नवाब साहब ने मेरी प्रार्थना स्वीकार न की थी। अब इस सुंदर मुख-मंडल को देखकर और मधुर कंठ से शक्कर-जैसे मीठे शब्द निकलते हुए सुनकर नवाब साहब राज़ी हो गए, और बिना कुछ आनाकानी किए निमंत्रण स्वीकार कर लिया है।"

अमीरुद्दीन की ओर किंचित् रोष-भाव से देखती हुई दिलारा बोली—

"इसमें आपने क्या बहुत अधिक देखा ? अजी साहब ! सृष्टि के आरंभ से ही स्त्रियाँ पुरुषों पर विजय प्राप्त करती आई हैं। जनाब ! स्त्रियों के सौंदर्य में यदि इतनी भी सामर्थ्य न हो, तो फिर यह सौंदर्य ही किस काम का ? क्यों नवाब साहब ! मेरे इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति तो नहीं है ?" इस प्रकार कहते हुए दिलारा ने एक विलक्षण प्रकार से मुझ पर दृष्टि फेकी, फिर उपहास-सूचक दृष्टि से अमीरुद्दीन की ओर देखकर मेरे सम्मुख ही हँसती हुई मेरा चेहरा देखने लगी। मैंने कहा—"दिलारा ! तेरा ही कथन यथार्थ प्रतीत होता है; परंतु इस विषय में मेरे मत का कोई भी मूल्य नहीं; कारण कि स्त्रियों के संबंध में मैं बड़ा ही अनभिज्ञ हूँ। मुझे इसका कोई भी अनुभव नहीं है कि सुंदर स्त्रियाँ अपने पतियों को 'लकड़ी के भर बंदरी' की नाईं किस प्रकार केवल अपनी एक सुकोमल उँगली के ही सहारे नचाया करती हैं; तथापि इस समय मुझे विश्वास हो गया है कि स्त्रियाँ पुरुषों पर सहज ही विजय प्राप्त कर सकती हैं।"

दिलारा ने थोड़ा-सा उपहार ग्रहण किया, और फिर जाने के उद्देश्य से उठकर खड़ी हो गई। मैं और अमीरुद्दीन भी खड़े हो गए। मैं मुस्किराता हुआ बोला—"मालूम होता है कि यह घर जाने का प्रस्ताव है। बहुत ही थोड़े समय तक भेंट रही।"

दिलारा लजाती हुई, किंतु साथ ही हाव-भाव (नख़रे) से बोली—"बहुत समय तक भी रहेगी; किंतु यह सभी आप ही पर निर्भर है।" इस प्रकार कहते हुए दिलारा ने अपना कोमल हाथ आगे बढ़ाया। मैंने बड़े सत्कार से उसका हाथ अपने हाथ में लिया, और उसे अपने होठों के पास ले गया; फिर एक दृष्टि अमीरुद्दीन पर फेककर मैंने उसके सुकोमल पंजे का एक करारा चुंबन लिया। हाथ छोड़ते समय मैं बोला—"दिलारा ! तेरा सदा कल्याण रहे, यही इस वृद्ध की इच्छा है।" मेरा अंतिम वाक्य सुनकर दिलारा किंचित् आश्चर्ययुत हो बोली—"आप वृद्ध हैं ?"

"सो क्या पूछती हो ? देखती नहीं कि सारे बाल पककर श्वेत हो गए हैं, वृद्धावस्था की और क्या दूसरी निशानी चाहिए ? उमर पकने पर ही बाल पकते हैं।"

दिलारा आँखें नचाती हुई बोली—"चाहे आपके बाल पक गए हों, और चाहे आपकी उमर पकने पर आई हो; किंतु आपके चेहरे पर तो वृद्धावस्था के कोई लक्षण नहीं दीखते। ओहो ! जब इतनी आयु में भी आपका मुख-मंडल इतना अधिक मनोमोहक है, तब जवानी में तो आप, ख़ुदा जाने, क्या ग़ज़ब ढाते होंगे ? अब भी आपका चेहरा कैसा मोहक है, और आपके शरीर का गठाव तो, ख़ुदा क़सम, जवानों को भी मात करता है।" इस प्रकार कहकर दिलारा हँसती और अपनी कमर को बल देती हुई बड़े हाव-भाव के साथ चित्रशाला से बाहर निकली; चलते-चलते पीछे मुड़कर दृष्टिपात करती जाती थी। मैं और अमीरुद्दीन, दोनो ही, उसके पीछे हो लिए। उसकी गाड़ी दरवाज़े से लगी हुई ही खड़ी थी। जैसे ही हम लोग दरवाज़े के पास पहुँचे, कोचवान ने गाड़ी के बुर्क़े को सुव्यवस्थित कर दिया, और बाज़ू का परदा उसने हाथ से ऊँचा उठा लिया। दिलारा ने भी अपना जालीदार बुर्क़ा मुँह पर ढक लिया। उस बुर्क़े में से हँसते हुए उसने मेरी ओर देखा, और अपना हाथ मेरे सामने बढ़ाया। मैं उसका भाव समझ गया, और अपने हाथ का सहारा देकर मैंने उसे गाड़ी पर चढ़ा दिया। कोचवान ने घोड़ों की रासें सँभालीं, और गाड़ी चल दी। दिलारा फिर-फिर गाड़ी में से झाँककर मेरी ओर देखती रही। बात-की-बात में गाड़ी दृष्टि से ओझल हो गई, तब मैंने अमीरुद्दीन पर दृष्टि डाली।

आठवाँ प्रकरण

हृदय-परीक्षा

मैं समझता था कि मेरी नाईं अमीरुद्दीन भी उत्सुकता के साथ दिलारा की गाड़ी की ओर देख रहा होगा; किंतु नहीं। वह तो मेरी ओर देख रहा था, और वह भी बड़ी मत्सर-दृष्टि से। अपने को गाड़ी में बिठाने की दास्यवृत्ति दिलारा ने अमीरुद्दीन को न सौंपकर मुझे सौंपी थी। बस, केवल इतने ही से अमीरुद्दीन की यह हालत हो गई थी। तब यदि अमीरुद्दीन की स्थिति मेरी-जैसी होती, और उस पर मेरे-जैसा प्रसंग आ पड़ता, तो उसकी क्या दुर्दशा होती? अमीरुद्दीन की ऐसी मानसिक दुर्बलता पर मुझे हँसी आई; परंतु मैंने उस आवेग को जी में ही दबा लिया। पहले मुझे प्रतीत होता था कि अमीरुद्दीन का शासन करना कठिन होगा; किंतु अब उसकी मानसिक दुर्बलता और क्षुद्र मनोवृत्तियों को देखकर मैं समझ गया कि अमीरुद्दीन का शासन करना कठपुतली नचाने की नाईं ही अति सुगम है। यह स्पष्ट ही मेरी समझ में आ गया कि मैं और कुछ भी न करके यदि दिलारा से मिलता रहूँगा, तो केवल इतने से ही यह क्षुद्र अमीरुद्दीन मत्सराग्नि में जल मरेगा। अमीरुद्दीन का चेहरा इस समय लाल हो रहा था, और उस पर क्रोध के चिह्न प्रत्यक्ष ही दीख रहे थे। वह अपने मन में कुछ सोचता-विचारता हुआ इस समय शून्य दृष्टि से उसी ओर देख रहा था, जिस ओर दिलारा की गाड़ी गई थी। अमीरुद्दीन की उद्विग्नता दूर करने के उद्देश्य से मैंने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा—"वाह दोस्त! आप तो मानो नाटक की रंगभूमि पर नायक की नाईं खड़े हुए नायिका का विरह दिखा रहे हैं। अजी साहब! दिलारा आपके दिल पर आरा चला

गई, या उसे आपके क़ब्ज़े से सफ़ा चुरा ले गई, या आपके ऊपर कोई मोहिनी-मंत्र फूँक गई। आख़िर उसने किया ही तो क्या, जो आपकी ऐसी दशा हो रही है। है तो दिलारा वास्तव में ऐसी ही अनुपम सुंदरी, तभी तो आपको उसने अपने प्रेम में पागल बना रक्खा है! हाँ, क्या प्रेम में इतना तक कर डालने की शक्ति है! तब तो भाई! 'प्रेम' ख़रा!!"

अमीरुद्दीन ने अपना रोष-युक्त चेहरा तत्काल बदला, और फिर हँसते हुए मुझसे बोला—"उसने मुझे तो, मानो पागल बना दिया है; किंतु आपको? आपको कुछ भी नहीं किया क्या?"

मैंने आश्चर्य से कहा—"किसे, मुझे? अरे, पागलपन चढ़ने की मेरी उमर अब रही है क्या? और जनाब! इधर देखिए, ज़रा मेरे सामने। क्या मैं ऐसा भोला हूँ, जो दिलारा के हाथों पड़ जाऊँगा? मेरे-जैसा मनुष्य यदि फँसे, तो जवाहरात के सौदे में फँस भी सकता है; किंतु भला ऐसे मामले में? उँह, जाने भी दीजिए। ख़ुदा-ख़ुदा कीजिए साहब! भला मैं, और ऐसे मामलों में फँसने का हूँ! अल्लाह-अल्लाह! वाह, आपने भी ख़ूब फ़र्माया! अजी, अस्तग़्फ़ारुल्लाः!!"

मेरी यह बात सुनकर अमीरुद्दीन के हृदय का बोझ बहुत हलका हो गया, और वह गंभीर स्वर से बोला—"सँभलिएगा साहब! ख़ूब सँभलिएगा, और बड़ी सावधानी से बर्तिएगा।"

मैंने आश्चर्य से पूछा—"सावधानी से? किसके संबंध में? दिलारा के संबंध में? उसके संबंध में यदि इतनी अधिक सावधानी रखने की आवश्यकता है, तो फिर यार! आप उससे मिलने के लिये मुझसे इतना आग्रह क्यों करते थे? और, अब भी जो उससे मेरी यहाँ मुलाक़ात हुई, सो इसमें भी मुझे आप ही की कोई युक्ति प्रतीत होती है। कारण, यदि इस मामले में आपका हाथ न होता, तो वह कैसे जान जाती कि आज मैं आपकी चित्रशाला में आने को हूँ। जो हो, किंतु उससे आज मेरी भेंट हो गई, सो एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। भाई! मैं तो

दिलारा का सौजन्य देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। मुझे आनंद होता है कि मेरे मित्र को ऐसी सुंदर पुत्र-वधू मिली। मैं उसे बहुत कुछ पुरस्कार दूँगा; परंतु यार! आप तो कहते हैं कि उसके संबंध में सावधानी रखना चाहिए। दिलारा का चरित्र तो बड़ा अच्छा है, कि नहीं? क्या दिलारा मुझे किसी घुटाले में डाल देगी? जो यार! कुछ गड़बड़ हो, तो मुझसे स्पष्ट कह दो। हाँ भाई! मैं ठहरा व्यापारी आदमी।"

मेरे इस भाषण से अमीरुद्दीन का क्रोध बिलकुल ही शांत हो गया, और वह खिलखिलाकर हँसने लगा, बुड्ढे के हृदय में दिलारा के लिये अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ, यह जानकर अमीरुद्दीन की छाती का भार उतर गया। वह बोला—"नवाब साहब! दिलारा के संबंध में आप ऐसी कुधारणाएँ न कीजिए। सावधानी के साथ बर्तने के लिये जो मैंने आपसे कहा, सो इससे मेरा केवल यही तात्पर्य था कि आप अपने हृदय में उसके प्रति अनुराग उत्पन्न न होने दीजिएगा। कारण, स्वभावतः ही दिलारा का आचरण कुछ ऐसा है, जिससे नए मनुष्य को यह प्रतीत हो जाने की संभावना है कि वह मुझ पर आसक्त हो गई है। किंतु वस्तुतः बात ऐसी कुछ भी नहीं है।"

मैं भी ज़ोर से हँसकर बोला—"दोस्त! सलाह तो आपकी चोखी है; किंतु यह मुझ-जैसे वृद्ध के लिये निरर्थक है। हाँ, यदि आप-जैसे युवा पुरुष यह उत्तम सलाह मानें, तो बड़ा अच्छा हो। क्या आप कल्पना भी कर सकते हैं कि दिलारा-जैसी अनुपम सुंदरी मुझ-जैसे बुड्ढे-ठुड्ढे पर आसक्त हो जायगी? और, यदि हो भी जाय, तो क्या आप एक क्षण के लिये भी ख़याल कर सकते हैं कि मुझ-जैसा बुड्ढा उससे शादी करने के लिये तैयार हो जायगा? शादी की अब मेरी उमर रही है? अल्लाह-अल्लाह कीजिए साहब! भला, यह आपका क्या ख़याल है? आप-जैसा गबरू जवान होते हुए भी वह कहीं मुझ-जैसे बुड्ढे बाबा पर आशिक़ हो सकती है? मुझे तो आश्चर्य है कि यह कल्पना भी आपके हृदय में कैसे उत्पन्न हो सकी?"

बस, अब हम दोनो का हृदय परस्पर साफ़ हो गया। अमीरुद्दीन को दृढ़ विश्वास हो गया कि बुड्ढा निस्संदेह बड़ा ही अरसिक है। यह विश्वास होते ही अमीरुद्दीन का चेहरा प्रफुल्लित हो उठा, और तब मैंने उससे बिदा ली।

अमीरुद्दीन के स्वभाव का अब मैंने पूर्णतः निरीक्षण कर लिया था। मैं भली भाँति जान गया था कि किसी भी पर-पुरुष से दिलारा की मुलाक़ात होना उसे बहुत बुरा प्रतीत होता है। वह जानता था कि दिलारा ने इस विषय में ख़ास अपने पति को भी करारा धोखा दिया था, फिर उसकी क्या गिनती है, और इसीलिये वह इस विषय में दिलारा पर संशयग्रस्त दृष्टि रखता था। अमीरुद्दीन को यही भय रहता था कि दिलारा के प्रेम-साम्राज्य में अपना कोई प्रतिद्वंद्वी उत्पन्न न हो जाय। इसी डर से वह बेचारा सदा चौकन्ना रहता था, और जिस-तिस पर संदेह-दृष्टि डालता था। अपने शत्रु अमीरुद्दीन को ऐसे कच्चे हृदय का देखकर स्वभावतः ही मुझे आनंद हुआ।

दिलारा के संबंध में तो मेरे मन में पहले से ही भारी द्वेष था; किंतु आज उसकी विकार-विवशता देखकर मेरे हृदय में उसके लिये तिरस्कार भी उत्पन्न हो गया। अब तक मैं यही समझता था कि अमीरुद्दीन ने दिलारा पर विजय पाई है; किंतु आज मेरा यह भ्रम दूर हो गया, और मुझे विश्वास हो गया कि दिलारा ही अमीरुद्दीन को अपनी उँगलियों पर मनचाहा नाच नचाती है। दिलारा अपने पति के मर जाने के कारण पूर्णतः स्वतंत्र हो चुकी थी, और फिर वह अपने सौंदर्य को सर्व-विजयी समझती थी। अस्तु, जो जी चाहता, करती थी, और अपने को किसी बंधन विशेष में बँधने नहीं देती थी। अमीरुद्दीन तो पक्का मूर्ख था ही; इसमें संशय ही क्या है? कंबख़्त अमीरुद्दीन अब तक भी दिलारा को भली भाँति पहचान न सका था। मैं तो समझता हूँ कि अमीरुद्दीन को ख़ुदा ने वह आँख ही न बख़्शी थी, जिससे दिल की पहचान की जाती है। नवाब पीरबख़्श से थोड़ा-सा परिचय होते ही

दिलारा ने अपना दृष्टि-ओघ अमीरुद्दीन की ओर से खींचकर नवाब साहब पर डाल दिया; किंतु मूर्ख अमीरुद्दीन फिर भी समझ न सका कि जिस स्त्री का प्रेम इतना अधिक परिवर्तनशील है, वह स्त्री ही नहीं, वरन् पशुओं से भी गई-बीती है। पशुओं के अपराध तो क्षमा किए जा सकते हैं, क्योंकि उनमें बुद्धि नहीं होती; किंतु मनुष्यों के अपराध कदापि क्षम्य नहीं हैं। कारण, ख़ुदा ने मनुष्य को ज्ञान दिया है, और इसीलिये वह अशरफ़ुलमख़लूक़ात कहलाता है। मनुष्यों को ज्ञानी होने का भारी अभिमान है; किंतु इंद्रिय-लोलुपता और स्वार्थ के लिये यह मनुष्य एक भी दुष्कर्म नहीं छोड़ते। बेचारे पशु तो अज्ञान होकर भी जो कुछ करते हैं, केवल अपने पेट के ही लिये करते हैं। हाँ, मनुष्य की सभी दुष्कृतियाँ कदाचित् न्याय-पूर्ण ही हों, तो क्या आश्चर्य! मनुष्य सभी पशुओं से श्रेष्ठ है, फिर उसके दुष्कर्म क्यों न बड़े हों? यदि मनुष्य इस विषय में बड़प्पन न दिखावे, तो उसकी श्रेष्ठता को बाधा उत्पन्न होती है। अस्तु, बहुतेरे मनुष्य यदि हिंसक पशुओं से भी अधिक भयंकर होते हैं, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है। किंतु हाँ, आश्चर्य केवल यह है कि जब हम उन्हें पशु कहते हैं, तब उनके क्रोध का पार नहीं रहता! भले ही उन्हें क्रोध चढ़े; परंतु हमसे तो जब प्रश्न होगा कि पशु से भी अधम कौन? तभी हम यही उत्तर देंगे कि मनुष्य। कारण, यही बात सत्य है, और इसीलिये यही उत्तर भी यथार्थ है।

ज्यों ही मैं अमीरुद्दीन के यहाँ से लौटकर घर पहुँचा, मेरे एक नौकर ने तिपाई पर रक्खे हुए एक थार की ओर उँगली उठाकर कहा—"यह किसी ने नज़राना भेजा है।" थार के पास ही उर्दू में लिखी हुई एक चिट्ठी पड़ी थी चिट्ठी में केवल इतना ही लिखा था—"कल मेरे ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाना न भूलिएगा।" दिलारा की यह चिट्ठी उसकी क्षुद्रता की स्वतः प्रमाण थी। मैं तो इस संसार-रूपी रंगभूमि पर वेषांतर करके इसी-लिये आया था कि कब उपयुक्त समय मिले, और कब मैं अपनी मन-चाही करूँ। दिलारा से भी अधिक उत्सुकता मुझे थी कि कब दूसरा दिन

हो, और कब मैं उससे मिलूँ। उसे तो केवल नवाब पीरबख़्श की ही मैत्री निभानी थी; किंतु मुझे तो उसके अंतःकरण में प्रवेश करना था।

दूसरा दिन हुआ, और नियत समय भी आ गया। मैंने अपने ही भव्य गृह में एक अतिथि की नाईं प्रवेश किया। दरवाज़े के अंदर पाँव रखते समय मेरे अंतःकरण में जो अनेकानेक विचार और विकार उत्पन्न हो रहे थे, उन्हें मैं ही ख़ूब जानता हूँ, आप लोगों को मित्रो! उसकी यथार्थ कल्पना तक नहीं हो सकती। मेरी धारणा थी कि मेरे स्वागत के लिये दिलारा का वकील अमीरुद्दीन सामने आवेगा; परंतु यह न हुआ। उत्कृष्ट मोतिया रंग के रेशमी कपड़े धारण किए हुए स्वयं दिलारा ही मेरे स्वागत के लिये द्वार पर उपस्थित थी। मुझे देखते ही बड़े अदब से सलाम करके दिलारा हँसती हुई बोली—"आपके क़दम मुबारक से इस घर की और मेरी, दोनो ही की इज़्ज़तअफ़ज़ाई हुई।" उस मीठे स्वर, मधुर स्मित और जादू की दृष्टि से नवाब साहब का मुख-मंडल तो बड़ा प्रसन्न हुआ; किंतु नवाब साहब के भीतर शहादतअलीख़ाँ के हृदय को भारी वेदना हुई। 'भाई शहादतअली! चल आगे। तुझे अपने ही घर में पाँव रखते समय चाहे जैसा घोर मनःकष्ट क्यों न हो; किंतु ख़बरदार, भूलना मत कि तू यहाँ अतिथि है। हाय-हाय रे दुर्दैव! आज मालिक चोर बना! प्रत्यक्ष लक्ष्मी के भाग्य में दरिद्रता आई!! और सूर्य को भी अंधकार में बैठना नसीब हुआ!!! हाय! आज चार ही दिन पहले जिस घर का मालिक स्वयं मैं था, उसी घर में प्रवेश करने के लिये आज मैं दिलारा की कृपा-भिक्षा पर अवलंबित हूँ! प्रवासी धर्मशाला में वारंवार प्रवेश कर सकता है; किंतु मैं अपनी स्वेच्छा से अपने ही घर में प्रवेश नहीं कर सकता! ऐसे गृह में प्रवेश करके मुझे केवल अतिथि सत्कार ही स्वीकार न करना था, वरन् दिलारा के हृदय में प्रवेश करके मुझे उसका रक्त-पान करना था। दिलारा! राक्षसी दिलारा! ध्यान रख कि यह अतिथि अत्यंत क्रूर है, यह अतिथि सभ्यता नहीं जानता, और न यह जानता है कि स्त्रियों का आदर किस प्रकार करना चाहिए। कारण,

वह स्त्रियों के सौंदर्य का मूल्य नहीं जानता। यह अतिथि एक अत्यंत ही अरसिक एवं प्रतिभा-शून्य मनुष्य है। हे कवियो! मैं दिलारा-जैसी सौंदर्य की खान को होलिका की नाईं दहन कर डालने के लिये तत्पर हुआ हूँ। अब चाहे तुम मुझे गालियाँ दो या शाप दो, मुझे इसकी कोई भी परवा नहीं। तुम ध्यान रखियो प्रतिभा-संपन्न कवियो कि शहादत अपने निग्रह-निश्चय से कदापि फिरनेवाला नहीं, चाहे तुम हज़ार सिर पीटो, और जब तक तुम्हारी लेखनी में नोक और दावात में स्याही रहे, कोटान-कोटि श्वेत पत्रों पर कालिख चढ़ाओ, सौंदर्य के राग अलापो, रसिकों की प्रशंसा करके मुझ-जैसे अरसिक को ख़ूब ही जी भरकर कोसो; किंतु यह शहादत अपने दृढ़ निश्चय से कदापि टलने का नहीं। फेंक दो कवियो! अपनी लेखनी फेंक दो, या अच्छा हो, यदि उसे तोड़ दो; लुढ़का दो, कवियो! अपनी दावात लुढ़का दो, या अच्छा हो, जो तुम उसे पत्थर पर फोड़ दो। अरे, सफ़ेदी पर स्याही क्यों चढ़ाते हो? यदि ख़ुदावंद करीम ने तुम्हें इसी के लिये भेजा है, तो स्वच्छ सफ़ेदी पर कलंक के ऐसे काले टीके न लगाओ। अरे भलेमानुसो! राम-गुन गाओ, जिससे तुम्हारा मनुष्य-जीवन सफल हो, तुम्हारी लेखनी और दावात अपने को धन्य माने, और काग़ज़ की सफ़ेदी पर वह पक्का रंग चढ़े, जिसमें ग़ोता मार-मारकर कोटान-कोटि पतितों का रंग परिवर्तन होकर सद्गति का लाभ होवे। हे प्रतिभा-संपन्न कवियो! यदि तुम्हें सौंदर्य ही प्यारा है, और सिवा सौंदर्य के तुम्हें अन्य एक अक्षर भी लिखना नहीं आता, तो सौंदर्यकर्ता की सौंदर्यमयी सृष्टि के सौंदर्य का वर्णन करो; यदि प्रेम के अतिरिक्त तुम कुछ नहीं जानते, तो उस पुनीत प्रेम का वर्णन करो, जिससे तुम स्वयं प्रेममय बनकर दूसरों को भी प्रेम-मग्न कर दो, और सब मिलकर उस प्रेम में मस्त बन जाओ, जिस प्रेम में किसी को किसी के प्रति ईर्षा-द्वेष का लेश-मात्र नहीं रहता—उसी पवित्र प्रेम में रँगकर धन्य बन जाओ।

जब से मैंने घर में पाँव रक्खा था, चारो ओर बड़ी जिज्ञासा से देख

रहा था। अपने जन्म से लगाकर लगभग २५ वर्ष जिस घर में मैंने व्यतीत किए थे, वही घर मुझे आज उदास एवं भयानक प्रतीत हो रहा था, और इसीलिये मुझे वह घर आज नया-सा प्रतीत हो रहा था। जो घर पहले गृहस्थ-धर्म का साक्षी-भूत था, वही आज किसी रँगीले, नादान एवं छुटे हुए मनुष्य का निवास-स्थान प्रतीत हो रहा था। मेरे सिंह-द्वार पर दोनो ओर पत्थर के दो सिंह बने थे, वे अब वहाँ से हटा दिए गए थे, और उनके स्थान पर आकाश की दो सुंदर अप्सराएँ पधार दी गई थीं। जिस बरांडे में मेरा बाघा कुत्ता बँधता था, वहाँ अब शुक-सारिका के पिंजड़े लटक रहे थे। अंदर के जिस विशाल कमरे में पहले अकबर, प्रतापसिंह, पृथ्वीराज, तैमूरलंग, टोडरमल, वीरबल आदि महान् विभूतियों के चित्र शोभा देते थे, वहाँ अब वे न थे। उनके स्थान पर अब विलासप्रिय जोड़ों के चित्र लटक रहे थे। दिलारा ने मुझे मुख्य दीवानखाने में ले जाकर बिठाया। मेरे पास ही अमीरुद्दीन भी एक कुर्सी पर बैठ गया। इस दीवानखाने में पहले मेरे माता-पिता के और मेरे बड़े-बड़े चित्र सुसज्जित थे, और मेरे पूर्वजों की भी कितनी ही तस्वीरें लटकी थीं; किंतु अब वहाँ उन चित्रों का कोई नामोनिशान तक न था। उनके स्थान पर जहाँ-तहाँ दिलारा और अमीरुद्दीन के ही चित्र दिखते थे। यह सब देखकर मेरा मन अत्यंत उद्विग्न हुआ। मैंने इस भाव के छुपाने का बड़ा प्रयत्न किया; किंतु फिर भी मेरे मुख-मंडल पर यह भाव प्रकट हुए बिना न रहे, और इसीलिये उद्विग्नता के यह भाव दिलारा के लक्ष्य में आ गए। वह मुस्किराती हुई बोली—"नवाब साहब! प्रतीत होता है कि आपको यहाँ आकर जो आनंद प्राप्त होना चाहिए था, सो नहीं हुआ।"

दिलारा के इन शब्दों से मैं सजग हुआ, और तुरंत ही मुझे अपना वेषांतर स्मरण हो आया। किंचित् हास्य करके मैं बोला—"यहाँ आकर जो आनंद मुझे हुआ है, उसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। यह घर मुझे भले प्रकार याद है। छोटेपन में मैंने यहाँ कितने ही महीने बिताए थे। मनुष्य अपने जीवन की अनेक बातें भूल जाता है; किंतु

बालपन की बहुतेरी बातें आजन्म नहीं भूलतीं। इस समय उस ज़माने की सारी बातें स्पष्ट रीति से मेरी अंतर्द-दृष्टि में ज्यों-की-त्यों आ रही हैं, इस कारण यद्यपि मेरा मन कुछ खिन्न-सा हो गया है, तथापि यह जानकर कि आपके निमंत्रण से मैं यहाँ आया हूँ, मुझे बड़ा आनंद हो रहा है, और मैं अपने को धन्य मानता हूँ।"

दिलारा ने कृत्रिम गंभीरता से पूछा—"आपने मेरे पति को तो देखा होगा ?"

"हाँ, जब मैं दूसरी बार दिल्ली आया था, उस समय मैंने उसे देखा था। शहादत उस समय छोटा था; बड़ा ही सुंदर और सद्‌गुणी लड़का था। यदि आज वह होता, तो मुझे असीम आनंद प्राप्त होता। शहादत अपने बाप को बड़ा ही प्यारा था, और अपनी माता का तो वह प्राण ही था। शहादत की माता-जैसी सरला, सदाचारिणी और सुंदरी स्त्री तो मैंने आज तक कहीं भी नहीं देखी। वह बेचारी शहादत को छुटपन में ही छोड़कर इस दुनिया से चल बसी थी।"

शहादत की और शहादत के मा-बाप की अर्थात् मेरी और मेरे मा-बाप की प्रशंसा अमीरुद्दीन को सहन न हुई। वह मुझे खिझाने के उद्देश्य से बोला—"मालूम होता है कि आप इस घर के विषय में बहुत कुछ जानते हैं! दांपत्य का प्रेम-रस दीर्घ आयुष्य से शुष्क होते-न-होते वे बेचारे जुदा हो गए, यही न ?"

मुझे अपने माता-पिता के संबंध में यह कटु वाक्य सुनकर बड़ा ही क्रोध चढ़ा; किंतु मैंने बड़े प्रयत्न से उस क्रोधावेग को रोका, और थोड़े तीखे स्वर में मैं अमीरुद्दीन से बोला—"दोस्त ! इस प्रेम-रस का अजीब मेवा ख़ुदा ने केवल आप ही के लिये रख छोड़ा है। उस साध्वी का तो सदा यही मनन रहा कि दो पवित्र आत्माओं का मिलन ही विवाह है। यह शोध तो आपकी है कि केवल पाशविक सुख के निमित्त ही विवाह की आवश्यकता होती है। मैं जानता हूँ कि मुझ वृद्ध का यह कथन आप-जैसे तरुणों को भाने का नहीं।"

मैं अमीरुद्दीन को और भी बहुत-सी खरी-खोटी सुनाने को था; किंतु बीच ही में दिलारा बोल उठी—"जाने भी दीजिए नवाब साहब! आप अमीरुद्दीन के कहने पर न जाइए, यह तो इनका स्वभाव ही है कि बिना कुछ सोचे-विचारे जो मुँह पर आता है, कह बैठते हैं। इनसे और मेरे पति से बड़ा स्नेह था, इसीलिये इनके साथ मेरा कोई तकल्लुफ़ (शिष्टाचार) नहीं है। मैं इन पर अपने भाई की नाईं स्नेह रखती हूँ। आपको मेरे कुटुंब की बहुतेरी बातें मालूम हैं, यह जानकर मुझे बड़ा आनंद होता है। मरीना को—अपनी लड़की को—लाऊँ क्या ?"

मरीना का नाम निकलते ही मेरा गला भर आया। जब से मैंने घर के अंदर पाँव रक्खा था, तभी से मुझे मरीना को देखने के लिये अत्यधिक उत्कंठा हो रही थी; परंतु मैं, परकीय मनुष्य, एकदम इस प्रकार कैसे कह सकता था कि मरीना को दिखाओ ? ज्यों ही दिलारा के मुँह से मरीना का नाम निकला, मैंने बड़ी उत्सुकता दिखाते हुए कहा—"हाँ-हाँ, अवश्य।" तुरंत ही दिलारा ने दासी को आवाज़ दी, और वह उस दो वर्ष की बालिका को उठा लाई। अपने हृदय के टुकड़े को देखते ही मेरा अंतःकरण भर आया, और मैंने अपनी उस कन्या को झट से अपनी छाती से चिपटा लिया। मरीना के मुख-मंडल की मोहकता जाती रही थी, और वह निरपराध बालिका मुरझा-सी गई थी। दिलारा चाहे जैसी भी कठोर-हृदया क्यों न हो, किंतु थी तो आख़िर मरीना की माता ही। अस्तु, मरीना की ओर उसकी अधिक दुर्लक्ष्यता होना असंभव था; परंतु केवल अमीरुद्दीन ही के घृणित आचरण से मरीना की ऐसी दुर्दशा हो गई थी। इन सब विचारों के कारण अमीरुद्दीन के प्रति मेरे हृदय में दूनी वैर-बुद्धि जाग्रत हो गई। मैंने अपनी मरीना का प्यार लेकर कहा—"वाह-वाह ! लड़की तो बड़ी सुंदर है। गुलाब की कली की नाईं सुकुमारिनी है।"

बेचारी बालिका ने मुझे नहीं पहचाना; किंतु उसे यह ध्यान आए बिना न रहा कि बहुत दिनों में आज मुझे कोई मेरे पिता की नाईं हृदय

से लगाए है। अस्तु, उस बालिका को एक मुद्दत बाद यह आनंद मिला, और वह अपने मीठे-मीठे शब्दों में बोल उठी—"अमाले अब्बा छोई अमछे ऐछेई कैते ते।"

बालिका को देखते ही अमीरुद्दीन को चिढ़ उत्पन्न हुई; क्योंकि इस निरपराधिनी बालिका के शरीर में शहादतअलीख़ाँ का लहू प्रवाहित हो रहा था, और अमीरुद्दीन को शहादतअली के नाम तक से घृणा थी। अस्तु, वह विकृत स्वर में बोला—"शहादतअलीख़ाँ की लड़की गुलाब की कली तो खरी है, किंतु जनाब! इस कली के नीचे तीक्ष्ण काँटा भी है!"

'धत् तेरे की, मूर्ख! अब आ गया मेरे सपाटे में; तू अब जाता ही कहाँ है।' ऐसा सोच मैं झट दिलारा को संबोधित करके कुछ उच्च स्वर में बोला—"यह अपमान इस बालिका का नहीं, किंतु आपका है। अमीरुद्दीन के कहने का यह तात्पर्य है कि गुलाब उत्पन्न करनेवाले वृक्षों में काँटे होते हैं। यह आपके भाई हैं। इसलिये जो कुछ भी यह कहें, इन्हें सभी कुछ शोभा देता है।" इस प्रकार कहकर तुरंत ही मैंने अपनी दृष्टि अमीरुद्दीन पर डाली, और बोला—"दोस्त! यह काँटे का डर आपको ही मुबारक रहे; मुझ वृद्ध को उस काँटे की अनी से कोई भी त्रास नहीं होने का; आप ख़ातिर जमा रक्खें।"

अमीरुद्दीन कुछ भी न बोला; कारण कि मेरे इस कोटि-क्रम से दिलारा को उसके ऊपर क्रोध चढ़ आया। उस समय क्रोध के मारे दिलारा की आँखें लाल हो गई थीं; किंतु मेरी उपस्थिति में करती ही, तो क्या? इतने ही में मरीना मुझसे पूछ बैठी—"अमाले अब्बा काँ ऐं? कब आएँगे?"

मरीना का निष्कपट-वृत्ति का प्रश्न सुनकर मेरी आँखों में पानी भर आया; परंतु वह कपटी, क़साई अमीरुद्दीन फिर बोल उठा—"मरीना पगली हो गई है। चाहे जिससे चाहे जो कुछ पूछ बैठती है। अरी दीवानी! तेरा अब्बा तेरा पागलपन देखने के लिये फिर जीकर आएगा क्या?"

जिसके हृदय ही न होगा, ऐसे ही निर्दय मनुष्य के मुँह से ऐसे शब्द निकल सकते हैं ! नीच ! शैतान ! यदि शहादत के प्रति तेरे हृदय में ऐसा भारी द्वेष-भाव था, तो जब वह जीवित था, तब उसको अपना पुरुषार्थ दिखाता। अब तो वह इस दुनिया में है ही नहीं, यही समझ-कर तू ऐंठ-ऐंठकर उसका वैर इस बेचारी दो वर्ष की निरपराधिनी बालिका पर उगल रहा है। लानत है नामर्द ! तुझे और तेरे इस द्वेष-भाव को। ऐसे नराधम को क्या शिक्षा दी जाय ? मुझे अमीरुद्दीन की नीचता पर भारी क्रोध चढ़ रहा था। मेरी वह छोटी बच्ची मरीना भी अमीरुद्दीन को देखकर मुँह फेर लेती थी, इससे मुझे यह प्रत्यक्ष सिद्ध हो गया कि अमीरुद्दीन ही से मेरी प्यारी बेटी को दुःख पहुँचा करता है। मैंने जब ख़ूब आँखें भरकर मरीना को देखा, और उसके शरीर का निरीक्षण किया, तो मुझे उसके शरीर पर के चिह्नों से प्रतीत हो गया कि यह अमीरुद्दीन उसके गुलाबी गालों में चींटियाँ ले-लेकर और उसके कान मल-मलकर उसे दुःख पहुँचाता होगा। बालिका के मीठे शब्द अमीरुद्दीन के कानों को कड़ुवे लगते थे, इसलिये कदाचित् वह दुष्ट इसकी जीभ खींचने का भी विचार कर रहा होगा। मेरी प्यारी मरीना को इस समय बड़ा आनंद मिल रहा था। एक मुद्दत बाद बेचारी ने सुखमयी गोद पाई थी, और फिर मैं बीच-बीच उसे ख़ूब प्यार कर-करके खिलाता जाता था। अस्तु, मरीना ने मुझसे कितने ही सरल प्रश्न किए, और मैंने भी तत्काल उन सबके उत्तर दिए। इन सभी बातों से मरीना को और भी बड़ा आनंद हुआ। अमीरुद्दीन और दिलारा को चाहे मेरी यह बात पसंद न आई हो; किंतु मैंने उन दोनो की तनिक भी परवा नहीं की, और अमीरुद्दीन को तो मैंने दो-चार कड़े उत्तर देकर बिलकुल चुप ही कर दिया था।

खाना खाने का समय होते ही हम सब भोजन-गृह में गए। मैं सदैव जिस जगह पर बैठकर भोजन किया करता था, उसी स्थान पर बैठाया गया, और इस प्रकार से एक अतिथि की नाईं भी मुझे मेरा

सदा का परिचित स्थान मिला, जिस कारण मुझे बड़ा आनंद प्राप्त हुआ। दिलारा क्या चाहिए, और क्या न चाहिए ? इत्यादि पूछने के लिये पास ही खड़ी थी, और अमीरुद्दीन भोजन करने के लिये बैठा था। अमीरुद्दीन का चेहरा धीरे-धीरे उदास और खिन्न होता जा रहा था। इस वृद्ध अतिथि के साथ दिलारा जिस हाव-भाव का आचरण कर रही थी, वह उसे नितांत ही असह्य था; परंतु बेचारा करे भी, तो क्या ? वह दिलारा को शिक्षा करने में भी तो नितांत ही असमर्थ था। अमीरुद्दीन ने तो दिलारा पर विजय न पाई थी, वरन् दिलारा ने ही अमीरुद्दीन को एक ही तिरछी नज़रिया से ख़रीद कर लिया था। मेरे मुँह के सामने ही मेरे माता-पिता के चित्र लगे थे, इसलिये सहज ही उस ओर मैं ध्यान-पूर्वक देख रहा था। धीरे-धीरे मैंने दिलारा पर एक विलक्षण छाप डाल दी थी। दिलारा पर मेरा कुछ ऐसा प्रभाव पड़ गया था कि वह अमीरुद्दीन की उपस्थिति तक भूल-सी गई थी। मैं उन चित्रों की ओर ध्यान-पूर्वक देख रहा था कि दिलारा मुस्किराती हुई बोली—"प्रतीत होता है कि इन चित्रों ने आपके मन को बहुत ही आकर्षित कर रक्खा है। क्यों साहब ?" दिलारा ने यह प्रश्न मुझसे कुछ ऐसे हाव-भाव से पूछा कि जिसके कारण अमीरुद्दीन के हृदय में मेरे प्रति विलक्षण वैषम्य उत्पन्न हो गया। मैं बोला—"इसमें क्या आश्चर्य ? दिलारा ! जिनके सहवास में मेरे जीवन के अनेक वर्ष व्यतीत हुए, उनके चित्र को देखकर मेरा मन क्यों न उस ओर आकर्षित हो ? इन चित्रों के देखने से मुझे बहुतेरी बातें स्मरण हो आई हैं। सचमुच ही चित्र बड़े सुंदर बने हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शहादत के माता-पिता प्रत्यक्ष ही मेरे सम्मुख बैठे हैं।" यह चित्र जिसने बनाए थे, मैं जानता था; किंतु फिर भी मैंने अमीरुद्दीन से कहा—"वाह-वाह ! दोस्त ! आप तो बड़े कुशल चित्रकार प्रतीत होते हैं। इन चित्रों में केवल चैतन्यता-मात्र नहीं है, अन्यथा इनमें और कोई भी लेश-मात्र फेर नहीं है। भई वाह ! कारीगरी की तो आपने हद कर दी है साहब !"

मेरे यह वाक्य सुनकर अमीरुद्दीन का चेहरा मिथ्याभिमान से थोड़ा प्रसन्न हो उठा; किंतु इतने ही में दिलारा बोली—"अजी नहीं साहब! यह चित्र इनके बनाए हुए थोड़े ही हैं। यह दोनो चित्र एक दूसरे ही चतुर चित्रकार की चित्रकारी के उत्कृष्ट नमूने हैं।"

अरे रे! फिर बेचारे का चेहरा खिन्न हो गया। इतने में ज़फ़र नाम का वृद्ध ख़ानसामाँ कुछ पदार्थ परोसने के लिये लाया। इस संधि को पाकर अमीरुद्दीन बोला—"यह बड़ा पुराना नोकर है। इसने आपके बंधु वज़ीरअलीख़ाँ साहब और शहादतअलीख़ाँ, दोनो की नौकरी की है। शहादतअली के संबंध में इसका मत भी अच्छा नहीं है।"

ज़फ़र की आँखें लाल हो गईं। वह बोला—"मेहरबान! मेरी बाबत आप फ़िज़ूल झूठ क्यों बोलते हैं? मैंने उनका नमक खाया है। दुनिया में जनाब! सभी नमकहराम नहीं हुआ करते।" इस प्रकार कहते हुए ज़फ़र ने मुझे झुककर सलाम किया, और फिर बोला—"नवाब साहब! आप चाहे इनके कहने पर यक़ीन करें; मगर मैं हुज़ूर से सच अर्ज़ करता हूँ कि जब मेरे मालिक उस मनहूस काले बुख़ार से बीमार पड़े, तब कहीं मुझे ख़बर पड़ जाती, और उस वक़्त उन्हें अच्छा करने के लिये अगर कोई हकीम मेरा कलेजा माँगता, तो मैं शौक़ से अपने ऐसे नेक मालिक के लिये हँसते-हँसते अपना कलेजा चीर देता।" इस प्रकार कहते हुए ज़फ़र की आँखें भर आईं, और वह अंदर चला गया। थोड़े समय तक भोजन-गृह स्तब्ध रहा। अमीरुद्दीन तो बहुत ही खिसिया गया था। आज का दिन उसके लिये बड़ा ही अशुभ निकला। कारण, आज वारंवार उसका मान खंडन हो रहा था। एक ओर तो बेचारे का इस प्रकार मान-खंडन हो रहा था, दूसरी ओर उसके हृदय में मेरे प्रति द्वेषाग्नि धधक रही थी। कारण कि रह-रहकर दिलारा मेरी ओर कनखियों से देखकर मुस्किराती जाती थी, और बड़े ही हाव-भाव से मेरी आव-भगत कर रही थी। ये सभी बातें अमीरुद्दीन को अत्यंत ही असह्य थीं। अपने मन में बेचारा पश्चात्ताप करता होगा कि कहाँ से

मैंने उस दिन इस नवाब से मजलिस में भेंट की, और क्यों मैं कंबख़्ती का मारा इसे इस मकान में लाया। किंतु सिवा पश्चात्ताप के और अमीरुद्दीन कर ही क्या सकता था ?

भोजन समाप्त करके मैं, मरीना और अमीरुद्दीन मुख्य दीवानख़ाने की ओर बढ़े। भोजन-गृह से बाहर निकलते समय स्वयं दिलारा ने मेरे लिये दरवाज़ा खोला, और हँसते हुए कहा—"मैं थोड़ा कुछ खाकर अभी आती हूँ।" मुख्य दीवानख़ाने में मरीना को गोद में लिए हुए एक उत्तम कोच पर जा बैठा। मरीना की सूरत देखकर कुछ विचार करने लगा कि इतने ही में उद्विग्न स्वर में अमीरुद्दीन बोला—"प्रतीत होता है, बेगम साहबा के अतिथि-सत्कार से नवाब साहब बहुत ही ख़ुश हुए हैं। किंतु—"

उसको आगे न बोलने देकर मैं बीच ही में बात काटकर बोल उठा—"निस्संदेह कुलीन कुटुंब की स्त्रियों को जिस प्रकार अतिथि-सत्कार करना चाहिए, उसी प्रकार दिलारा ने मेरा सत्कार किया है, इसमें कोई भी कमी मैं नहीं देखता। आख़िर दिलारा है तो एक कुलीन कुल की कुल-वधू !"

"किंतु—"

"किंतु क्या ?"

"उसके संबंध में सावधानी रखने के लिये मैं आपको पहले ही से सूचित कर चुका हूँ।"

"और, उसी समय मैं आपको उसका योग्य उत्तर भी दे चुका हूँ।"

अमीरुद्दीन अब निरुत्तर हो गया। थोड़े समय तक तो वह खिन्न बना हुआ बैठा रहा; किंतु फिर बोला—"दिलारा का बर्ताव थोड़ा चामत्कारिक है। नए मनुष्य को, अर्थात् जिसे उसका स्वभाव भली भाँति मालूम न हो, ऐसे मनुष्य को, उसका बर्ताव देखकर यही प्रतीत होता है कि वह मुझ पर प्रेम करती है। अस्तु, आप कहीं इस मिथ्या प्रतीति में न फँस जाइएगा, यही मुझे आपसे विशेष प्रकार से कहना है।"

मैं ज़ोर से हँस पड़ा, और उसके कंधे पर हाथ रखकर विनोद से बोला—"अच्छा ! यह मैं अब समझा कि जनाब इतने उदास क्यों दिख

रहे हैं। दोस्त अमीरुद्दीन ! आप यह पूरा यक़ीन रक्खें कि इस बुड्ढे को ऐसी बातें मुतलक़ पसंद नहीं हैं। वल्लाह मुझे इन बातों से सख़्त नफ़रत है। भला आप ही सोचिए कि अगर मेरी मंशा शादी करने की होती, तो मैं कभी का गृहस्थीवाला बन जाता, और बक़ौल आपके अपनी जवानी पर पानी न फेरता। जनाब ! इसी शादी-बरबादी से बचने के लिये मैंने एक बड़ी अच्छी तरकीब जारी रक्खी है; वह यह कि जो औरतें मेरे साथ शादी करे, ऐसी अर्ज़ अज़ख़ुदा करती हुई मेरे पास आएगी, उसी से मैं शादी करूँगा, यह क़ौल मैंने किया है। अब आप ही सोचिए कि जब मेरी भरी जवानी में भी किसी औरत ने मुझसे ऐसी अर्ज़ न की, तब अब मेरे इस बुढ़ापे में कौन ऐसी दीवानी नौजवान औरत होगी, जो मुझसे अर्ज़ करेगी कि जनाब ! आप मेरे साथ शादी कीजिए। वाह-वाह ! जनाब अमीरुद्दीन साहब ! वाह-वाह, आपको भी क्या दूने की सूझी है। भई वाह !"

मेरे इन शब्दों को सुनकर अमीरुद्दीन का चेहरा एकदम प्रफुल्लित हो गया। वह भी ज़ोरों से हँसकर बोला—"वाह-वाह ! प्रतिज्ञा तो आपकी ख़ूब है। अजी यही कहिए न साहब कि न कोई तरुणी आपसे इस प्रकार की प्रार्थना करेगी, और न आपको कोई विवाह के लिये विशेष आग्रह करके दबा ही सकेगा। इस प्रकार आप विवाह से सर्वथा मुक्त रहेंगे। भई ख़ूब ! मैंने अब तक आपके विषय में जो आशंका रक्खी, उसके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। कृपया क्षमा कीजिए।"

इतने में भोजन समाप्त करके दिलारा भी दीवानख़ाने में आ पहुँची। वह अपने साथ उत्कृष्ट पान भी तैयार करके लेती आई थी। उनमें से एक पान दिलारा ने बड़ी ही नम्रता-पूर्वक और मुस्किराते हुए मुझे दिया, और एक पान अमीरुद्दीन के सामने सरका दिया। मेरी तरह अमीरुद्दीन को उसने तांबूल अर्पण नहीं किया, यह देखकर मुझे तो कोई भी विस्मय न हुआ; किंतु अमीरुद्दीन के हृदय में आग धधकने लगी। वह एकटक दिलारा का चेहरा देखता रह गया; किंतु दिलारा ने देखा-अनदेखा-सा

कर दिया, और कमर को बल देती हुई बिलकुल मेरे पास ही आकर बैठ गई। दिलारा मुझसे अपने पति और श्वशुर के विषय की बहुतेरी बातें पूछने लगी। मैंने भी उसे थोड़े ही शब्दों में समुचित उत्तर दिए, जिससे उसे विश्वास हो गया कि नवाब साहब मेरे कुटुंब से भली भाँति परिचित हैं। केवल इतना ही नहीं, वरन् दिलारा को यह भी पूर्ण प्रतीति हो गई कि नवाब साहब मेरे कुटुंब से बड़ा सद्भाव रखते हैं, और मेरे लिये उनकी हार्दिक सहानुभूति है। अब तक मैं रह-रहकर दो-तीन बार दिलारा से घर जाने की आज्ञा माँग चुका था; किंतु दिलारा हर बार थोड़ी देर और बैठिए, कहकर मुझे आग्रह-पूर्वक रोकती थी। इस प्रकार चिराग़-बत्ती हो जाने पर भी उसने मुझे ठहरिए, ज़रा और बैठिए, कहकर रात कर ली। बाहर स्वच्छ चाँदनी खिल गई। जब मैंने फिर घर जाने का विशेष आग्रह किया, तो दिलारा ने मुझे हँसते हुए बिदा दी। मुझे पहुँ-चाने के लिये दिलारा मेरी गाड़ी तक आई। इस समय अमीरुद्दीन का चेहरा कुछ खिलता हुआ प्रतीत होने लगा। कारण, वह मन में समझता था कि चलो, छुट्टी मिली, अब यह मनहूस नवाब टला जाता है। गाड़ी के पास पहुँचकर दिलारा ने मुझसे फिर आने के लिये वचन लिया, और नम्रता से सलाम करके मुझे बिदा किया। मेरी गाड़ी चल दी। चलती हुई गाड़ी से मैंने खिड़की में होकर देखा, तो दिलारा और अमी-रुद्दीन, दोनो बाग़ की ओर जाते हुए दिखाई दिए। मकान से कुछ ही दूर मैंने झट गाड़ी खड़ी करा दी, और स्वयं उतरकर बाग़ की पिछली चहारदीवारी लाँघकर मैंने उस बाग़ में चोर की नाईं छिपकर प्रवेश किया। वहाँ जाकर देखा कि एक फ़व्वारे के पास ही पत्थर की सुंदर बैठकों पर दिलारा और अमीरुद्दीन बैठे हैं। मैं छिपता-लुकता उनके पासवाली एक लता-कुंज में दुबककर जा बैठा, और ध्यान-पूर्वक उनकी बातें सुनने लगा।

अमीरुद्दीन बोला—"दिलारा! तेरा आज का बर्ताव मुझे बड़ा ही चामत्कारिक प्रतीत हुआ है। दूसरे मनुष्य के साथ इस प्रकार का बर्ताव

रखना तो उस बुड्ढे को भी पसंद न आया होगा। फिर दिलारा! वह बुड्ढा तो तेरा सगा-संबंधी है, तेरा चचिया-ससुर होता है, क्या उसके साथ तुझे ऐसा बर्ताव रखना चाहिए?"

दिलारा हँसती हुई बोली—"अमीर! अब तो मेरे लिये सभी पराए और सभी अपने निजी हैं। जिसने मुझे वे बहुमूल्य रत्नालंकार भेंट दिए, उसका यथाशक्ति बहुत ही अच्छी रीति से आदर-सत्कार करना ही मेरा कर्तव्य था।"

"वाह! ठीक! तब क्या उन अलंकारों के लालच में इस बुड्ढे-ठुड्ढे पर मरने लगी हो? किंतु ध्यान रखना दिलारा! उस बुड्ढे ने बड़ी ही विचित्र प्रतिज्ञा की है। सुनी है तूने? वह कहता है कि जो स्त्री स्वयं आकर उससे शादी करने की प्रार्थना करेगी, उसी के साथ वह विवाह करेगा।"

"ऊँह! तो इसमें क्या बड़ी बात है? उसकी यह प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये क्या कोई भी स्त्री इस संसार में नहीं मिलेगी? जिसने ऐसे बहुमूल्य अलंकार सहज ही भेंट में दे डाले, उसके घर में कितनी अधिक लक्ष्मी होगी, इसकी भी तूने कुछ कल्पना की है क्या? फिर वह, मैं वृद्ध हूँ, इस प्रकार कहता है, सो तो ठीक; किंतु वस्तुतः वह इतना अधिक वृद्ध जँचता नहीं है। उसकी अंग-कांति अब भी तुझ-जैसे तरुणों को मात करती है।"

अमीरुद्दीन अब दिलारा की हृद्गति जान गया, और बड़ा ही विषण्ण हुआ। दिलारा पर उसके हृदय में बड़ा भारी रोष हुआ; किंतु वह कर ही क्या सकता था? अंत में उसने मेरी निंदा करनी आरंभ कर दी। उसकी और मेरी किसी भी प्रकार की जान-पहचान न थी; किंतु फिर भी उसने कहना आरंभ किया कि मैं मुर्शिदाबाद में कुछ भी आबरू नहीं धराता, और मैं वहाँ एक बड़े भारी कुमार्गी की नाईं बदनाम हूँ, इत्यादि-इत्यादि। न-मालूम मेरी कितनी मिथ्या बुराइयाँ उसने कीं। सचमुच ही उस समय उसने पामरता की हद ही कर दी। उसकी बातें

सुनते-सुनते मेरा क्रोध धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मैंने अंत में यह निश्चय किया कि ऐसे नमकहराम, मित्र-द्रोही, नर-पिशाच को क्षण-भर के लिये भी जीवित छोड़ना महा अन्याय है। गाड़ी में से साथ लाए हुए काले वस्त्र से मैंने अपना सारा शरीर ढक लिया, फिर अपनी कमर से मैंने तीक्ष्ण कटार निकाली। एक बार बिजली की नाईं मेरी कटार चाँदनी में चमकी। उस चमक के साथ ही मेरे विवेक ने मेरा साथ छोड़ दिया, और मैं क्रोध से नितांत ही विवश हो गया। एक बार तो मन हुआ कि सीधे अमीरुद्दीन के सामने ही जाकर यह रक्त-पिपासिनी कटार उसकी छाती में घुसेड़ दूँ, किंतु फिर कुछ सोचकर मैंने वह कटार वहीं से उसके कंठ का लक्ष्य करके ज़ोर से फेंकी। प्राणांतक वेदना-व्यंजक स्वर से 'अरे बाप रे! ख़ून!' इस प्रकार से दो-तीन बार उस बाग़ में घोर शब्द हुआ, और तुरंत ही मैं सटककर छिपता-लुकता हुआ उस बाग़ से निकलकर अदृश्य हो गया।

नवाँ प्रकरण

कृतज्ञ पशु

यहाँ मेरे नाटक का प्रथम अंक समाप्त होकर दूसरे अंक का प्रारंभ होता है। मुर्शिदाबाद में मैं सोचा करता था कि दिलारा से मेरा परिचय किस प्रकार हो सकेगा, दिलारा के मकान में मेरा प्रवेश क्योंकर हो सकेगा, मेरे फंदे में वह कैसे फँस सकेगी, अमीरुद्दीन भी मुझसे क्यों मिलने चला, इत्यादि-इत्यादि; और यह कार्य मुझे बड़े ही कठिन प्रतीत होते थे; किंतु ख़ुदा की मेहरबानी से मैं अपने सभी प्रयत्नों में सफल होता चला गया, और सभी कार्य मेरे इच्छानुसार ही होते चले गए। दूसरे दिन मैं थोड़े-से फूल, मेवे और मिठाई इत्यादि लेकर दिलारा से मिलने के लिये उसके मकान पर पहुँचा। मेरी पुरानी वृद्ध परिचारिका बरांडे में बैठी मरीना को खेला रही थी। मैं तो अपनी इस परिचारिका को पहचानता ही था; किंतु इस बेचारी ने मुझे गत दिवस ही देखा था, और सुना था कि मैं मुर्शिदाबाद-निवासी कोई नवाब हूँ, और उसके मालिक का क़रीबी रिश्तेदार हूँ। मुझे देखते ही मरीना ठुमुक-ठुमुक करती हुई मेरे पास दौड़ आई, और पाँवों से लिपट गई। मैंने झट से उसे उठा लिया, और बड़े प्रेम से उसके दो-चार प्यार लिए। मेरे मुँह की ओर ताककर मरीना एकदम खिलखिलाकर हँस पड़ी, और अपनी प्यारी बोली में बोली—"अले बला मजा आया! अमीलुद्दीन चच्चा का आत कत गया! ओहो, बला मजा उआ!" मैंने एकदम सशंक होकर परिचारिका से पूछा—"मरीना क्या कहती है?"

परिचारिका बोली—"हमारे यहाँ ज़फ़र नाम का एक ख़ानसामाँ है। उसने कल रात को अमीरुद्दीन के हाथ पर कटारी फेंक मारी थी।"

"अरे रे ! बहुत बुरा हुआ ! बहुत चोट आई क्या ? अमीरुद्दीन कहाँ है ?"

"चोट तो बहुत कुछ नहीं आई। मैंने ही तो उनके हाथ में पट्टी बाँधी थी। वह अपने घर होंगे।"

"और ज़फ़र कहाँ हैं ?"

"उसे नौकरी से छुटा दिया है। अमीरुद्दीन उसकी फ़र्याद करनेवाले थे; लेकिन ज़फ़र ने उन्हें धमकी दी कि अगर कुछ गड़बड़ करोगे, तो मैं तुम्हारी सारी क़लई खोल दूँगा, और सरकार-दरबार में ख़ूब टार-टारकर बदनामी करूँगा। बस, इसीलिये अमीरुद्दीन ने दबकर उसकी फ़र्याद नहीं की, और सिर्फ़ नौकरी से छुटाकर अपना ग़ुस्सा बुझा लिया है।"

मैंने मरीना को थोड़ी-सी मिठाई दी, और बुढ़िया से पूछा—"यह लड़की इस तरह दिन-पर-दिन सूखती क्यों जाती है ?"

वह बोली—"क्या कहें, नवाब साहब ? जब से मालिक साहब गुज़रे हैं, तभी से इस बेचारी की यह हालत होने लगी है। खाने-पीने के लिये तो ख़ुदा की पूरी मेहरबानी है, और इसके लिये किसी बात की कमी भी नहीं है। मीठा-सलोना सभी कुछ खाने को पाती है, मगर बेचारी मीठे-मीठे प्यार अब नहीं पाती ! वह अमीरुद्दीन साहब तो वल्लाह नवाब साहब ! इस बेचारी को तेल में देखते हैं।" इस प्रकार कहते हुए बुढ़िया का स्वर एकदम मंद हो गया, और वह बहुत ही धीमे स्वर में बोली—"और हुज़ूर ! इसकी मा भी इस पर निगाह नहीं रखती।"

"दिलारा अंदर है क्या ?"

"जी हाँ, हुज़ूर !"

मरीना को परिचारिका के सिपुर्द कर मैं तुरंत ही अंदर गया। दिलारा एक कोच पर स्वस्थ बैठी थी। मुझको देखते ही उसे बड़ा आनंद हुआ। वह हँसती हुई मेरी ओर आई, और आइए नवाब साहब !

आदि कहकर मेरा स्वागत करने लगी। अंदर उसने मुझे पान-सुपारी दी, और चाँदी का सुंदर हुक्का अर्पण किया। मैंने पान-सुपारी स्वीकार करते हुए हँसकर कहा—"दिलारा! मैं आपके कल के सत्कार से बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ। मैं आज आपको अपने घर भोजन के लिये निमंत्रण देने आया था, किंतु यहाँ आने पर मैंने कुछ और ही सुना। सुना है कि अमीरुद्दीन के हाथ में कटारी लग गई है। ज़ख़्म विशेष चिंतनीय तो नहीं है?"

दिलारा हँसकर बोली—"वाह! अजी एक बिलकुल ही छोटा-सा ज़ख़्म है, किंतु वह तो रात ऐसा ग़ज़ब का घबराया कि उस पर मुझे अब तक हँसी आती है। अजी ऐसा अजब डरपोक पुरुष मैंने आज तक कहीं देखा भी नहीं है। उस ख़ानसामाँ ज़फ़र की और अमीरुद्दीन की चार-पाँच माह से बनती न थी; कारण कि ज़फ़र से मेरे पति की निंदा सहन नहीं होती थी, और अमीरुद्दीन को निंदा विना चैन ही कहाँ था। आख़िर कल रात चटक गई। जब अमीरुद्दीन बाग़ में बैठा मेरे पति की निंदा करने लगा, बस, ज़फ़र ने कटार चला दी। अच्छा हुआ कि अमीरुद्दीन के तुरंत ही उठ बैठने पर वार चूका, और कटार हाथ पर पड़ी; नहीं तो कल उसकी बस गर्दन ही कट गई थी।"

"तो फिर ज़फ़र की फ़र्याद की गई या नहीं? उसे फ़ौजदार साहब के हवाले किया न?"

"नहीं, उसे काम पर से छुड़ा दिया है, बस!"

साथ में लाई हुई मिठाई और फूल-मेवा दिलारा को देता हुआ मैं बोला—"अच्छा, तो फिर ऐसे प्रसंग पर आपको निमंत्रण देना मैं समुचित नहीं समझता। अमीरुद्दीन साहब अच्छे हो जायँगे, तो फिर अवश्य आपको निमंत्रण देकर मैं प्रसन्न होऊँगा। अच्छा, अब मैं चलूँगा। अमीरुद्दीन से भी इसी समय अवश्य मिलना है।" दिलारा से इस प्रकार कहकर मैं बिदा हुआ, और फ़ौरन् अमीरुद्दीन के यहाँ पहुँचा। ज़ख़्म तो बिलकुल ही साधारण-सा था; किंतु वह बहादुर अपने पलँग

पर पड़ा-पड़ा ऐसा कराह रहा था कि मानो इस रिसालदार को लड़ाई में चार-पाँच गोली लग गई हों। मैंने उसे चार-पाँच शब्द धैर्य के सुनाए, और शांत किया। फिर मैंने उससे कहा—"अमीरुद्दीन! आप घबराएँ नहीं। विजय-श्री आपके ही गले पड़ेगी। यह घाव शोचनीय नहीं है। मैं अभी जाकर एक अच्छे जर्राह को बुलाए लाता हूँ, वह दो-ही-चार दिन में आपका हाथ अच्छा कर देगा।" इतना कहकर मैं तुरंत ही वहाँ से उठा, और एक होशियार जर्राह को बुला लाया। जर्राह ने चिकित्सा आरंभ कर दी, और धीरे-धीरे अमीरुद्दीन का हाथ अच्छा होने लगा। उस दिन से आठ-दस दिन तक मैं रोज़ ही अमीरुद्दीन के पास जाता और उसके ज़ख़्म के साफ़ करने, पट्टी आदि बाँधने के कार्य में सहायता पहुँचाता था। मेरा यह मित्र-धर्म देखकर अमीरुद्दीन बड़ा कृतज्ञ हुआ, और मेरे प्रति सहज ही उसके हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हो गई; और उसे यह विश्वास हो गया कि यह बुड्ढा नवाब मेरे और दिलारा के प्रेम-संबंध में बाधक न बनेगा। दूसरी ओर, इधर मैंने रोज़ ही दिलारा के यहाँ जाना आरंभ कर दिया। जब आठ-दस दिन बाद, अमीरुद्दीन अच्छा हो गया, और दिलारा के यहाँ आने-जाने लगा, बस उसी दिन से मैंने दिलारा के यहाँ जाना बंद कर दिया, और सात-आठ दिन तक उसके यहाँ बिलकुल नहीं गया। इससे मेरा यह मतलब था कि देखूँ दिलारा को मुझसे मिलने के लिये कितनी उत्सुकता होती है। मेरा अनुमान ठीक निकला। उन सात-आठ दिनों में मेरे यहाँ उसके पचीस बुलावे आए। जिस दिन अमीरुद्दीन घायल हुआ, उसी दिन से ज़फ़र कहीं भाग गया था। मैंने उसको बड़ी खोज के साथ ढुँढ़वाया, और अपने घर में बुला लिया। पहले तो उसे मेरा बड़ा डर लगा, और उसने यह समझा कि मैं उसे किसी संकट में डाल दूँगा, परंतु मैंने तुरंत ही उसे विश्वास दिला दिया कि मैं उसका बुरा चाहनेवाला नहीं हूँ। फिर वह मुझसे खुले दिल मिलने लगा। मैंने उससे कहा—"ज़फ़र! मेरे घर में तुझे कोई डर नहीं। मेरे यहाँ तेरा कोई बाल भी बाँका नहीं

कर सकता। सच बात यह है ज़फ़र कि उस कंबख़्त अमीरुद्दीन पर तो मुझे भी बड़ा क्रोध आता है। हम लोगों का ख़ानदान बड़ा ऊँचा है; फिर अमीरुद्दीन-जैसा कमीना ऐसे शरीफ़ ख़ानदान की स्त्री से निकाह करने की इच्छा करता है! रज़ील कहीं का! गीदड़ के सिर पर शाही ताज, वाह ख़ूब! सच जान ज़फ़र कि उसकी इस हिमाक़त से मैं सख़्त चिढ़ गया हूँ, और इस बदमाशी के लिये उसे भारी सज़ा भी देना चाहता हूँ। इसलिये तेरे उस काम से मुझे कोई भी रंज नहीं है, उलटा, मैं तुझ पर ख़ुश ही हूँ। लेकिन तेरा यह बुढ़ापा देखकर मुझे यक़ीन नहीं होता कि दरअसल वह काम तेरा ही था, या तुझ पर फ़िज़ूल ही एक तुहमत लगा दी गई, और असल में शरारत किसी दूसरे ही की रही हो। क्यों ज़फ़र! असलियत क्या है?"

ज़फ़र ने अत्यंत नम्रता-पूर्वक निश्चित स्वर में कहा—"हुज़ूर! ज़फ़र है तो ग़रीब, मगर झूठ कभी नहीं बोलता। हुज़ूर! वह हरकत मेरी ही थी; मगर क्या करूँ, जो चाहा था, सो न हो सका। मेरे मालिक की निंदा करने में तो वह जीभ पर कोई लगाम ही नहीं रखता। उस दिन मैं उसके पीछे ही खड़ा था, और उसकी सारी बातें सुन रहा था। सुनते-सुनते मुझे ग़ुस्सा आ गया, और मैंने एक बड़ी छुरी उसकी गर्दन को तककर चलाई; किंतु उतने ही में मामला बिगड़ गया; सामने से किसी ने कटार चलाई। कटार का चाँदनी में चमकना था कि अमीरुद्दीन मारे डर के चौंककर उछल पड़ा, और इसलिये वह कटार तो फ़िज़ूल गई ही, लेकिन साथ ही मेरी छुरी का भी नतीजा अच्छा न निकला। मेरी छुरी सिर्फ़ उसके हाथ में ज़ख़्म करती हुई दूर जा पड़ी; और इस प्रकार उस दिन उसकी मौत टली। लेकिन नवाब साहब! आप यक़ीन रक्खें कि यह ज़फ़र क़ब्रस्तान में जाते-जाते अमीरुद्दीन को एक दिन मज़ा चखा जायगा कि किसी की झूठी निंदा करके सुख की नींद सोना मुश्किल है।"

ज़फ़र की बात सुनते ही मैं उस रात का घुटाला समझ गया। मुझे यह जानकर सहज ही बड़ा समाधान हुआ कि अमीरुद्दीन और दिलारा

पर संतप्त बना हुआ मेरे सिवा कोई और भी उन पर दाँत कचकचा रहा है। ज़फ़र की जान में मैं उसके लिये नया मालिक था; किंतु मेरे लिये तो ज़फ़र वही पुराना ज़फ़र ख़ानसामाँ था, जो मुझे और मेरे पिता को भी खाना खिलाया करता था। मैंने उसे अपने यहाँ नौकरी कर लेने के लिये कहा। पहले तो उसने इनकार कर दिया; किंतु जब मैंने उससे बड़ा आग्रह किया, तब उसने मान लिया, और यह स्थिर किया गया कि नौकरीवाली बात दिलारा और अमीरुद्दीन से गुप्त रक्खी जाय। इस प्रकार फिर मुझे अपने सदा के ही ख़ानसामाँ द्वारा अपनी रुचि-अनुसार भोजन मिलने लगा। जब मैंने उसे कोई विशेष पदार्थ तैयार करने की आज्ञा करता, तो वह कहता था कि मेरे पहले मालिक भी यही चीज़ ज़्यादा पसंद करते थे। यदि मैं उससे कह देता कि नवाब पीरबख़्श ही असल में शहादतअलीख़ाँ है, तो उस वृद्ध के हर्ष का पार न रहता। परंतु जिस प्रकार नाटक का आरंभ करने पर अपना पूरा पाठ समाप्त किए बिना कोई पात्र विशेष अपना वेश नहीं बदल सकता, उसी प्रकार मैं भी अपना भेद उससे न कह सकता था। केवल इतना ही नहीं, वरन् मैं अपने परिवर्तित वेश को कभी भी न उतार सकता था, कारण कि दिलारा की नीचता ने मुझे शहादतअलीख़ाँ के वेश और शहादतअलीख़ाँ के नाम से रहने योग्य रक्खा ही न था। अस्तु, शहादतअलीख़ाँ की मृत्यु से ही मन को संतोष रहता है। अमीरुद्दीन की मृत्यु टल गई, सो भी एक रीति से अच्छा ही हुआ। मैंने कटार चलाई तो थी, किंतु यह मैंने कुछ अच्छा न किया था। उस समय मारे क्रोध के मेरी विवेक-बुद्धि मेरा साथ छोड़ गई थी, इसलिये मैं उस आवेग में भूल कर गया, और कटार चला ही तो बैठा। यदि अमीरुद्दीन उस कटार से मर जाता, तो मेरी वैर-कल्पना अधूरी ही रह जाती, और अमीरुद्दीन को उसके किए का यथार्थ फल न मिल पाता। अमीरुद्दीन के बच जाने से मुझे बड़ा हर्ष हुआ, और मैं यह जान गया कि ख़ुदा ने उसे कर्म-फल चखाने के लिये ही बचा दिया है।

दिलारा के यहाँ से मेरे लिये बुलावे-पर-बुलावे आने लगे, और एक बार उसने यह संदेशा भी भेजा कि मरीना मेरी बड़ी याद करती है। मरीना का नाम सुनते ही मेरा हृदय उछल पड़ा, और मैंने दिलारा का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। उस दिन उसने मुझे दोपहर को खाना वहीं खाने के लिये निमंत्रण भेजा था। नियत समय पर मैं उसके घर पहुँचा। मेरे स्वागत के लिये दिलारा बरांडे में ही खड़ी थी, और एक ओर अमीरुद्दीन भी टिका खड़ा था। दोनो ने हँसते हुए चेहरे से मेरा स्वागत किया। दिलारा के स्वागत में मुझे कुछ-कुछ रूसने की-सी छटा दिखाई पड़ी। उसकी दोनो ही बड़ी-बड़ी आँखों से कुछ चामत्कारिक भाव प्रकट हो रहे थे। हँसती हुई, किंतु कुछ बने हुए खिन्न स्वर में दिलारा बोली—"मैं तो समझी थी कि नवाब साहब को मुझ ग़रीब के यहाँ आना ही पसंद नहीं, फिर वह स्वयं ही हमारी सुध क्यों लेने चले चले? नवाब साहब की तबियत तो अच्छी है?"

मैं हँसता हुआ बोला—"मालूम होता है कि आप कुछ ख़फ़ा-सी हो गई हैं। मैंने कहा तो बेशक था कि आपके यहाँ रोज़ ही हाज़िर हुआ करूँगा; मगर इस दूकानदारी के मारे इधर फ़ुर्सत न मिल सकी, और इसलिये मैं लाचार रहा। मुर्शिदाबाद से एक व्यापारी शेला, शाल, साड़ी और खन वग़ैरा लाया था। उसके साथ मुझे दस-पाँच सर्दारों के यहाँ जाना पड़ा, और एक दिन शाही महल में भी गया। अस्तु, इन्हीं कामों की वजह से मुझे फ़ुर्सत न मिल सकी थी, मेहरबानी करके माफ़ कीजिएगा।"

"हाँ, ठीक बात है। आप तो पैसे के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। ऐसे-ऐसे मौक़े आपको बहुत मिलते होंगे। लेकिन आपने इतनी खटपट की, सो तो ठीक, मगर कुछ दल्लाली भी मिली कि नहीं?"

"हाँ, क्यों नहीं? दल्लाली क्यों न मिलेगी? मिली है, और मैं उसे साथ ही लेता भी आया हूँ।" इस प्रकार कहकर मैंने बग़ल से एक सुंदर ज़रतारी का कामदार बढ़िया बूटीदार शेला निकालकर दिलारा के

शरीर पर फेंक दिया। उस सुंदर एवं बहुमूल्य शेले को देखकर दिलारा बड़ी प्रसन्न हुई। उस शेले को शरीर पर ओढ़कर एक बार दिलारा ने तुच्छ दृष्टि से अमीरुद्दीन को ताका, और फिर मेरे सम्मुख हो हँसती हुई बोली—"नवाब साहब की पुत्र-वधू के योग्य ही यह शेला है। चलिए, पहले खाना खा लिया जाय, फिर फ़ुर्सत पाकर दीवानख़ाने में चलेंगे।"

दिलारा के आग्रह पर हम सब भोजन-गृह में भोजन करने के लिये बैठे। मरीना को मैंने अपनी गोदी में बिठा लिया। मुझे मरीना आनंद में दिखी; किंतु शरीर उसका बहुत सूख गया था। उसकी यह बीमारी देखकर मेरा कलेजा मुँह को आने लगा! भोजन करते-करते अनेक बातें निकलीं। दिलारा का और मेरा मीठा-मीठा मज़ाक़ आरंभ हो गया था, इसलिये हम दोनो के संभाषण से अमीरुद्दीन के हृदय में फिर संशय का भूत नाचने लगा। उसने समझ लिया कि सत्य ही नवाब साहब और दिलारा परस्पर प्रेमबद्ध हो गए हैं, इसलिये उसका चेहरा हिंसा के भावों से चामत्कारिक बन गया। वह बिलकुल गुपचुप बैठा-बैठा भोजन करता रहा; परंतु मैं उसे चैन कब देनेवाला था। अस्तु, मैं बीच-बीच उससे अनेकों प्रश्न पूछकर उसके मनोधैर्य की परख करता था! मेरी परख में अमीरुद्दीन बड़ा ही कच्चे हृदय का निकला। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि अमीरुद्दीन में इतनी भारी मानसिक दुर्बलता है। आज अमीरुद्दीन खीजा तो न था; किंतु हाँ, उसके क्रोध का आज कोई प्रमाण ही न रहा था। मैंने उसकी बीमारी में उसकी जो सेवा-शुश्रूषा की थी, उसके कारण वह प्रकट रूप से मेरे साथ विरोध करने में नितांत ही असमर्थ था। भोजन के उपरांत हम सब दीवानख़ाने में आए, और बैठकर पान-सुपारी खाने और हुक़्क़ा गुड़गुड़ाने लगे। मरीना मेरे पास ही बैठी थी। उसका मन आज बड़ा प्रसन्न था; इसलिये वह मुझसे बहुतेरे प्रश्न पूछती थी, और मैं उनका सरल उत्तर देकर प्रसन्न कर देता था। मरीना ने मुझसे कहा—"अमाला बाधा कुत्ता ऐ। बला अच्छा ऐ। तुमने देखा उछे?"

अपने परम प्रिय विश्वासी बाघा का नाम सुनते ही मेरे मन ने जो उछालें मारी, वह मैं ही खूब जानता हूँ। दिल्ली आने पर मैं रोज़ ही अपने बाघा की याद करता था; किंतु दूसरे के घर जाकर कैसे कहूँ कि अजी तुम्हारा जो बाघा नाम का कुत्ता है, वह कहाँ है, और कैसे है? मैंने मरीना को चूमकर कहा—"वाह! तुम्हारा बाघा चिथड़ों का होगा या लकड़ी-मिट्टी का होगा?"

मरीना मेरे गले में बाहें डालकर बोल उठी—"अले नईं, अमाला बाघा छच्मुछ का है! छब को कात खाता है, अमी छे नईं बोलता! अम उछकी खूब पूँछ खींछ-खींछकर माल लगाते एँ।"

मरीना को फिर मैंने चूम लिया, और बोला—"वाह! कौन बड़ी बात! कहो, तो हम उसका कान खींच दें।"

इतने में अमीरुद्दीन हँसता हुआ बोला—"बस कीजिए नवाब साहब! आपकी यह कोरी बात ही है। आप अगर बाघा का कान पकड़ेंगे, तो वह भी जनाब! बिना मुँह घाले रहने का नहीं। अजी साहब! वह कुत्ता क्या है, इस घर में एक आफ़त है, आफ़त!"

मैंने दिलारा से पूछा—"यह कुत्ता कैसा है आपका?"

वह बोली—'मेरे पति का पाला हुआ बाघा नाम का एक कुत्ता है। बड़ा ही विलक्षण प्राणी है! जब से वे गुज़रे हैं, रात-दिन घुरीया करता है। मरीना के पालने के नीचे बैठा करता है। मरीना उसकी पूँछ खींचा करती है, मारा-पीटा करती है, उसके मुँह में अपनी उँगलियाँ ठूँस-ठूँस देती है, इससे वह कुछ भी नहीं बोलता, किंतु दूसरों के लिये तो बस वह शेर ही है। मरीना की दाई से भी बाघा कुछ नहीं बोलता। वही उसकी बाँधा-छोड़ी कर सकती है, और कोई भी उसे हाथ नहीं लगा सकता। कभी-कभी रात को वह बुरी तरह गला फाड़-फाड़कर चिल्लाने लगता है, तब बस उसका यही इलाज किया जाता है कि बुढ़िया से बँधवाकर मरीना के सोनेवाले कमरे में पहुँचा दिया जाता

है। मरीना को देखते ही वह चुप हो जाता है, और चट उसके पालने के नीचे पड़कर सो जाता है।"

बाघा के जैसे प्रभु-भक्त कुत्ते की यह हालत सुनकर मेरा अंतःकरण कृतज्ञता से भर आया। हाय-हाय! सारे घर में स्वतंत्र होकर घूमनेवाले प्राणी के गले में केवल उसकी स्वामिभक्ति के ही कारण लोहे की ज़ंजीरें पड़ गईं! क्या यही इस जगत् का न्याय है? मैं दिलारा से बोला—"आपका बाघा चाहे कैसा ही ख़राब क्यों न हो, मुझे कदापि कोई नुक़-सान न पहुँचा सकेगा। मैंने कितने ही भयंकर कुत्ते सीधे कर दिए हैं। मैं यह नहीं कहता कि मेरे पास कुत्तों का कोई जादू है; बात असल यह है कि जो लोग कुत्ता पालने के शौक़ीन होते हैं, वे विशेष प्रकार से कुत्ते के ऊपर हाथ फेरकर उसे शांत कर देते हैं, और अपने से ख़ूब ही हिला लेते हैं। मुझे कई बार ऐसा मौक़ा मिला है। अगर देखना हो, तो आप अपना कुत्ता लाइए, और हाल ही देख लीजिए कि क्या चमत्कार होता है?"

दिलारा कुत्सित बुद्धि से हँसकर बोली—"अमीरुद्दीन साहब! कुत्ते को आप खोल लाएँगे क्या?"

अमीरुद्दीन बोला—"अजी नहीं जी! ख़ुदा के लिये मुझसे उसके बारे में कुछ न कहिए। उस दिन जो हाल हुआ था, सो भूल गईं क्या आप? अच्छा हुआ, जो फ़ौरन् ही वह बुढ़िया आ गई, नहीं तो उस दिन वह मेरा गला ही चबा डालता। अजी वह कुत्ता काहे को, पक्का ख़ूँख़्वार शेर है; बड़ा ही क्रूर है!"

दिलारा बोली—"सच है। उस दिन अमीरुद्दीन साहब के सर से दरअसल वह एक बड़ी बला टली। मरीना पालने में से उतरने के लिये रो रही थी। मैंने अमीरुद्दीन साहब से अर्ज़ की कि ज़रा मरीना को पालने पर से उतार लीजिए। मरीना अमीरुद्दीन को हाथ न लगाने देना चाहती थी; किंतु फिर भी अमीरुद्दीन उसे पालने से उतारने लगे, इतने ही में बस ग़ज़ब हो गया! बाघा दौड़कर इन पर झपटा और अगले दोनो पंजे इनकी छाती पर टेककर इनकी गर्दन पर मुँह घालने ही वाला था

कि अमीरुद्दीन ज़ोर से चिल्ला पड़े, जिसे सुनकर बुढ़िया दौड़ी आई, और कुत्ते को हटा ले गई। नहीं तो उस दिन बस—" इतना ही कहकर दिलारा अटक गई, और अमीरुद्दीन की सूरत देखने लगी, मानो यह देख रही थी कि अमीरुद्दीन का दर्प कितना उतर गया। फिर वह मेरी ओर फिरकर बोली—"ऐसे भयंकर कुत्ते को आपके पास बुलवाऊँ क्या?"

मैं हँसकर बोला—"मैं कह जो चुका कि ख़ुशी से जाँचकर देखो! वह कुत्ता चाहे जैसा ख़ूँख़्वार हो, मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता। और अगर मान भी लो कि मेरी फ़ज़ीहत भी कर देगा, तो मुझे लेश-मात्र बुरा न लगेगा।"

अमीरुद्दीन की इच्छा थी कि कुत्ते से मेरी फ़ज़ीहत हो, और मुझे कुछ चोट भी पहुँचे; परंतु साथ ही उसे यह डर भी था कि कहीं वह पाजी कुत्ता उसके ऊपर ही न टूट पड़े। अस्तु, उसने इस विषय में मौन ही रहना उचित समझा। दिलारा ने मेरी इच्छा देखकर कुत्ता लाने की आज्ञा दी। मरीना की बूढ़ी परिचारिका एक कोठरी में जाकर कुत्ता खोल लाई। बाघा अमीरुद्दीन को देखते ही घुर्राने लगा, इतने ही में मैं उठा, और बाघा के पास ही जाकर खड़ा हो गया। मित्रो! आप जानते ही हैं कि कुत्ते की घ्राणेंद्रिय बड़ी ही तीक्ष्ण होती है। मुझे सभी कोई भूल गए थे, किंतु वह नमकहलाल कुत्ता मुझे न भूला था। मेरे वेषांतर का बाघा पर कोई भी प्रभाव न पड़ा, और वह मेरे शरीर की गंध से मुझे पहचान गया। वह झट से मेरे पाँवों में लिपट गया, और अपनी पूँछ हिला-हिलाकर बड़े प्रेम से कूँ-कूँ करने लगा। यह देखकर दिलारा और अमीरुद्दीन, दोनो ही चकित हो गए। इस समय बाघा ने मेरे प्रति जो स्नेह-भाव प्रकट किया, उसका मैंने उसे समुचित बदला भी दिया। उसे मैंने भली भाँति पोंछा-पुचकारा, और दो-चार बार प्यार से थपथपाकर अगले दोनो पाँवों को पकड़कर उठा लिया। फिर उसे प्यार से लुढ़का दिया। वह भी उठ-उठकर मेरे ऊपर चढ़ने लगा, और दुम हिला-हिलाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करने लगा। धीरे-धीरे मैंने बाघा को हाथ

फेरकर शांत कर दिया, और जिस कोच पर मैं बैठा था, वहाँ ले जाकर उसे शांत हो बैठने की आज्ञा दी। बाघा ने तुरंत ही मेरी आज्ञा का पालन किया, और मेरे पाँवों पर ही लोटकर शांत हो बैठ गया; किंतु अमीरुद्दीन की ओर देखकर वह बीच-बीच घुर्राने लगता था। मैंने दिलारा की ओर देखा, तो उसका चेहरा बड़ा चिंतातुर पाया। कहीं मुझे दिलारा ने पहचान तो नहीं लिया है, इस संदेह ने उत्पन्न होकर मुझे भी चिंताग्रस्त बना दिया। मैंने अपने मुख-मंडल पर चिंता की एक रेखा भी उत्पन्न न होने दी, और हँसता हुआ दिलारा से बोला—'यह कुत्ता बहुत ही अच्छी नस्ल का है, इसी कारण मैं आपको यह चमत्कार दिखा सका। कहीं यह कुत्ता दोग़ली नस्ल का होता, तो मेरी बड़ी फ़ज़ीहत कर डालता। दो-एक बार मुझे ओछी ज़ात के कुत्तों से भी साबिक़ा पड़ चुका है, और उसने दो-चार जगह मुझे काटा भी है। किंतु यह कुत्ता वैसा नहीं है, बड़ी अच्छी ज़ात का कुत्ता है। मुर्शिदाबाद में मेरे घर पर भी ऐसे चार-पाँच कुत्ते पले हैं, और मुझे बचपन से ही कुत्तों का बड़ा शौक़ है! मेरे वालिद माजिद जब एक बार मक्के शरीफ़ गए थे, तो वहाँ से मेरे लिये एक बड़ी ऊँची ज़ात की जोड़ी लाए थे। अब तक कुत्तों का वह सुंदर जोड़ मेरे पास मौजूद है। कुत्तों पर प्रेम करनेवालों को अच्छी नस्ल के कुत्ते कभी कोई हानि नहीं पहुँचाते, और चट उनसे हिल जाते हैं।" मेरी यह चर्पट-पंजरी सुनकर दिलारा का चेहरा एकदम प्रफुल्लित हो गया। उसके मन का संशय तुरंत ही दूर हो गया, और वह बोली—"मेरे पति को भी कुत्तों का बड़ा शौक़ था। इस कुत्ते पर तो उनका बड़ा प्रेम था।"

अमीरुद्दीन से अब न रहा गया, और वह कुचेष्टा से बोल उठा—"कुत्तों का शौक़! और कुत्तों पर प्रेम!! वाह ख़ूब! कैसी-कैसी विचित्र प्रकृति के मनुष्य इस संसार में होते हैं!"

अमीरुद्दीन की यह क्षुद्रता, ख़ुदा मालूम, बाघा समझ सका या नहीं; किंतु वह अमीरुद्दीन के बोलते ही उसकी ओर देखकर घुर्राने लगा। मैंने बाघा को डपटकर चुप कर दिया, और फिर कुत्तों के विषय

मैं अपना खरा-खोटा मंतव्य उन्हें सुनाने लगा। मेरी बातों से दिलारा बड़ी प्रसन्न हुई, और उसका सारा संशय दूर हो गया। दोपहर से बैठे-बैठे अब रात हो गई थी, इसलिये मैंने दिलारा से घर जाने की आज्ञा चाही। वह मुझे और भी थोड़ी देर बिठाना चाहती थी; परंतु अल-स्सुबह ही मुझे एक बड़े ज़रूरी काम से जाना है, ऐसा कहकर मैंने उसकी आज्ञा प्राप्त की। हम लोगों की बातचीत सुनते-सुनते मरीना मेरी गोद ही में सो गई थी। दिलारा के इच्छानुसार मरीना को उसकी कोठरी में सुलाने और वहीं पर बाघा को बाँध देने का कार्य मैंने प्रसन्नता-पूर्वक स्वीकार कर लिया। मरीना को लेकर ज्यों ही मैं उठा, बाघा भी उठ खड़ा हुआ और मेरे पीछे-पीछे चल दिया। मानो इस घर के विषय में मुझे कुछ मालूम ही न हो, ऐसा भाव दिखाने के हेतु मैं जान-बूझकर मरीना के सोनेवाली कोठरी को छोड़ दूसरी ही कोठरी की ओर चल पड़ा। इतने ही में दिलारा हँसकर बोली—"अजी नवाब साहब! उस कोठे में नहीं; उसके बग़लवाले कोठे में मरीना का पलना है।" मैं तुरंत ही 'ओहो! भूला' कहकर मरीना की कोठरी की ओर मुड़ा। अंदर जाकर मरीना को पलने में सुलाते समय मैंने उसका प्यार लिया, और मारे प्रेम के मेरी आँखों में आँसू भर आए। मैंने तुरंत ही रूमाल निकालकर अश्रु-बिंदु सुखा डाले, और फिर ज़ंजीर से बाघा को बाँधकर कोठरी से जब मैं बाहर निकलने लगा, तो स्वामिभक्त बाघा कूँ-कूँ करके अपना प्रेम प्रकट करने लगा। अब मुझसे कोठरी के बाहर पाँव न डाला गया, और मैं तुरंत फिर कोठरी में लौट गया। बाघा को मैंने बड़े प्रेम से थपथपाया, और मन में कहने लगा, बाघा! मेरे परम प्रिय और विश्वस्त मित्र बाघा! मेरे अब तक के अनुभव में उपकार का बदला मैंने केवल तुझसे पाया। तू पशु है, किंतु मनुष्य से भी सहस्रगुणा अच्छा है; तू कृतज्ञ है। मनुष्यो, तुम्हें धिक्कार है! बाघा! तेरे स्नेह-ऋण से मैं आजीवन मुक्त नहीं हो सकता। बाघा! तू द्विपाद नर-पशुओं से कहीं श्रेष्ठ है। तुझे 'पशु' कहते हुए मुझे बुरा लगता है। मैं वेषांतर करके

सारी दुनिया से छिप गया, किंतु तुझसे न छिप सका। तेरी ही नाईं यदि मनुष्य भी नमक का सच्चा मूल्य जान लें, तो इस संसार से कृतघ्नता का सहज ही समूल नाश हो जाय। बाघा ! यदि तेरे-जैसा कृतज्ञ कोई मनुष्य मुझे मिल जाता, तो मुझे बड़ा हर्ष होता। अंतःकरण की वेदना का हाल कहने की इच्छा होती है; किंतु अपना दुःख किससे रोऊँ? इस संसार में मुझे अपना कोई भी नहीं दिखता। बाघा ! मेरे प्यारे विश्वस्त बाघा ! कुछ दिन और जैसे बने, यहीं गुज़ार, और अकारण ही अपना जी न जला। खुदा चाहेगा, तो जल्द ही मेरा और तेरा फिर सहवास होगा; नहीं तो जो उसकी मर्ज़ी ! मैंने फिर बाघा को थपथपाया और कोठरी से बाहर निकल आया, कारण कि उस कोठरी में मैं अधिक देर तक न रह सकता था। जो वेष मैंने ले रक्खा था, उसका पूरा-पूरा निर्वाह भी मुझे करना था। दिलारा बरांडे में आकर मेरी प्रतीक्षा कर रही थी, उसे आज सुंदर शेला उपहार में मिला था, इसलिये बड़ी प्रसन्नता थी। मैंने दिलारा से आज्ञा चाही, और उसने मुस्किराते हुए मुझे सादर सलाम किया। अमीरुद्दीन मुझे पहुँचाने के लिये मेरी गाड़ी तक आया। मैंने जान-बूझकर चलते-चलते अमीरुद्दीन के कंधे पर हाथ रखकर सहारा लिया, और बोला—अरे रे ! वृद्धावस्था भी यार ! बुरी होती है।" गाड़ी में सवार होते समय भी मैंने अमीरुद्दीन के हाथ की सहायता ली, और इस प्रकार से उसे परोक्षतः विश्वास दिलाया कि मैं वृद्धावस्था के कारण वस्तुतः बड़ा अशक्त हूँ। अमीरुद्दीन के चेहरे से मुझे प्रतीत हो गया कि वह मेरी कमज़ोरी देखकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ है।

दसवाँ प्रकरण

बालिका की मृत्यु

समय अपने कार्य में सदा तत्पर रहता है। चाहे आपको अपने कार्य में यश मिले, चाहे अपयश। चाहे आप हाथ-पर-हाथ धरे उदासीन बैठे रहें; समय को इसकी कोई भी परवा नहीं। वह तो अपनी सदा की नियमित गति से क़दम बढ़ाए चला ही करता है। मैं भी समय की नाईं अपने कार्य में सदा तत्पर रहा। आलस, उपेक्षा आदि को अपने समीप फटकने तक नहीं दिया। दिल्ली आए हुए मुझे पौने दो मास हो गए थे, और इतने ही थोड़े समय में नवाब पीरबख़्श का नाम सर्वतोमुखी बन गया था। सच बात तो यह है कि मित्रो! मुझे उस दुस्यु शैतानजंग ने ही इतना प्रसिद्ध किया था; कारण कि न मैं काले बुख़ार से मृत्यु के पंजे में पकड़ा जाता और न उस अथाह संपत्ति को प्राप्त कर सकता, जिसे शैतानजंग ने कृपा करके मेरे मक़बरे में जा रक्खी थी। आप जानते ही हैं कि नवाब पीरबख़्श की प्रसिद्धि का कारण केवल यह अथाह लक्ष्मी ही थी। यदि मुझे यह धन-दौलत प्राप्त न हुई होती, तो मुझे बदला लेने के लिये दूसरे ही प्रकार का जाल रचना पड़ता, और उनमें कदाचित् मुझे विशेष प्रयास पड़ता।

दिल्ली जैसे विलक्षण वैभव-संपन्न शहर में मैं इतने शीघ्र ऐसी भारी प्रसिद्धि पा गया, इसका कारण यही था कि मेरे ऊपर लक्ष्मी की पूरी कृपा थी। राजमहल को भी लज्जित कर दे, ऐसा सुंदर मेरा मकान था। मेरे पास बहुमूल्य रत्नों और अलंकारों की कोई कमी न थी। मेरे नौकर-चाकर चतुर थे, और सदा उत्तम वस्त्रों और अलंकारों से सुसज्जित रहते थे। मेरे चढ़ने की घोड़ागाड़ी सारे दिल्ली-शहर में सर्वोत्कृष्ट

थी। मैं खुले हाथों ग़रीब-ग़ुरबों को दान देता था। अतिथि-अभ्यागतों का बड़ा सत्कार करता था, अपने मित्रों के सुख-चैन के लिये पानी की नाईं लक्ष्मी बहाता था, नाच-रंग और जलसे कराया करता था, और सप्ताह में दो-एक भोज दे दिया करता था। अस्तु, ऐसी स्थिति में मेरा नाम न होता, तो किसका होता? इसी कारण मैं दिल्ली-भर में प्रसिद्ध हो गया था, और बड़े-बड़े धनी और राजा-रईस मुझे बड़े मान-सम्मान की दृष्टि से देखते थे। अस्तु, सभी छोटे-बड़े मेरी चर्चा करते थे, और मेरी अटूट संपत्ति पर आश्चर्य प्रकट करते थे। मित्रो! संसार में प्रसिद्धि पाने के लिये व्यक्तिगत सद्‌गुणों की कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती; आवश्यकता है केवल लक्ष्मी की। यदि आपके पास संपत्ति है, तो बस सभी कुछ है; फिर चाहे आप मूर्ख हों, तो भी लोग आपको विद्वान् कहेंगे; आप चाहे जैसे कंजूस रहें, लोग आपको उदार की पदवी देंगे; आप निष्ठुर हों, तो भी कोमल कहलाएँगे; आप चाहे जैसे तिरस्कार-पात्र एवं नीच हों, लोग आपको माननीय और कुलीन बताएँगे; आप चाहे जैसे बदचलन हों, किंतु बड़े सच्चरित्र और नेक ठहराए जायँगे; आप चाहे जैसे कुरूप हों, फिर भी बड़े सुंदर समझे जायँगे। सारांश यह कि इस संसार में मनुष्य के सभी दुर्गुण लक्ष्मी के ढकने के नीचे ढक जाते हैं, और यह ढकना भी ऐसा विचित्र पारदर्शी है कि इसमें होकर वे सभी दुर्गुण सद्‌गुण दिखाई पड़ते हैं।* मित्रो! मूर्ख, निष्ठुर और इंद्रियलोलुप मनुष्य भी लक्ष्मी की कृपा से ख्याति पा जाते हैं, फिर मेरे-जैसे शुद्ध बर्तावबाला दातार पुरुष लक्ष्मी की कृपा से सारे

---

* किसी ने कहा भी तो है—

"यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पंडितः स श्रुतवान् गुणज्ञः;
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।"

दिल्ली-शहर में सुप्रसिद्ध हो गया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? उस समय मुझे मनुष्य-समाज का बड़ा अच्छा अनुभव मिला। कितनी ही प्रकार की मनोवृत्तियोंवाले मनुष्य अपना-अपना स्वार्थ साधने की नीयत से मुझसे मिला करते थे। मित्रो! मनुष्य के अंतःकरण में जब स्वार्थ-नामक भयानक विषैला नाग अपना तीक्ष्ण दंश-प्रहार करता है, तब मनुष्य उस ज़हर से उन्मत्त बन जाता है, और फिर अपने मनुष्यत्व तक को तिलांजलि देने के लिये उत्सुक बन जाता है। अब आप ही विचार कर देखिए कि यह स्वार्थ कैसा विषधर है, और इसका विष कितना भयंकर है!

मेरा अनुग्रह प्राप्त करने के लिये अनेकानेक लोग नाना प्रकार के प्रयत्न करते रहते थे। योग्य कारण हो या न हो, लोग मुझे दावतें भेजते थे, और विशेषतः विवाहातुर सुंदर लड़कियों के माता-पिता तो मेरे ऊपर एक प्रकार से निमंत्रणों की वृष्टि ही बरसाया करते थे। ऐसे कितने ही भले गृहस्थों के निमंत्रण मैंने स्वीकार किए, और उनके यहाँ भोजन के लिये गया। भोजन करते समय और उसके बाद भी, जब-जब उन्हें समय मिलता, मेरे सामने अपनी कन्या के गुण-गान करते थे, और उस कन्या को बना-ठनाकर कुछ परोसने के बहाने या पान-सुपारी देने के बहाने मेरे समक्ष बुलाते थे, और कई प्रकार से कितने ही उद्योग करके मुझे रिझाने के प्रयत्न करते थे। शाबाश री लक्ष्मी! तू जो न करा दे, सब थोड़ा है!! मेरे ऐश्वर्य ने उन भले आदमियों की आँखें चौंधिया दी थीं। संपत्ति ने उनकी आँखों और समझ पर ऐसा परदा डाल रक्खा था कि वे लोग मेरी वृद्धावस्था और श्वेत बालों का कुछ भी ख़याल न करते थे। मित्रो! यह अनुभव मुझे उसी समय हुआ कि द्रव्योन्माद न केवल उस द्रव्यवान् व्यक्ति की आँखों में चढ़ा रहता है, वरन् उसकी ओर देखनेवालों की आँखों में भी द्रव्योन्माद उत्पन्न हो जाता है।

केवल स्वार्थ-बुद्धि से ही मेरे पास लोग आया-जाया करते थे,

इसलिये उनके प्रति मेरे हृदय में तिरस्कार उत्पन्न होता था। परंतु मैंने रंगभूमि पर नट की नाईं वेश ले रक्खा था, इसलिये मैं उनका उत्साह भंग करना उचित न समझता था। समाज की और मेरी परस्पर विरुद्ध मनःस्थिति के कारण मेरा मन कुछ उदास रहता था। मेरी कार्य-सिद्धि के लिये जिन मनुष्यों की मुझे आवश्यकता थी, मैं उन्हें हर प्रकार से प्रसन्न रखने की चेष्टा करता रहता था। जिस प्रकार लोग मुझे बार-बार निमंत्रण देते थे, उसी प्रकार मैं भी उन्हें अपने यहाँ आमंत्रित करता था, और अच्छे-अच्छे भोजनों और इत्र, पान आदि से उनका सत्कार किया करता था। दिलारा की ओर से मुझे दो बार भोज दिया जा चुका था। अस्तु, प्रत्युत्तर में मैंने भी दिलारा को अपने यहाँ आमंत्रित करना उचित समझा। उसे निमंत्रण देने के लिये मैं स्वयं ही उसके मकान पर गया। मेरे निमंत्रण के उत्तर में दिलारा ने कहा—"मेरे पति को मरे अभी छ मास पूरे नहीं हुए। अस्तु, ऐसी स्थिति में मेरा आपके यहाँ जाना मुझे अच्छा प्रतीत नहीं होता।"

पति की मृत्यु के शोक के कारण नहीं, वरन् लोकापवाद के भय से ही दिलारा ने मेरा निमंत्रण स्वीकार करना उचित नहीं समझा। वास्तव में दिलारा को केवल लोकापवाद का ही कुछ भय रहता था। मैंने सहानुभूति दिखाते हुए दिलारा से कहा—"दिलारा! इसमें तो कोई शंका ही नहीं है कि पति की मृत्यु के कारण तुझ पर भारी विपत्ति टूट पड़ी है; परंतु दिलारा! शोक की भी कोई हद हुआ करती है। तू तो पति-शोक में अपने को बरबाद ही किए डालती है। दिलारा! मुझ बुड्ढे का भी कहा कुछ मान, और व्यर्थ अपने हृदय को दुःख-ही-दुःख में डुबोए न रख। जितने दिन तूने शोक में काटे, उतने ही अधिक हैं। तुझ-जैसी सुंदर तरुणी को अपने सौंदर्य की रक्षा करनी चाहिए। पति-शोक में अनेक तरुण स्त्रियाँ श्रीहीना हो गई हैं, और उन्होंने अपने इस कार्य से अपनी सारी आयु व्यर्थ गँवा दी है। दिलारा! तू अपने को सँभाल, और वृथा शोक से सौंदर्य को धक्का न लगा। रही निमंत्रण की

बाल, सो मेरा घर तेरे लिये कोई जुदा थोड़े ही है। मेरा घर तो तेरा ही घर है। मेरे घर कोई स्त्री-मानस है नहीं, इसलिये चार आमंत्रित स्त्रियों के सत्कार के लिये तुझे मेरे यहाँ चलना ही चाहिए, यही मेरी इच्छा है।'' इन शब्दों के उच्चारण में मैंने ऐसा हाव-भाव दर्शाया, जिससे दिलारा को विश्वास हो जाय कि मैं रसिक हूँ।

दिलारा की तो इच्छा ही यह थी कि जिस प्रकार भी हो, इस वृद्ध श्रीमान् को अपने जाल में फँसाकर ख़ूब लूटे, और स्वयं ऐश्वर्य-संपन्न बन जाय। उसने मेरा कथन स्वीकार कर लिया, फिर प्रत्येक भोज में वह मेरे यहाँ आने लगी। वह मेरे घर आकर अन्य निमंत्रित स्त्रियों के आदर सत्कार में जो चाहती, ख़र्च करती थी। मैं इस विषय में उससे कुछ भी न कहता था, और खुले हाथ ख़र्च करने के लिये आवश्यकता से कहीं अधिक धन उसके हवाले कर दिया करता था। इस प्रकार मेरा और उसका स्नेह दिन-दिन बढ़ता ही गया।

दिलारा की नाईं अमीरुद्दीन को भी मैंने अपने जाल में फाँसने का प्रयत्न जारी रक्खा था। आहा! यदि अमीरुद्दीन से मैं केवल इतना ही कह देता कि मैं स्वयं शहादतअलीख़ाँ ही हूँ, और तुझे दंड देने के लिये ही मैंने यह वेश-परिवर्तन किया है, तो मित्रो! विश्वास रखिए कि वह मेरे यह वाक्य सुनकर मेरे सामने बैठा-ही-बैठा प्राण तज देता। किंतु मुझे इस प्रकार का बदला न लेना था। स्त्री के दुराचरण से पति के हृदय में कैसी वेदना होती है, यह मैं उसे अनुभव कराना चाहता था, और उसके स्वयं के ही पश्चात्ताप की अग्नि में उसका हृदय जलाकर भस्म कर देना चाहता था। अस्तु, यह आवश्यक था कि मैं उसका विश्वास-पात्र बन जाऊँ। इस कार्य-सिद्धि के लिये मैंने बड़ी ही अच्छी युक्ति लड़ाई। मैं जब उससे मिलता, तभी किसी-न-किसी प्रकार उसके हृदय में ऐश्वर्य-लिप्सा बढ़ाता था। मैंने उसके हृदय में ये बातें भी जमा दीं कि मैं एक तो वृद्ध हूँ, दूसरे निरा अरसिक हूँ, तीसरे दिलारा का निकट-संबंधी हूँ, चौथे मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि दिलारा अमीरुद्दीन-जैसे

पुरुष-श्रेष्ठ (!) के साथ ही निकाह पढ़ावें। मैंने उसे यह विश्वास दिलाया कि—आपने जो मेरे साथ स्नेह-संबंध किया है, उसी के इनाम में एक सच्चे मित्र की नाईं मेरा कर्तव्य है कि मैं आपके निकाह के लिये जो कुछ भी मुझसे हो सकता है, प्रयत्न करूँ, और दिलारा को उत्तेजित करूँ कि वह शीघ्र ही आपकी बन जाय। अमीरुद्दीन को अब मुझ पर पूरा-पूरा विश्वास हो गया था। पहले उसके हृदय में जो शंकाएँ उठा करती थीं, वे सभी शांत हो गई थीं। अब उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि बुड्ढे का स्वभाव ही ऐसा है, और दिलारा पर तो उसकी दृष्टि है ही नहीं।

दिलारा और अमीरुद्दीन, दोनो से मेरे एक-सा प्रेम रखने पर दिलारा को मेरे घर आने-जाने में किसी प्रकार की भी असमंजस न रह गई थी। पर दिलारा के घर पर मुझे खींच बुलाने की सामर्थ्य केवल दो प्राणियों में थी—एक मरीना और दूसरा बाघा। मरीना के लिये तो मेरे प्राण विकल रहते थे। उसे दिन-पर-दिन सूखती जाती हुई देखकर एक बार तो यह मन में आई कि इस बहुरूपिए-वेश को उतार फेंकूँ, और सभी कुछ भूलकर अपनी प्यारी मरीना को हृदय से लगाकर, कहीं दूसरे मुल्क में चला जाऊँ, और वहाँ रहकर उसका लालन-पालन करूँ। परंतु दिलारा का अधःपतन देखकर मेरा हृदय फिर धधक उठता था, और अंत में मैं यही निश्चय करता था कि बिना पूरा-पूरा वैर चुकाए मैं और कुछ भी न करूँगा। मरीना का प्रेम मुझे दिलारा के यहाँ खींच ले जाया करता था। मैं दिलारा के यहाँ जाकर थोड़ी-बहुत इधर-उधर की बातें करके तुरंत ही मरीना को याद करता और उसे गोदी में उठाकर साथ में बाघा को ले, उसके बाग़ में इधर-उधर टहला करता था। इस प्रकार अपने शोक-संतप्त हृदय को बहुत कुछ सांत्वना दे दिया करता था। धीरे-धीरे मरीना मुझसे बड़ा प्रेम करने लगी। कभी-कभी तो मरीना मेरे लिये खीज उठा करती थी, और दासी को ऐसा विकल कर दिया करती थी कि उस बेचारी दासी को मरीना को लेकर मेरे घर पर दौड़ आना पड़ता था।

एक दिन प्रातःकाल जब मैं घोड़ा दौड़ाकर घर लौटा, तो देखता क्या हूँ कि मरीना अपनी परिचारिका-सहित मेरे घर पर उपस्थित है। मुझे देखते ही मरीना मेरी ओर दौड़ी, और मैंने उसे उठाकर गोद में ले लिया। मरीना मुझसे अनेक प्रश्न पूछने लगी, और मैं भी उसे सरल शब्दों में उत्तर देकर प्रसन्न करने लगा। बहुत से उलटे-सीधे प्रश्न पूछ-पाछकर मरीना ने मुझसे कोई कहानी कह सुनाने के लिये हठ पकड़ी। निरुपाय होकर मैंने कहानी आरंभ की। मैं बोला—"एक था राजा और एक थी रानी। इस राजा के एक लड़की थी। ऐसे-ऐसे एक दिन राजा ने देख लिया कि रानी का चाल-चलन बुरा है। सो उस राजा को रानी पर बड़ा गुस्सा चढ़ा, और वह राजा जंगल को चला गया—"

मरीना बीच ही में बोल उठी—"लाजा लानी पर गुच्छा होकल चला गया; तो ललकी को काए को छोल गया? अच्छा ललकी के लिये जल्दी छे वल आ जायगा; क्यों नईं?"

इस सरल प्रश्न को सुनकर मेरी आँखों में आँसू भर आए। मैंने मरीना का प्यार लेकर कहा—"आएगा, ज़रूर आएगा। बाप अपनी बेटी को छोड़कर कहीं बहुत दिनों थोड़े ही रह सकता है।"

मरीना के कोमल गालों पर बाल्य-हास्य की छटा चमक आई, और वह बोली—"तब तो अमाले अब्बा बी जल्दी आएँगे। ओहो! तब तो बला मजा आएगा। अमीलुद्दीन चच्चा तो कैते ते के तू भोत बुली है, छो तेला अब्बा तुझछे गुच्छा होकल दूल चला गया। अच्छा, तुम बताओ, मैं अच्छी, कै बुली? अमाले अब्बा तो अमछे अच्छी कैते ते। अच्छा, तो अमाले अब्बा आएँगे न?"

मैंने फिर मरीना का प्यार लिया, और बोला—"हाँ हाँ, तुम्हारे अब्बा बहुत जल्दी आएँगे। तेरी-जैसी लड़की को छोड़कर उसे बाहर कहीं भी चैन मिलने का नहीं।"

मरीना ने फिर पूछा—"तो फिल किछ दिन आएँगे?"

धीरे-धीरे मैं अपनी परिस्थिति भूल-सा गया। मैं अपने मन में

बोला—'मरीना ! तेरा अब्बा तेरे पास आने का प्रयत्न कर रहा है। दो पिशाचों को उसे पूर्ण शिक्षा देनी है। उसका शिकार उसके चंगुल में फँसा कि वह तुरंत ही तेरे सम्मुख आ खड़ा होगा।' मैं अपने मन के भाव कदाचित् उच्च स्वर में बाहर निकाले ही देता था कि उसे बुड्ढी परिचारिका ने अपनी बड़बड़ाहट से मुझे होश में ला दिया। वह बोली—"नवाब साहब ! इस बेचारी को झूठी आशा आप क्यों दे रहे हैं? मरीना बड़ी हठीलिन है। वह फिर बार-बार रोज़ ही पूछेगी कि अब्बा कब आएँगे। नवाब साहब ! मरे हुए भी कभी लौटा करते हैं ? हुज़ूर ने हमारे मालिक साहब को देखा नहीं है। हुज़ूर ! हमारे मालिक भी ख़ुदा बख़्शे बड़े नेक थे। नेक इंसान इस दग़ाबाज़ दुनिया में बहुत दिन नहीं जीते नवाब साहब ! ऐसी पाकरूहें अपना काम ख़तम करके बहुत जल्द ख़ुदा के पास चली जाया करती हैं। हमारे मालिक को मौत भी कैसी मिली ! अल्लाह मौत दे, तो ऐसी दे ! हुज़ूर। मेरे मालिक को मौत की तो कोई तकलीफ़ ही नहीं हुई। बड़े आराम से बस थोड़ी ही देर में कुछ-का-कुछ हो गया। उन्हें कुछ मालूम ही न पड़ा होगा। मुझे इस लड़की का भी बड़ा डर है। अल्लाह इसे जीती रक्खे। मेरे नेक मालिक की यही एक पाक यादगार है।" बोलते-बोलते बुढ़िया की आँखों में आँसू भर आए। आँसू पोंछती हुई फिर बोली—"नवाब साहब ! क्या कहूँ ? इस बच्ची की तबियत का मुझे कुछ हाल ही नहीं मिलता। दो-चार वक़्त मैंने बेगम साहबा से कहा भी कि इसे किसी अच्छे हकीम को दिखलाइए और माक़ूल इलाज कराइए, लेकिन हुज़ूर, नक़्क़ार-ख़ाने में तूती की आवाज़ ही कौन सुनता है ? उन्होंने मेरी बात पर कोई भी ग़ौर न फ़र्माया। नवाब साहब ! आप ही ज़रा इस पर कुछ ग़ौर करें। आपके लिये तो यह जान दिए रहती है !"

अब मैंने दिलारा का हृदय पहचाना। वात्सल्य-भाव के कारण वह बुढ़िया मुझे फ़रिश्ते की नाईं पाक लगती थी, और वात्सल्याभाव के कारण दिलारा मुझे शैतान-सी नापाक जँची। सचमुच ही मरीना दिन-

पर-दिन सूखती जा रही थी। दो-चार बार मैंने भी दिलारा से इस विषय में कहा था; किंतु उसने हँसकर यही उत्तर दिया था कि जब बच्चे बाढ़ पर होते हैं, तो दुबले ही हो जाया करते हैं। इसमें डरने की कोई बात नहीं। थोड़े दिनों में मरीना हृष्ट-पुष्ट हो जायगी।

दिलारा का यह कथन मुझे पसंद न पड़ा था; किंतु करता ही क्या? अब मुझे मरीना का बड़ा खटका हो गया, और उस बेचारी बालिका का भविष्य मुझे अशुभ प्रतीत होने लगा। फिर क्या करता? खुदा की मर्ज़ी पर ही मैंने उस निरपराधिनी बालिका को छोड़ दिया।

सफ़र * का महीना आरंभ हो गया था; इसलिये कुछ-कुछ सरदी पड़ने लग गई थी। शौक़ीन लोगों के यहाँ नाच-जलसे आरंभ हो गए थे। सभी अमीर-उमराओं के यहाँ दावतें होती थीं। मैंने भी इसी महीने में एक सुंदर और भव्य भोज देने की व्यवस्था की थी। मैंने अमीरुद्दीन से कहा था कि यह भोज मैं आप ही के सम्मान में दे रहा हूँ। दिलारा का जब आपके साथ निकाह होगा, तब मैं और भी दो-एक भोज दूँगा, और जलसे करके आपकी शादी की ख़ुशियाँ मनाऊँगा। इस दावत को आप उन मुबारक ख़ुशियों की पहली बिस्मिल्लाह समझिए। मेरी यह बात सुनकर अमीरुद्दीन बेहद ख़ुश हुआ, और फिर वह भोज-प्रबंध में मेरा हाथ बँटाने लगा। इसी प्रकार मैं अनेकानेक कार्यों द्वारा उसका उत्साह दिन-दिन बढ़ाने लगा, और वह भी बड़ा प्रसन्न रहने लगा। परंतु एक दिन अमीरुद्दीन मेरे पास बड़ा बुरा मुँह बनाकर आया। उसका खिन्न और उदास चेहरा देखकर मैंने उससे कहा—"दोस्त! आज आप बड़े ही उदास दीखते हैं! कहिए, ख़ैर तो है? कोई रुपए-पैसे की अड़चन आ पड़ी हो, तो मुझसे कहिए, मैं अभी जो आवश्यकता हो, आपको ला दूँ। अगर कोई और बात हो, तो भी मुझसे दिल खोलकर कहिए। जहाँ तक मेरा बस होगा, आपके काम में कोई बात उठा न

---

* 'सफ़र' एक मुसलमानी महीने का नाम है।

रक्खूँगा। आप-जैसे दोस्त की सहायता करना मैं अपना धर्म समझता हूँ।"

मेरे यह शब्द सुनकर अमीरुद्दीन का चेहरा कुछ खिल आया। वह हँसकर बोला—"मैं आपका अत्यंत ही कृतज्ञ हूँ नवाब साहब! पैसे-टके की मुझे कोई अड़चन नहीं है; किंतु मैं एक दूसरे ही असमंजस में पड़ गया हूँ।"

मैंने चिंतातुर बनकर फिर प्रश्न किया—"दिलारा के विषय में कुछ गड़बड़ी आ पड़ी है क्या? दिलारा के बर्ताव से तो मुझे यही निश्चय जान पड़ता है कि वह आप ही के साथ निकाह करेगी। क्यों, अब वह बदल गई क्या?"

"अजी नहीं साहब! उसके संबंध में कोई बात नहीं है। नवाब साहब! यह तो आप पूरा-पूरा विश्वास रक्खें कि दिलारा मुझसे नाहीं नहीं कर सकती।"

"हाँ, सो तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। दोस्त! आपने उस पर एक प्रकार से प्रेम-विजय प्राप्त की है। मैं तो बड़ा ख़ुश होऊँ, अगर वह आप ही के साथ निकाह कर ले, और भाई! कल करेगी, सो आज ही कर ले। मैंने तो ख़ुशियों के जलसे के लिये कब से इंतज़ाम कर रक्खा है। मगर यार! फिर आपको और क्या फ़िक्र आ पड़ी?"

मेरी बात सुनकर अमीरुद्दीन बोला—"और तो ऐसी कोई बात नहीं है; सिर्फ़ यह कि थोड़े दिन के लिये मुझे दिल्ली-शहर छोड़ना पड़ेगा।"

उसने ये शब्द इतने अधिक खिन्न स्वर में कहे कि यदि उन शब्दों का उच्चारणकर्ता अमीरुद्दीन को छोड़कर कोई और ही होता, तो निश्चय ही मेरे हृदय में बड़ी दया भर आती। किंतु बोलनेवाला अमीरुद्दीन था—वही अमीरुद्दीन, जिसके कारण मैंने जीवित रहते हुए भी अपने को मरा हुआ रहना ही पसंद किया था। इसलिये उसकी ऐसी स्थिति देखकर सहज ही मेरे हृदय को बड़ा आनंद हुआ। मैंने यह सोचकर कि ईश्वर ने मेरे ऊपर प्रसन्न होकर ही अमीरुद्दीन को किसी घुटाले में डाल दिया है, ईश्वर को मन-ही-मन धन्यवाद दिया। जिस प्रकार दो योद्धाओं

का द्वंद्व युद्ध हो रहा हो, और उनमें से एक हार मानकर रणांगन से पीठ फेर जाय, तो विजयी योद्धा को भारी प्रसन्नता होती है, उसी प्रकार की प्रसन्नता मैं अपने हृदय में अनुभव कर रहा था। मुझे यह जान और भी अधिक प्रसन्नता हुई कि अमीरुद्दीन के दिल्ली से टल जाने पर मैं अपनी प्यारी मरीना की कुछ दवा-दारू कर सकूँगा, और दिलारा पर भी अपनी जादू की लकड़ी घुमाकर अमीरुद्दीन को एक और घुटाले में फँसा देने का प्रयत्न कर सकूँगा। मेरे हृदय को इन सब बातों के सोचते हुए बड़ा ही आनंद हो रहा था। इस आनंद को मैंने मन-ही-मन अनुभव करते हुए ऊपरी भाव से कुछ खिन्नता प्रकट कर अमीरुद्दीन से कहा—"ऐं! आप यह क्या फ़र्माते हैं? क्या कोई भारी महत्त्व का काम है, जो आप शीघ्र ही दिल्ली से जा रहे हैं?"

अमीरुद्दीन ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया—"लखनऊ में मेरा एक चाचा है। उसके कोई लड़का-बाला नहीं है, और एकमात्र मैं ही उसका वली-वारिस हूँ। ख़बर आई है कि उसकी तबियत बहुत ही ख़राब है, और उसे अपनी ज़िंदगी का कोई भी भरोसा नहीं रहा है। उसके पास धन-संपत्ति भी अच्छी है। इसलिये यदि मैं समय पर उसके पास न पहुँचूँगा, तो बहुत संभव है कि मुझे भारी नुक़सान उठाना पड़े। परंतु कठिनाई तो यह है कि दिलारा को छोड़कर लखनऊ जाऊँ, तो कैसे जाऊँ? मुझे लखनऊ में अधिक दिन लगने के नहीं हैं, बहुत से बहुत तो पंद्रह या बीस दिन लगेंगे, बस। अस्तु, यदि उस समय तक आप—"

"हाँ-हाँ, बोलिए; आप सहमते क्यों हैं? जिस तरह पर भी आपको मेरी मदद की दरकार हो, मैं ख़ुशी से आपकी ख़िदमत के लिये तैयार हूँ।"

अमीरुद्दीन हँसते हुए बोला—"आपकी उदारता पर विश्वास करके ही मैंने आपको एक काम सिपुर्द करने की ठानी है। आप दिलारा के स्वभाव को तो जानते ही हैं। दिलारा है तो बड़ी चतुरा; किंतु मनोनिग्रह उसका दृढ़ नहीं है। उसके अनुपम सौंदर्य पर लुब्ध होकर अनेक जवान पुरुष उसके साथ निकाह कराने के लिये बातें कर रहे हैं। इसलिये नवाब

साहब ! मुझे डर है कि मेरी अनुपस्थिति में कहीं कुछ का कुछ और ही न हो जावे ?"

मैंने हँसते हुए कहा—"बस, इतनी-सी बात ? तो यह बात पीर-बख़्श के लिये क्या बड़ी है ? जाएँ, आप ख़ुशी से जाएँ। इस बात की कोई भी फ़िक्र न रक्खें। मैं आपसे वादा करता हूँ कि आपकी वापसी तक मैं उसे हर्गिज़ किसी के साथ निकाह न करने दूँगा। शहादतअलीख़ाँ के पीछे उस बेचारी विधवा का हित-अहित जिस होशियारी और जिस पद्धति से आप अब तक देखते रहे हैं, उतनी ही सावधानी और उसी पद्धति से मैं भी आपके पीछे दिलारा के हिताहित का ध्यान रखूँगा। दिलारा ने मुझसे जिस प्रकार आपकी प्रशंसा की है, उसी प्रकार वह आपके लखनऊ से लौट आने पर मेरी भी प्रशंसा करेगी, इसका मुझे पूर्ण विश्वास है। आप शहादतअली के जैसे परम विश्वासपात्र रहे हैं, वैसे ही आप इस बंदे को अपना परम विश्वासी मित्र समझकर विश्वास रखिए कि बंदा आपके काम को अपना ही काम जानता है।"

मैंने उपर्युक्त शब्द ऐसा गंभीर भाव धारण कर मुँह से निकाले थे कि अमीरुद्दीन को लेश-मात्र भी किसी प्रकार का संदेह नहीं हुआ; तथापि, सहज ही उसके चेहरे पर कुछ कालिमा झलक आई, कारण कि उसे मेरी बात सुनकर सहज ही याद हो आई कि उसने शहादतअली के साथ कैसा विश्वासघात एवं मित्र-द्रोह किया था। मैंने उस नीच को इस स्थिति में अधिक काल तक रहने देना उचित न समझकर फिर कहा—"दोस्त ! फिर भी आप निरर्थक चिंता में क्यों ग्रस्त हैं ? आप लौटकर देखेंगे कि पीरबख़्श किस ख़ूबी से अपने मित्र का काम अंजाम देता है। क्या आप बुड्ढे इस मित्र पीरबख़्श पर विश्वास रख सकते हैं ?"

"आप भी क्या फ़र्माते हैं। वल्लाह, नवाब साहब ! आप पर मेरा पूरा-पूरा यक़ीन है। वाह ! आप भी क्या बात करते हैं ? भला, आप पर अविश्वास !"

मैंने फिर गंभीर हो कहा—"हाँ, मित्र-धर्म तो यही कहता है।

भला, मित्रता में अविश्वास कैसा ?" मेरे यह शब्द सुनकर फिर एक बार उसका चेहरा कुछ बिगड़ा; किंतु फिर भी, उसे यही प्रतीत हुआ कि मैं निष्कपट वृत्ति से ही बोल रहा हूँ। उसे यह संशय नहीं हुआ कि मेरा सारा ही भाषण द्व्यर्थक हो रहा है। जाने के उद्देश्य से जब वह सलाम करके उठा, तो मैंने बड़े प्रेम से उसका हाथ पकड़ लिया, और बोला—"आप इस प्रकार अचानक ही थोड़े समय के लिये दिल्ली छोड़ रहे हैं, इसलिये मुझे बड़ा बुरा लग रहा है। परंतु साथ ही यह सुनकर कि आप लखनऊ जाकर बहुत-सा धन-संपत्ति प्राप्त करेंगे, मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ हूँ। दोस्त, मैं छुटपन से ही द्रव्योपासक हूँ, इसलिये जहाँ कहीं धन-दौलत की बात सुनता हूँ, मारे ख़ुशी के उछल जाता हूँ। दोस्त! मैं अच्छी तरह जान गया कि आपका सितारा अब बुलंदी पर पहुँच गया है। देखिए, उधर तो आप अपने चचाजान की माल-मिल्कियत पर क़ब्ज़ा करने जा रहे हैं, और इधर दिलारा-सी ख़ूबसूरत नाज़नी मय अपने मालोज़र के आपकी हो ही-सी चुकी है, और लखनऊ से आपकी जल्द वापसी के इंतज़ार में रहेगी। भई वाह! यह कहलाता है मुक़द्दर का खुलना। ज़र, ज़मीं, ज़न—तीनो ही ख़ुदा ने आपको बख़्शे। और, वे भी कैसे, जैसे दुनिया में ख़ुदा लाखों में किसी एक ही ख़ुशक़िस्मत को अता करता है। वाह-वाह! शहादतअली-जैसे की करोड़ों अशर्फ़ियों की दौलत, ज़ेवर और ज़मीन, दिलारा-सी लासानी नाज़नी मानो हिंदुओं के राजा इंद्र की अप्सरा, और फिर मज़ा तो यह कि हिंदुओं की तरह दान पर दक्षिणावाला मज़मून कि इस अटूट दौलत के साथ आपके चचाजान का मालोज़र भी आपको अचानक ही मिल रहा है। भई वाह! इससे ज़्यादा और क्या ख़ुशक़िस्मती हो सकती है! लीजिए जनाब! इसकी ख़ुशी में मैं एक बड़ा जलसा और दावत देने का इक़रार करता हूँ, और इस तरह अपने दोस्त की ख़ुशनसीबी पर अपनी दिली ख़ुशी रऊसान देहली पर ज़ाहिर करूँगा। भला, वह दोस्त ही क्या कि जो—

"दोस्त की ख़ुशी से ख़ुश, और ग़म से ग़मगीन न हो।"

अब मेरी आपसे सिर्फ़ यही इल्तजा है कि जहाँ तक हो, आप लखनऊ से बहुत ही जल्द वापस आवें, ताकि मैं अपने हौसले निकालूँ, और दुनिया को दिखा दूँ कि दोस्ती का क्या हक़ है।"

मेरे इस भाषण से अमीरुद्दीन का चेहरा मारे ख़ुशी के दमक उठा, और वह बोला—"नवाब साहब! दरअसल आपके मेरे ऊपर सैकड़ों एहसान हैं, और मैं दिल से आपका शुक्रगुज़ार हूँ।"

प्रेम से अमीरुद्दीन का हाथ हिलाते हुए मैंने हँसकर कहा—"वाह-वाह! अजी साहब, एहसान कैसा? आप जब लखनऊ से तशरीफ़ लाएँगे, तब आपको ख़ुद-बख़ुद मेरे दिल की परख हो जायगी। मैं और क्या कहूँ? हाँ, आप जायँगे किस वक़्त?" अमीरुद्दीन ने मेरे दिल की परख का अर्थ किया एक बड़ा जल्सा और दावत, जैसा कि मैं अपने दिल की ख़ुशी प्रकट करने के लिये दिल्ली के श्रीमान् सर्दारों को देने का अभी-अभी उससे वचन दे चुका था। उसे कदापि यह शंका नहीं हुई कि इस दिल की परख से नवाब पीरबख़्श का सीधा-साधा ही अर्थ है।

अमीरुद्दीन अब मेरी बातों से मारे प्रसन्नता के फूला न समा रहा था। वह हँसते हुए बोला—"अजी नवाब साहब! मेरा काम होने दीजिए। मैं भी एक उम्दा जलसा और दावतें दूँगा। हाँ, मैं कल तड़के ही दिल्ली से रवाना हो जाऊँगा।"

"अरे! इतनी जल्दी? तब तो मैं आपके यहाँ सफ़र का सामान वग़ैरा बाँधने-बँधने में मदद देने के लिये शाम को आऊँ न? कल सबेरे तो आपसे अल्विदा कहने मैं आऊँगा।"

अमीरुद्दीन मेरे स्नेह की इतनी अधिक मात्रा देखकर सहज ही अति प्रसन्न हुआ। वह बोला—"मैंने सफ़र की सभी तैयारी कर रक्खी है। हाँ, कल सुबह को जो आपसे मुलाक़ात हो जायगी, तो आपका शुक्रगुज़ार होऊँगा। आपकी इजाज़त तो मिल गई, अब ज़रा दिलारा से भी मिल लूँ। मगर उसकी इजाज़त सहज ही मिलना दुश्वार है। अच्छा, तो अब है मुझे इजाज़त?" इस प्रकार कहकर अमीरुद्दीन ने फिर

एक बार मुझे लंबी सलाम की, और मेरे मकान से बाहर निकल गया।

अमीरुद्दीन का दिलारा पर विश्वास रखना, उसकी सरासर बेवक़ूफ़ी ही थी। उसकी इस बेवक़ूफ़ी पर मुझे बड़ी दया आई। उस बेचारे को बड़ी चिंता थी कि दिलारा से आज्ञा किस प्रकार मिलेगी? परंतु नित्य नवीन-नवीन भोग-विलासों के सुखों से बेहोश बनी हुई दिलारा अमीरुद्दीन के टल जाने से दुःखित होने के बदले अति सुख ही प्राप्त करने को थी। अमीरुद्दीन! अबे काठ के उल्लू अमीरुद्दीन! मैं भी एक समय तेरे ही नाईं प्रेम-काव्य से उन्मत्त बना हुआ केवल दिलारा को ही अपने विश्वास और आश्रय का स्थान समझता था, किंतु मेरा यह भ्रम तूने ही दूर किया। इसी प्रकार तेरा यह भ्रम अब मैं दूर करूँगा। परंतु तेरे भ्रम-निवारण के लिये जो दिव्य अंजन मैं तेरी आँखों में आँजूगा, वह इतना अधिक प्रखर है कि उसकी जलन को शांत करने के लिये तुझे मृत्यु की शीतल छाया की शरण लेनी होगी।

दूसरे दिवस सूर्योदय से पहले ही मैं अमीरुद्दीन के घर के सामने जा खड़ा हुआ। अमीरुद्दीन भी घर से निकलने की तैयारी में था। किराए की एक घोड़ागाड़ी उसके दरवाज़े पर जुती हुई तैयार खड़ी थी। गाड़ी में बैठते हुए अमीरुद्दीन ने मुझसे कहा— 'मैं महज़ आपके भरोसे पर ही दिल्ली छोड़ इतनी दूर जा रहा हूँ, इसका ख़याल रखिएगा नवाब साहब!"

"आप बिलकुल बेफ़िक्र रहें। दिल्ली में मैं हूँ, सो आप ही ख़ुद हैं, यही ख़याल रखिए। भला, मजाल है किसी को कि कुछ गड़बड़ कर जाय?"

मेरे इस वाक्य का उसने अपने लिये बहुत ही अच्छा अर्थ किया, और गाड़ी चलाने की आज्ञा देकर मेरी ओर झुककर सलाम करके मुस्किराने लगा। गाड़ी चल दी, और मुझे भी सूना-सूना प्रतीत होने लगा। इस आयु में जहाँ एक बार प्रतिस्पर्धी मित्रों अथवा शत्रुओं का थोड़े दिन सहवास होकर काट-छाँट और आड़-पेंच की चालें चलने लग जाती हैं कि फिर वहाँ प्रतिद्वंद्वी-हीन दिवस सचमुच बड़े ही भारू पड़

जाते हैं, और काटे नहीं कटते। परंतु इस समय अमीरुद्दीन का दिल्ली छोड़ जाना मेरे लिये एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। कारण, मुझे अब दिलारा से स्वतंत्रता-पूर्वक मिलने का अच्छा अवसर प्राप्त हो गया। मुझे इसी प्रकार अपना कार्य-साधन करना था। दूसरा मार्ग मुझे पसंद न था। आप जानते हैं, मित्रो! यदि मैं चाहता, तो कभी का किसी दिन भी दिलारा के पास जाकर उसके मुँह पर ही उसकी सारी पाप-कहानी सुना देता, और फिर एक तीक्ष्ण छुरे से उसका वक्षःस्थल चीरकर उसका पापी रक्त बहा देता। मेरे इस कृत्य से सारे दिल्ली-शहर में कोई भी अप्रसन्न न होता, वरन् सभी मुझसे प्रसन्न होकर 'शाबाश! योग्य ही शिक्षा दी', कह-कहकर मेरी पीठ ठोंकते; किंतु मुझे इस प्रकार का बदला मंज़ूर न था। मेरे मन पर परिस्थिति का ऐसा भारी दबाव पड़ गया था कि मैं उतावला होकर मनचाहा करने पर उद्यत होना न चाहता था। मैं तो यह चाहता था कि तराज़ू के एक पलड़े पर उसके पाप और दूसरे पर उसके पापों का प्रतिफल रखकर उसे अति उपयुक्त शिक्षा दूँ। मैं चाहता था कि उसने अपने पाप-कर्मों का जो भारी पर्वत तैयार किया है, वह उसी पर्वत के नीचे दबकर योग्य प्रतिफल प्राप्त करे। मैं चाहता था कि वह ऐसी शिक्षा ग्रहण करे कि जिससे वह मृत्यु को सहस्रगुणा अधिक श्रेयस्कर समझे। इस प्रकार का प्रतिफल देने के लिये, इस प्रकार वैर भँजाने के लिये, मैंने जिस मार्ग की योजना कर रक्खी थी, मेरी उस योजना में मुझे फलीभूत करने के निमित्त ही मानो ख़ुदा ने अमीरुद्दीन को दिल्ली से टाल दिया; ऐसा मुझे प्रतीत हुआ, और इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।

अमीरुद्दीन के यहाँ से चलकर मैं ज्यों ही अपने घर पहुँचा, त्यों ही मेरे एक नौकर ने मेरे हाथ में एक चिट्ठी दी। उसमें दिलारा के परिचित अक्षर दीख पड़े। मैं शीघ्रता से चिट्ठी खोलकर पढ़ने लगा। उसमें लिखा था कि 'मरीना की तबियत अचानक ही बहुत ही बिगड़ गई है। वह आपको बहुत याद करती है। यदि आप जल्द ही आएँगे,

तो बड़ा एहसान मानूँगी।' इस चिट्ठी ने मेरे दिल पर गहरी चोट पहुँचाई। ऐं! मेरी मरीना की तबियत बहुत बिगड़ गई है! यह ध्यान आते ही एक बार मेरा मस्तिष्क चक्कर खा गया, और मेरी आँखों में अँधेरा छा गया। हाय! हाय!! मेरे रक्त से बनी हुई मेरी प्यारी मरीना को क्या हो गया है? यह जानने के लिये मेरा हृदय धड़धड़ाने लगा, और मैंने व्याकुल होकर नौकर से पूछा—"यह चिट्ठी कौन दे गया? कब आया था? कुछ ज़बानी भी कह गया क्या?"

मेरे नौकर का चेहरा सूख गया था। मरीना कुछ समय से प्रतिदिन मेरे यहाँ आने लग गई थी; इसलिये मेरे सभी नौकर उससे प्रेम करने लगे थे। उसने शोक से कहा—"वही बुड्ढी दाई यह चिट्ठी लाई थी। उसे बड़ी उम्मीद थी कि हुज़ूर मकान पर ही मिलेंगे, लेकिन यहाँ आपको न पाकर उसकी आँखों में आँसू भर आए, और बोली—"आधी रात से बच्ची की तबियत एकाएक बहुत बिगड़ गई है। ख़ुदा ही ख़ैर करे, हुज़ूर!"

"हकीम को तो बुलाया ही होगा न?"

"जी हाँ, हुज़ूर! हकीम को बुलाया था; लेकिन—"

"लेकिन क्या?"

"लेकिन, हकीमजी बोले—"मुझे तुमने बहुत देर में बुलाया।"

यह सुनकर मेरा हृदय शोक से भर आया, और यह जी चाहा कि किसी कोने में बैठकर ख़ूब दिल खोलकर रो लूँ; परंतु हृदयावेग रोककर मैं तुरंत ही उल्टे पाँवों दिलारा की ओर चला, और जल्दी में नौकर से कहता गया कि कदाचित् आज शाम तक मैं मकान पर वापस न आ सकूँगा। मैं शीघ्र ही दिलारा के यहाँ जा पहुँचा। दरवाज़े पर एक नौकर खड़ा था। मैंने उससे पूछा—"क्यों, मरीना की तबियत कैसी है?"

अंदर दीवानख़ाने में एक लंबी दाढ़ीवाला वृद्ध गृहस्थ बैठा था। इस वृद्ध की ओर उँगली का संकेत करता हुआ वह नौकर बोला—"हुज़ूर, यह हकीम साहब बैठे हैं, वही आपको सब कुछ बताएँगे।"

हकीम साहब को सलाम करके मैं उनके पास बैठ गया, और अत्यंत विनीत हो उनसे मैंने प्रश्न किया—"बच्ची की तबियत कैसी है हकीमजी ?"

हकीम खिन्न स्वर से बोला—"उसकी तबियत के बारे में मैं कुछ भी ठीक-ठीक नहीं कह सकता। हाँ, अगर तबियत बिगड़ते ही दवा वग़ैरा दी जाती, तो कुछ फ़ायदा नज़र आता। लड़की की तबियत रात को बिगड़ी, और लौंडी मेरे पास सुबह पहुँची। मगर इसमें बेचारी लौंडी का क्या क़सूर ? वह बेचारी किसी वजह से रात को ही अपनी बेगम को ख़बर न दे सकी।"

मैं असल कारण तुरंत ही समझ गया कि दासी रात्रि-समय दिलारा को क्यों न उठा सकी। अमीरुद्दीन आज तड़के ही लखनऊ को जानेवाला था, इसलिये वह रात को दिलारा के यहाँ ही रहा था। अस्तु, स्वभावतः ही दिलारा ने अपने भोग-विलास में विघ्न न डालने के लिये नौकरों को पहले से ही ताक़ीद कर रक्खी होगी। ज्यों ही यह विचार मेरे मन में आया, त्यों ही मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो मेरे अंतःकरण में सहस्रों बिच्छुओं ने एक साथ ही दंश-प्रहार किए हों। मारे क्रोध के मेरा अंतःकरण जल उठा; किंतु अब भी बैर भँजाने का उपयुक्त समय न था, इसलिये मन-ही-मन अपनी क्रोधाग्नि छिपाए रहा, और सभी सदमे चुपचाप अपने दिल पर सहे। हाय रे हाय ! इस पैशाचिक व्यवहार का नाम है प्रेम !! प्रेम की यह कैसी भयंकर कल्पना है ? हाय-हाय ! पाशविक नाम-मात्र के सुख के लिये यह कैसा घोर राक्षसी अट्टहास है !! कवियो ! तुम इस 'प्रेम' के चाहे जैसे गायन गाओ; किंतु मुझे भोले-भाले लोगों को सचेत कर देने दो कि देखो भाइयो ! जो हृदय ऐसा वात्सल्य-शून्य होता है, उसी हृदय में यह आसुरी प्रेम निवास करता है। समाज के सभ्य व्यक्तियों का अधिष्ठाता देवता यही 'प्रेम' है। इस वाक्य का खरा अर्थ यह है कि ऐसी आसुरी वृत्ति ही जिनकी उपास्य-वृत्ति है, उन्होंने अपने शब्द-कोष में इस राक्षसी वृत्ति

को 'प्रेम' की संज्ञा दे रक्खी है। जिस प्रकार कुछ पूर्वीय ब्राह्मण नाम-धारी मनुष्य 'आप थुके औरन थुकावे' ऐसी थुकनी तंबाकू को 'ब्रह्म-पत्री' के नाम से पुकारते हैं, और भंग तथा गाँजे को क्रमशः शिवप्रिया (शिवजी की बूटी) और शिव-कली जैसे पवित्र नाम देते हैं; और जिस प्रकार शाक्त नामधारी मनुष्य मांस और मदिरा को महाकाली-प्रसाद नाम देकर जिह्वा को चटाके देते हैं; उसी प्रकार इस वात्सल्य-शून्य आसुरी वृत्ति का नाम उस वृत्ति के दासों ने 'प्रेम' रक्खा है। यह 'प्रेम' सभ्य और शिष्ट समाज की निज की संपत्ति है। इस 'प्रेम' के उपासक दिलारा-जैसी सुंदर स्त्रियों को ही अपनी उपास्य देवी और अमीरुद्दीन-जैसे पुरुष-श्रेष्ठ (?) को उस देवी का पुजारी मानते हैं, और अपनी आराध्य देवी पर अनुपम श्रद्धा रखते हैं। दिलारा! ओ प्रेम की देवी दिलारा! अरी राक्षसी! पति तो तेरे लिये कुछ था भी नहीं; यदि कुछ था भी, तो मानो वह भीत पर खिंचे हुए एक साधारण रेखाचित्र की नाईं था; जब चाहा, अपने स्मृति-पटल पर से हाथ फेर साफ़ कर डाला, और उसके स्थान पर दूसरा रेखाचित्र अंकित कर लिया। फिर जब चाहा, उसे भी धो डाला, और उसके स्थान पर, मनचाहे और जितने चाहे, दूसरे रेखाचित्रों को चित्रित कर डाला। यह तो तुझ-जैसी सर्व-शक्ति-संपन्ना प्रेम-देवी के बाएँ हाथ का काम हुआ करता है। अस्तु, शहादतअलीख़ाँ का चित्र अपनी स्मृति-पटल से मिटा देना तेरे लिये कुछ भी भारी काम न था; किंतु राक्षसिनी! क्या मरीना तेरी कोई भी न थी? अरे, उसे तो तू नौ महीने पेट में रक्खे रही थी। क्या उसकी भी तुझे कोई स्मृति नहीं? हाय-हाय! तेरा स्मृति-पटल काहे का बना है री राक्षसी दिलारा? अवश्य वह बड़े ही सख़्त पत्थर का बना है। हाँ-हाँ, ठीक है। जैसा पत्थर का तेरा कठोर हृदय है, वैसा ही तेरा स्मृति-पटल है। ख़ुदा ने ख़ूब ही नग-में-नग मिलाया है। मित्रो! ऐसी कठोर-हृदया स्त्री को भी यदि लोग मनुष्य समझते हैं, तो मनुष्यत्व का घोर अपमान करते हैं।

मुझे खिन्न, म्लान और चिंताग्रस्त देखकर हकीम बोला—"यह लड़की आपको बहुत याद करती है। आप ही के लिये तो वह अब तक जी भी रही है। लड़की की माँ समझती थी कि लड़की को कोई छूत की बीमारी है; इसलिये वह आपको बुलाना न चाहती थी; मगर मैंने ही बेगम साहबा से ज़ोर देकर आपके नाम चिट्ठी लिखवाकर भेजी थी। आप मेहरबानी करके तशरीफ़ लाए, यह बहुत अच्छा हुआ। आपको तो इस बीमारी का कोई डर नहीं है न?"

"मेहरबानी करके मुझे ऐसा डरपोक न समझिए। अगर मुझे ख़बर मिलती, तो मैं आधी रात को ही यहाँ दौड़ा आता। आपने जो दवा दी है, उससे कुछ फ़ायदा पहुँचा या नहीं? मैं उस बच्ची को देखना चाहता हूँ। क्या मुझे इजाज़त है?"

हकीम गंभीर स्वर में बोला—"गुस्ताख़ी माफ़ हो जनाब! भला, आप ही फ़रमाइए कि मुर्दे की भी कहीं दवा हुई है? मालूम होता है कि इस लड़की की तबियत बहुत दिनों से बिगड़ी है। इस लड़की का हक़ मारने की नियत से किसी ने इसे दो-तीन महीने पहले ज़हर दिया है; और ज़हर भी ऐसा दिया गया है कि जो धीरे-धीरे असर करे, और आख़िर जान ही लेकर टले। मुझे ताज्जुब है कि आज तक यह किसी को भी न सूझी कि आख़िर यह लड़की ऐसी घुलती क्यों जाती है? इसे किसी हकीम ही को दिखाया जाय। अब जब वह बिलकुल ही हो चुकी है, हकीम बेचारा क्या कर सकता है? ख़ैर, जो हुआ, सो हुआ। चलिए, उस कमरे में चलकर मरीज़ को देखें।"

मैं हकीम के पीछे हो लिया। मेरे अंतःकरण में दुःख और संताप के मारे आग जल रही थी। यह मुझे अब मालूम हुआ कि बेचारी मरीना दुष्ट अमीरुद्दीन के हृदय में इतनी अधिक क्यों खटकी। इसलाम के धर्मानुसार पिता की माल-मिल्कियत पर जितना हक़ बेटे का होता है, उतना ही बेटी का भी। अस्तु, अमीरुद्दीन ने अपने मार्ग का यह काँटा दूर करने के लिये स्वयं हो या दिलारा को भी मिलाकर दोनों ने इस

बेचारी को विष दे दिया। हाय-हाय! बेचारी निरपराधिनी बालिका पर इस राक्षसी जोड़ी ने कैसा ग़ज़ब ढाया! मेरे वैर की कल्पना इस घटना से दूनी हो गई। ठहरो! ठहरो!! नर-पिशाचो! तुम्हारे इन पापों का तुम्हें शीघ्र ही प्रतिफल मिलेगा। अगर मैं तुम दोनो की योग्य शिक्षा न करूँ, तो मेरे ऊपर ख़ुदा का ग़ज़ब टूटे! अगर मैं तुम दोनो को तुम्हारे कृत्यों का पूरा प्रतिफल न दूँ, तो ख़ुदा मुझे दोज़ख़ की आग में जलावे? मैंने अपने मन-ही-मन यह दृढ़ प्रतिज्ञा की। हकीम के साथ मैं मरीना की कोठरी में पहुँचा। एक साधारण गद्दे पर मरीना आँखें बंद किए हुए पड़ी थी, और पास ही वृद्धा दासी बैठी हुई थी। बाघा भी मरीना के पास ही बैठा था। मुझे देखते ही बाघा को सदैव बड़ा आनंद होता था, और वह उछल-उछलकर मेरे सहारे अपने दोनो पिछले पैरों पर खड़ा होकर पूछ हिला-हिलाकर अपना आनंद प्रकट करता था। किंतु आज बाघा बड़ा उदास बना बैठा था, इसलिये मेरे पहुँचने पर उसने मुझे देखते ही बैठे-बैठे एक-दो बार पूँछ हिलाई, और फिर बड़ी ही करुण दृष्टि से वह मेरी ओर टकटकी लगाकर देखने लगा। बाघा की दृष्टि से यह स्पष्ट प्रतीत होता था कि मानो वह मुझसे प्रार्थना कर रहा है कि मेरी मरीना को बचाओ! बाघा की यह हालत देखकर मेरा हृदय भर आया। बाघा! तू पशु है; फिर भी मेरी मरीना की रोग-शय्या के पास बैठा हुआ है; किंतु मरीना की जन्मदात्री दिलारा मुझे यहाँ नहीं दीख रही है!! दिलारा! अरी पिशाचिनी दिलारा! तू पशुओं से भी गई-बीती निकली!! हृदय में यह ध्यान आते ही मेरे क्रोध की सीमा न रही, और हज़ार प्रयत्न करने पर भी मेरा चेहरा अति विषण्ण और क्रोधयुत हो गया। मैंने दंतघर्षण करते हुए दासी से पूछा—"लड़की की माँ कहाँ है?"

बुड्ढी दासी यदि दुःख के मारे घबरा न गई होती, तो उसे भी मेरे क्रोध-भरे शब्दों को सुनकर आश्चर्य होता; किंतु वह दुःख के मारे स्वयं ही बेहाल थी, और इतने में मैंने भी अपने को सँभाल लिया।

बुढ़िया शोकातुरा तो थी ही, रोती हुई बोली—"बेगम साहबा अपने आरामगाह में हैं। वे समझती हैं कि बच्ची को कोई छूत की बीमारी है; इसलिये—"

जिसको अपना सौंदर्य ही सर्वस्व प्रतीत होता है, उसके हृदय में वात्सल्य भाव का लवलेश भी न होना स्वाभाविक ही है। मैं हृदय में ऐसे ही विचार कर रहा था कि मरीना ने आँखें खोलीं, और "बाबा आए!" इस प्रकार धीमे स्वर में बोली। "हाँ बिटिया! मैं तेरे पास ही हूँ। डर मत बिटिया!" इस प्रकार कहता हुआ मैं मरीना के पास ही जा बैठा, और उसके सुकुमार शरीर पर हाथ फेरने लगा। इससे मरीना को कुछ सुख-सा प्रतीत हुआ। बुढ़िया बोली—"सारी रात को ही याद करती रही है। अब आप आए, इससे बेचारी को कुछ अच्छा मालूम हुआ है।"

मैंने हकीम से प्रार्थना की—"देखिए, ज़रा फिर एक बार ग़ौर से देखिए। बच्ची के चेहरे पर तो ऐसा कोई ख़तरनाक फेर-फार हुआ नहीं है।"

हकीम दूर से ही बोला—"देखूँ क्या? हज़ारों मरीज़ों के चेहरे मरते दम तक ऐसे ही ख़ुश और खिले हुए बने रहते हैं। इस प्रकार कहकर हकीमजी ने एक ठंडी साँस ली, और कोठरी से निकलकर दीवानख़ाने में एक कोच पर जा बैठे। वात्सल्य प्रेम के कारण हकीम के कथन का मैं पूरा अर्थ न समझ सका। मैं फिर मरीना के शरीर पर हौले-हौले हाथ फेरने लगा। थोड़ी देर में मरीना ने फिर आँखें खोलीं, और बोली—"तुम अमाले अब्बा ओ? छ्ची कओ, अमाले अब्बा ओ के नाईं?" मैं कुछ भी न समझ सका कि मरीना के इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ। बुड्ढी दासी मरीना का प्रश्न सुन सिर पीटकर बोली—"अरी बच्ची! तू एक घड़ी के लिये भी अपने बाप को नहीं भूलती। बच्ची! कहीं तेरे बाप की ही पाक रूह तो तुझे बहिश्त से नहीं बुला रही है? ओहो! उस पाक रूह से तेरी यह तकलीफ़ काहे को देखी जा सकती होगी?"

मेरा हृदय द्रवीभूत हो गया। मैंने मरीना को गोद में उठा लिया, और बोला—"बिटिया ! ज़्यादा मत बोल। हकीमजी ज़्यादा बोलने के लिये मना करते हैं। थोड़ी देर गुपचुप पड़ी रह बिटिया ! तू अभी अच्छी हुई जाती है।"

मरीना फिर बोल उठी—"वो कैता ता के तेला अब्बा तुछ्छे गुच्छा ओकल चला गया। छच्ची अब्बा ! तुम मुछ्छे गुच्छा ओ-गए ते ?"

मैं और दासी, दोनो ही मौन साधे रहे। मरीना फिर बोली—"अब्बा ! मूँ छूकता ऐ; थोला पप्पा दो।"

हकीम की इजाज़त लेकर मरीना को मैंने थोड़ा-सा पानी पिलाया। अब मरीना ने आँखें बंद कर लीं। धीरे-धीरे उसका शरीर भी ठंडा हो चला। मरीना ने फिर एक बार आँखें खोलीं, और बड़े ही धीमे स्वर में बोली—"अब्बा !" उस समय मैं पागल-सा बन गया। मैंने उसे हृदय से चिपकाकर प्यार किया, और फिर गोदी में सुला लिया। धीरे-धीरे नाड़ी का वेग कम होता गया, और सभी अंतिम चिह्न दीखने लगे। उस समय मेरा हृदय क्या कह रहा था, यह केवल खुदा ही जानता है। उस समय मेरे प्राण व्याकुल थे, आँखों से अविरल अश्रु-धारा बह रही थी, और ऐसा प्रतीत होता था कि मानो कोई मेरा हृदय चीर रहा हो। उस समय मैं अपने आपे में न रह गया था, और इसलिये सहज ही मैं अपने वेशांतर को भूल गया, और अपने हृदय-रत्न को अपने हाथों से छिनता हुआ देख जो जी में आने लगा, सो ही मैं बकने लगा। मैंने दासी से कहा—"जा, दिलारा को बुला ला। कहना कि लड़की के प्राण जा रहे हैं, और तू अपने रंगमहल में बैठी हुई श्रृंगार कर रही है क्या ?" मेरे ये शब्द सुनकर बुढ़िया भी घबरा गई, और अति खिन्न स्वर में बोली—"नहीं नवाब साहब ! बेगम साहबा बड़े रंज में हैं। जब से मरीना की तबियत बहुत बिगड़ी है, तभी से उन्हें ग़श-पर-ग़श आ रहे हैं।"

'ग़श-पर-ग़श आ रहे हैं' यह सुनकर मानो मैं होश में आया। मेरी

मृत्युवार्ता सुनकर भी तो वह मूर्च्छित हो गई थी न ? मैं समझ गया कि अनिवार्य दुःख प्रकाशित करने के लिये ही दिलारा ने मूर्च्छितावस्था का बहाना किया है। सुंदर स्त्रियों की सभी कृतियाँ काव्यमय होती हैं। मैं भली भाँति समझ गया कि सुंदर स्त्रियों का अंतःकरण कैसा कठोर, नीच और तिरस्करणीय होता है। अत्यंत आश्चर्य है कि लोग सौंदर्य के बाह्य आडंबर पर ही मुग्ध बने रहकर अंतःकरण की परीक्षा नहीं करते। भाइयो ! मेरे अनुभवों से लाभ उठाइए। केवल शरीर की बाह्य चेष्टा या सौंदर्य आदि के आडंबर पर न रीझिए; पहले हृदय में बैठकर अंतःकरण की ख़ूब परीक्षा कीजिए, फिर यदि आप उचित समझें, तो उसके उपासक बनें या निंदक। किंतु केवल बाह्य आडंबर में ही न फँसे रहें। मेरा उदाहरण आपके समक्ष मौजूद है, इससे आप उचित शिक्षा ग्रहण करें।

गोदी में पड़ी हुई मृत मरीना की ओर एक बार फिर दृष्टि पड़ते ही मेरा हृदय धधकने लगा, और ऐसे ही में दिलारा की इस करतूत का ध्यान आते ही मानो उस धधकती हुई आग में घी की आहुति हुई। मैं क्रोध के मारे पागल हो रहा था। बहुत देर तक मैं ऐसी ही अवस्था में बैठा रहा; किंतु जब वह हकीम उस कमरे में आया, और मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोला—"नवाब साहब ! अब आपके अफ़सोस करने से क्या फ़ायदा ? चलिए, बाहर चलिए।" तब मैं सुध में आया। हकीम फिर बोला—"नवाब साहब ! अच्छा ही हुआ कि बेचारी लड़की की सारी तकलीफ़ात रफ़ा हो गईं, और अब यह किसी के भी राह का काँटा न रही।"

हकीम को कोई भी उत्तर न देकर मैंने मरीना के लिये एक छोटी-सी मृत्यु-शय्या तैयार की, और उस पर उसे सुलाकर उठ खड़ा हुआ। हकीम मेरा हाथ पकड़कर कोठरी के बाहर ले आया, और दीवानख़ाने में एक कोच के ऊपर हम दोनो बैठ गए। इतने ही में पीछे से दासी आई, और अति कातर स्वर में बोली—"हुज़ूर ! अब मरीना की मिट्टी के बाबत बेगम साहबा से जाकर कैसे पूछूँ ?"

मैं कुछ कहने ही वाला था कि हकीम बोल उठा—"वह लड़की तो बेगम साहबा के बनिस्बत नवाब साहब को ही अधिक पहचानती थी; इसलिये वही सब इंतज़ाम कर देंगे। ऐसी भारी बीमारी में 'मा' का लफ़्ज़ ही उस बेचारी बच्ची के मुँह से नहीं निकला, वह तो नवाब साहब को ही याद करती रही है। फिर ऐसी प्रेमालु मा को तू क्यों तकलीफ़ देना चाहती है। ओहो! बच्ची की तबियत ख़राब होने का हाल सुनते ही बेचारी को गश-पर-गश आने लगे थे। भला अब उसकी फ़ौत की ख़बर सुनने पर, ख़ुदा जाने, उसका क्या हाल हो जाय, इसीलिये कहता हूँ कि तू बेगम साहबा के गश में ख़लल न डाल!" हकीम के इन शब्दों से मेरा दुःख बहुत कुछ हलका हो गया, और मन में विवेक की जागृति हुई। यह तो मैं ही ख़ूब जानता हूँ कि मरीना की मृत्यु से मेरे हृदय को कैसी भारी चोट पहुँची; किंतु तथापि ज्यों-ज्यों मेरा दुःख कुछ हलका होता जा रहा था, त्यों-त्यों मरीना की मृत्यु से मुझे एक प्रकार का समाधान-सा होने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो मरीना की मृत्यु एक प्रकार से अच्छी ही हुई। कारण, यदि वह जीवित रहती, तो कदाचित् मुझे फिर किसी घुटाले में पड़ना पड़ता। उसके लालन-पालन के लिये मुझे फिर शहादतअलीख़ाँ के नाम से प्रकट होना पड़ता; और मरीना बेचारी को जीवित रहने से क्या लाभ मिलता? क्या जब मरीना बड़ी होती और अपनी निर्लज्ज जननी की कलंकित जीवनी सुनती, तो उसे अपने जीवन से मृत्यु सहस्रगुणा अधिक श्रेयस्कर प्रतीत होती। ऐसी स्थिति में यह पुण्यमय कलिका मरीना जितने ही शीघ्र इस पाप-साम्राज्य से मुक्त हुई, उतना ही अच्छा हुआ। मैं हकीम से बोला—"जो हो, लड़की की मा को लड़की का मृत्यु-समाचार अवश्य पहुँचाना चाहिए। मैं तो इस लड़की की मृत्यु से बड़ा ही हताश हो गया हूँ। अस्तु, आप ही यदि स्वयं बेगम साहबा के पास जाकर आगे का कार्य-क्रम निश्चय कर लावें, तो बहुत अच्छा हो।"

मेरे कहने से हकीम अंदर गया; किंतु तुरंत ही बाहर आकर हँसता

हुआ बोला—"बेगम साहबा को होश ही कब है ? वह तो मारे सदमे के बेहोश पड़ी हैं, और लौंडिएँ पंखे झल रही हैं। भला, ऐसे वक्त में उनसे क्या पूछा जा सकता है ? नवाब साहब ! अब आप मुझे इजाज़त दें, तो मैं घर जाऊँ। आप भी अब यहाँ क्या कर रहे हैं ? चलिए, आप भी चलिए ! या आप बेगम साहबा की इंतज़ारी करेंगे ?"

मैं भी अपने मकान चल देने का निश्चय करके उठा, और हकीम के साथ ही दीवानख़ाने से बाहर निकला। शव के पास वही बेचारी दासी बैठी हुई थी। जीवितावस्था में तो बेचारी मरीना की जो गति हुई, सो हुई; किंतु अब उसके शव की मुझे भारी चिंता थी। मैं कर ही क्या सकता था ? अपने वेश-परिवर्तन के कारण मैं उसकी अंतिम क्रिया स्वेच्छा-पूर्वक कैसे कर सकता था ? मैं अपने घर पर पहुँच इसी चिंता में मग्न बैठा था कि इतने में दिलारा का एक नौकर मेरे पास एक चिट्ठी लाया। पत्र में लिखा था—"शोक के मारे मैं पगली-सी बन गई हूँ, इसलिये मुझे कुछ भी सूझ नहीं पड़ता कि अब क्या किया जाय, और क्या नहीं। यदि आप मरीना के प्रेत को मेरे कुटुंब के मक़बरे में ले जाकर मुट्ठी-भर मिट्टी दे आवें, तो मैं आपकी बड़ी कृतज्ञ होऊँ। आप मरीना के धर्म-पिता हैं। अस्तु, यह शोक-समाचार आप कृपया अमीरुद्दीन को भी पहुँचा दीजिएगा।"

दिलारा के पास से आए नौकर से मैंने कहा—"अपनी मालकिन से जाकर कहना कि आज ही पत्र द्वारा अमीरुद्दीन को यह शोक-समाचार पहुँचा दिया जायगा, और मरीना की अंतिम क्रिया के लिये नवाब साहब भी अभी हाल ही आए पहुँचते हैं। बस, जा।" नौकर के जाने के बाद मैं अपने परिचित इष्ट-मित्रों को लेकर दिलारा के यहाँ पहुँचा, और बड़े समारंभ से मरीना के शव को क़ब्रस्तान ले गया। वहाँ पर पहुँच सबने मिलकर जगत्-माता पृथ्वी के गर्भ में मरीना को आश्रय दिया। आहा ! पृथ्वी माता तुम सभी को सच्चे वात्सल्य प्रेम से अपने उदर में आश्रय देती हो ! प्यारी बेटी मरीना ! तेरी रूह तो ख़ुदा के

पास पहुँच ही गई है; अब तेरी देह भी दयालु पृथ्वी माता की गोद में समर्पित किए देते हैं कि अमीरुद्दीन और दिलारा-जैसे नर-पिशाच तेरी देह को कोई भी त्रास न दे सकेंगे। अब माता पृथ्वी ने तुझे अपनी गोद में ले लिया है, इस कारण संसार में कोई भी तेरा बाल तक बाँका न कर सकेगा। अमीरुद्दीन! ऐ शैतान के बच्चे अमीरुद्दीन! मैं समझता था कि तेरे हृदय का अधःपतन केवल दिलारा ही के लिये हुआ है, परंतु-नहीं, यह मेरी भूल थी। अरे मुजस्सिम शैतान! मैं न जानता था कि तली में क्या-क्या गूढ़ रहस्य छुपे पड़े हैं। मैं न जानता था कि तू शैतान को भी मात करनेवाले ऐसे-ऐसे घोरतर पाप एवं मासूमों के ख़ून करने पर उतारू हो जायगा। अच्छा हुआ, जो मेरे ऊपर उस काले बुख़ार ने कृपा की, और इन्हीं आँखों को तेरी सारी करतूतें दिखा दीं, अन्यथा आज शहादतअलीख़ाँ तेरे ऐसे-ऐसे अद्भुत विष-प्रयोगों के वेग में किसी चरपइया पर पड़ा हुआ खूँ-खूँ और खुल-खुल करता होता, और तुम कामासक्त पिशाचद्वय अपनी रंग-रेलियों में मस्त होते। ऐ ख़ुदा! तूने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की कि जो मुझे ऐसा अद्‌भुत पुनर्जन्म देकर बचा लिया। करो, और ख़ूब ही जी भरकर जो भी अधमता और नीचता तुमसे हो सके, सो सब करो; किंतु याद रक्खो दुष्टो! तुम्हारे इन सभी पाप कर्मों का प्रतिफल देने के लिये ख़ुदा ताला ने मुझे शक्ति दे रक्खी है। उस पाक परवरदिगार की यही इच्छा है कि तुम दोनो को मेरे ही हाथ से पूर्ण प्रतिफल मिले, और इसी हेतु उस पाक बेन्याज़ ने मुझे ऐसा विलक्षण पुनर्जन्म दिया है! ख़ुदा ही जानता है कि मरीना को मिट्टी देते समय ऐसे-ऐसे कितने विचार मेरे हृदय में उठे। अंत्यविधि समाप्त होने के बाद हम सब क़ब्रस्तान से चलकर दिलारा के यहाँ आए, और अपनी जाति-रिवाज के अनुसार दिलारा से मिलकर और उससे सांत्वना की दो-चार बातें कह सब अपने-अपने घर गए। हम लोग जब दिलारा के यहाँ पहुँचे, तब दिलारा माथा धुन-धुनकर रो रही थी; और बीच-बीच सीने पर भी मुक्की मार अपने अत्यंत शोक एवं दुःख का

परिचय दे रही थी। उसकी यह दशा देख सबों के हृदय पिघल आए; किंतु उसका यह नाटक का-सा पार्ट देखकर मुझे भारी क्रोध चढ़ा। परंतु मैं कर ही क्या सकता था? कारण, मेरा सत्य अवतार प्रकट होने के लिये अब भी बहुत विलंब था।

ग्यारहवाँ प्रकरण

शिकार हाथ लगा

जिस प्रकार एक-एक दिन काल के गाल में जाने लगा, उसी प्रकार मेरे हृदय की व्यथा भी धीरे-धीरे कम होने लगी; किंतु मैं मरीना की मृत्यु के कारण अब भी अस्वस्थ था। इस अस्वस्थता के कारण मैं सात-आठ दिन तक घर से बाहर न निकला, और शारीरिक विश्रांति लेता रहा। और भी दो-चार दिन घर ही में बिता देने की मेरी इच्छा थी, किंतु इतने में ही मुझे दिलारा का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—

"मरीना की मृत्यु के कारण मैं बिलकुल बावली-सी हो रही हूँ, और किसी ओर चित्त नहीं जमता। मुझे आशा थी कि आपके दर्शन से और आपके मधुर भाषण से मेरा दुःख हलका हो जायगा; किंतु यह मेरा दुर्भाग्य है कि आठ दिन से मुझे आपके दर्शन ही नहीं हुए। मैंने आपके पास दो-चार संदेशे भी भेजे; किंतु उनका भी कोई उत्तर मुझे आपकी ओर से न मिला। मेरे नेत्र आपके दर्शन के लिये चकोर की नाईं बाट देख रहे हैं। मैं तो समझती थी कि मेरे शोक में सांत्वना देने के लिये आप इन तक आठ-दस दिनों निरंतर मेरे सान्निध्य में ही रहेंगे - "

पत्र पढ़कर मैं आश्चर्य से दंग हो गया। दिलारा! अरी राक्षसी! ऐसे पत्रों से तू मुझे फँसा नहीं सकती। मैं शहादतअलीख़ाँ नहीं हूँ, मैं तो विवेकी पीरबख़्श हूँ। इस पीरबख़्श की यह बड़ी ही ख़राब आदत है कि प्रत्येक पग वह बड़े ही सोच-विचार के साथ रखता है। मनुष्य का हृदय शीशे की नाईं स्वच्छ होना चाहिए। यदि मनुष्यत्व की यही निशानी हो, तो यह दिलारा पर भी ख़ूब लागू होनी चाहिए। दिलारा का हृदय भी शीशे की नाईं स्वच्छ था, परंतु कठोर भी वैसा ही

था। ख़ैर, यह बात जाने दीजिए। हाँ, दिलारा का हृदय ऐसा स्वच्छ था कि यदि कोई पुरुषोत्तम उसके सामने खड़ा होता, तो उसका प्रतिबिंब अवश्य ही दिलारा के आरसी-जैसे स्वच्छ हृदय पर उतर आता था। जब उसके सामने कोई न होता था, तब उसके स्वयं के ही सौंदर्य की प्रतिमा उसके हृदय में प्रतिबिंबित हुआ करती थी। सौंदर्य ही दिलारा का सर्वस्व था—उसकी संपत्ति, उसका वित्त, उसका सुख, अधिक क्या कहें, उसका शस्त्र भी सौंदर्य ही था। दिलारा अपने सौंदर्य ही के शस्त्र से जो सम्मुख आता था, उस पर जय प्राप्त करके उसे अपने सिंहासन के समक्ष नत कराती थी। कन्या का शोक तो उसे केवल एक कवि-कल्पना की ही नाईं था। भला, रसिक स्त्री-पुरुषों को शोक कैसा? अरे, शोक करना तो उनके लिये अत्यंत ही अनुचित है। कवि अपने पुत्र-पुत्रियों के लिये शोक नहीं करते। वे तो केवल अपनी प्रिया के लिये ही शोक करते, रोते-पीटते और गली-गली की ख़ाक छानते हुए दीख पड़ते हैं। मित्रो! कवियों के लिये तो उनका सर्वस्व उनका माशूक़ ही होता है, और उसी की वे आराधना, उपासना और प्रार्थना करते हैं; भला, वे किसी और को क्या पहचानें? अस्तु, दिलारा के रसिक हृदय पर भला मरीना के शोक-चिह्न काहे को प्रतिबिंबित होने चले थे? उसके हृदय में तो नवाब पीरबख़्श की ही भव्य मूर्ति झूल रही थी। दिलारा के अंतःकरण में मरीना का शोक तनिक भी न था; किंतु इस ध्यान से कि मरीना नवाब साहब को बड़ी ही प्यारी थी, दिलारा ने मरीना के शोक का ढोंग रच रक्खा था। जो नवाब साहब को भला लगता हो, वही करना दिलारा का धर्म हो गया।

दिलारा के भेजे हुए निमंत्रण को—और सच पूछिए तो उसकी भेजी हुई प्रेम-पत्रिका को—स्वीकार करके मैं संध्या-समय अपने घर से निकल दिलारा के यहाँ पहुँचा। माली बाग़ में पानी सींच रहा था, और मुख्य दासी दीवानख़ाने के दरवाज़े पर खड़ी थी। मल्लिका-मंडप पूरे बहार पर था, और धोबी की धोई हुई चद्दर की नाईं स्वच्छ एवं शुभ्र

बन रहा था। मैंने माली से कहा—"वाह-वाह ! मल्लिका तो ख़ूब ही फूली है।" मेरी बात सुनकर माली कुछ खिन्न स्वर में बोला—"मल्लिका फूली तो ख़ूब, मगर हुज़ूर ! क्या कहूँ ? हमारे मालिक साहब जिन फूलों को अपने बाप-दादों के पाक मक़बरे पर चढ़ाते थे, वे ही फूल अब—"

माली आगे बोलने की हिम्मत न कर सका। मैं भी वहाँ अधिक न ठहरा, और उसके पास से चल दिया। माली आगे क्या कहना चाहता था, सो मैं स्वयं ही समझ गया। हाय-हाय ! जिन पवित्र पुष्पों को मैं अपने पूज्य माता-पिता की क़ब्रों पर चढ़ाता था, वे ही अभागे पुष्प अब दिलारा की कलंकित और नापाक शय्या पर बिछाए जाते हैं। यह ध्यान आते ही मेरे हृदय में बड़ा संताप हुआ। मैं दिल मसोसता हुआ दीवान-ख़ाने की ओर मुड़ा। दरवाज़े पर दासी खड़ी ही थी; मैंने पूछा—"बुड्ढी दासी कहाँ है ?"

दासी बोली—"बुड्ढी तो नौकरी छोड़ गई। मरीना के मरने से बेचारी का इस घर में जी न लगा, और रोती-रोती चली गई।"

हाय ! कहाँ तो उस वृद्ध दासी का हृदय ! और कहाँ मरीना की जन्मदात्री इस राक्षसी दिलारा का हृदय !! मित्रो ! वह बुढ़िया दासी मेरे घर में मुद्दतों से थी, और मुझे भी उसी ने पाला था। मैंने उस दासी से कहा—"जा, अपनी मालकिन को ख़बर कर दे कि नवाब पीरबख़्श आया है।" मेरा यह संदेशा लेकर दासी अंदर गई, और तुरंत ही बाहर आकर बोली—"बेगम साहबा आपको अंदर ही बुला रही हैं। वे ख़ुद हुज़ूर के इस्तक़बाल के लिये आतीं, लेकिन उनकी तबियत अच्छी नहीं है।"

दासी आगे हो ली, और मैं उसके पीछे चल पड़ा। दिलारा के शयनागार में जाकर देखा कि दिलारा एक कोच पर बैठी है। मुझे देखते ही वह आँखों को रूमाल से पोंछती हुई बोली—"जब से मरीना गई है, यह निगोड़ा घर खाने को दौड़ा पड़ता है। हाय-हाय ! कैसा भायँ-भायँ लगता है। आप आवें, तो मेरा कुछ जी बहले। कितने दिनों से

आपकी बाट देखती हूँ। जनाब की तबियत तो अच्छी है न ? अमीरुद्दीन के पास से कोई ख़त आया क्या ?"

जिस कोच पर दिलारा बैठी थी, उसी कोच पर बैठना अनुचित जान मैं पास ही पड़े हुए एक दूसरे कोच पर बैठनेवाला था, किंतु दिलारा ने मेरा हाथ पकड़कर अपने ही कोच पर बैठने का आग्रह किया। मैं लाचार होकर उसी के कोच पर बैठ गया, और सहानुभूति से बोला—"मरीना को ख़ुदा ने उठा लिया, यह बहुत ही बुरा हुआ। पति की मृत्यु का दुःख अभी आपके हृदय में ताज़ा था ही, फिर उसमें यह नई चोट और पहुँची। ख़ैर, ख़ुदा की मर्ज़ी ! आज ही मुझे अमीरुद्दीन का ख़त मिला है। आपके पास भी उनका ख़त आया होगा।"

"हाँ, मेरे पास भी उनका ख़त आया है। मरीना के मृत्यु-समाचार से उनको भी बड़ा दुःख हुआ है। मरीना पर उनका प्रेम भी बहुत था। आपके पत्र में क्या लिखा है ?"

अमीरुद्दीन का पत्र मेरी जेब में ही था। उसमें मरीना के विषय में कुछ और ही लिखा था। पहले तो मेरा मन हुआ कि दिलारा को उसका पत्र न दिखाऊँ; किंतु फिर हृदय को कड़ा करके मैंने वह पत्र दिलारा के हाथ में दिया। दिलारा पत्र खोलकर पढ़ने लगी—

"जनाब नवाब पीरबख़्श साहब ! बहुत-बहुत सलाम। जनाब का नवाज़िशनामा मिला, और मरीना की फ़ौत का हाल मालूम हुआ। हुआ तो बेशक बुरा; लेकिन आप-जैसे दोस्त से मैं अपने दिल की बात क्यों छिपाऊँ। सच पूछिए, तो मरीना की मौत से मुझे एक तरह की ख़ुशी ही हुई है। अगर मरीना ज़िंदा रहती, तो हम दोनों को पूरी-पूरी ख़ुशी न मिल सकती; क्योंकि उस कमबख़्त के चेहरे में शहादतअलीख़ाँ की याद दिलाने का बड़ा ख़राब वस्फ़ था। पर, उसकी मौत हो जाने से अब हम दोनों को शहादतअलीख़ाँ की याद दिलानेवाला कोई रह ही नहीं गया; इसलिये उस लड़की का मर जाना मेरे लिये बहुत ही अच्छा हुआ।

"मेरा बुड्ढा चचा बड़ा पाजी है। कमबख़्त मरता भी नहीं है, और न जीता है। हकीम साहब उम्मीद दिलाते हैं कि एक हफ़्ते से ज़्यादा मेरा चचा जीने का नहीं है। अगर फिर भी बुड्ढे ने जीते ही रहने की ज़िद की, तो फिर उसके मालोज़र की उम्मीद छोड़ मैं दिल्ली चला आऊँगा; क्योंकि दिलारा के बिना मेरे दिल को चैन नहीं पड़ता। ख़ुदा ही जानता है कि मैं यहाँ अपने दिन कैसे गुज़ार रहा हूँ। मुझे आप पर भरोसा है कि आप दिलारा पर निगाह रखते होंगे। और—"

पत्र को अधूरा ही पढ़कर दिलारा ने मुझे वापस दे दिया, और बोली—"ओहो! कैसा निर्लज्ज है! दुनिया में ऐसे भी बेहया लोग हुआ करते हैं, यह तो मैं आज ही समझी। मुझे यह स्वप्न में भी ध्यान न होता था कि अमीरुद्दीन ऐसा असभ्य है। वह मेरे पति का परम मित्र था, इसी कारण मैं उसे भाई की नाईं समझती थी, और उससे स्नेह करती थी। यह मुझे आज ही मालूम हुआ कि उसने मेरे स्नेह का कुछ दूसरा ही अर्थ समझ रक्खा है। इस मूर्ख को यह क्या सूझी? आज तक मैंने उसके बर्ताव की ओर ध्यान नहीं दिया, यह उसी का परिणाम है।"

हाँ, यह तो दिलारा ने ठीक कहा। जिस दिन पहलेपहल अमीरुद्दीन ने दिलारा को पाप की दृष्टि से देखा था यदि उसी दिन दिलारा ने उसे झिड़क दिया होता, तो अवश्य ही शहादतअलीख़ाँ को नवाब पीरबख़्श का पार्ट न करना पड़ता। मैंने हँसते हुए दिलारा से कहा—"इस पत्र से अमीरुद्दीन की आशा कुछ जुदा ही प्रतीत होती है। केवल आपके पति का मित्र बनकर ही वह तृप्त नहीं हुआ, वरन् आपसे भी वह कोई संबंध करके अपने को धन्य बनाना चाहता है।"

दिलारा थोड़े रोष से बोली—"मुझसे संबंध? क्या निकाह? यह उसकी आशा है कैसी? सरासर दुराशा है। आप ही कहिए नवाब साहब! जो मैं अमीरुद्दीन के साथ निकाह कर लूँ, तो लोग मुझे क्या कहेंगे? क्या अमीरुद्दीन जानता है कि मैं इतनी भोली हूँ?"

दिलारा के इन शब्दों से मुझे बड़ा क्रोध चढ़ा; किंतु मैंने इस क्रोध को हृदय में ही दबा लिया। मित्रो! सहनशीलता की मुझे पूरी टेव पड़ गई थी। चाहे जैसा प्रसंग आ पड़े, मैं सभी कुछ अपने हृदय पर झेल लेता था, और अपने चेहरे पर यथार्थ भाव प्रकट न होने देता था। केवल शहादतअलीख़ाँ को फँसाकर ही दिलारा को संतोष न हुआ था, वरन् वह अमीरुद्दीन को फँसाकर नवाब पीरबख़्श पर भी हाथ साफ़ करना चाहती थी। इस समय रंगभूमि पर केवल मैं ही अकेला नट न था, वरन् दिलारा भी अभिनय करने के लिये कभी की रंगमंच पर क़दम रख चुकी थी। अब देखना केवल यही है कि कौन जय प्राप्त करता है। मैंने दिलारा की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। यह देखकर फिर बोली—"नवाब साहब! आप क्यों चुप हो रहे? आप बोलते क्यों नहीं हैं? क्या यह अमीरुद्दीन की दुराशा नहीं है?"

कुछ हँसकर, किंतु गंभीर स्वर से मैंने उत्तर दिया—"दिलारा! सच तो यह है कि तेरे निकाह वग़ैरा के बाबत मैंने कभी कुछ सोचा ही नहीं है, और न इस विषय में मुझे कुछ विचार करने की आवश्यकता भी दिखी। किंतु मैं नहीं समझता कि अमीरुद्दीन की इच्छा सर्वथा अनुचित है। अमीरुद्दीन तरुण है, और फिर सुंदरता में भी कुछ कम नहीं है। वह स्वयं ही एक दिन मुझसे कहता था कि मैं शहादतअलीख़ाँ से दसगुना अधिक सुंदर हूँ। अमीरुद्दीन चित्रकला में भी बड़ा निपुण दीखता है। अस्तु, ऐसे सुंदर, गुणज्ञ, रसिक एवं प्रेमी तरुण के साथ निकाह करने में मैं तो कोई भी आपत्ति नहीं समझता। मुख्य बात तो यह है कि अमीरुद्दीन आपसे पूर्णतः हिला-मिला है, और आपके पति का परम मित्र—"

मुझे आगे बोलने न देकर दिलारा बीच ही में बोल उठी—"किंतु मेरी दृष्टि में उसके साथ निकाह न करने के लिये अनेक कारण हैं, और उन सभी कारणों में एक मुख्य कारण यह है कि वह मेरे पति का मित्र था। मेरे अंतःकरण में अमीरुद्दीन के प्रति सहज ही लेश-मात्र प्रेम नहीं

है। अगर थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय कि मैं उसे थोड़ा-बहुत प्रेम करती भी होऊँ, तो भी वह मेरे पति का मित्र था, इस कारण मैं उसके साथ निकाह करना कदापि श्रेयस्कर नहीं समझती। ऐसे संबंध के विषय में लोग अनेकानेक अपवाद फैलाते हैं। अस्तु, ऐसा निकाह करके मुझे अपनी निंदा नहीं सुननी है।" इतना कहते हुए दिलारा मेरी ओर और सरक आई, और धीरे से मधुर स्वर में बोली—"जो मैं उससे निकाह कर लूँगी, तो लोग यही कहेंगे कि वह तो पहले ही से अमीरुद्दीन पर आशिक़ थी, और न-जाने उन दोनो की कब से घुट रही थी!" इतना कहकर दिलारा फिर कुछ ऊँचे स्वर में बोली—"आप ही कहिए नवाब साहब! कुलीन कुटुंब की कोई भी स्त्री ऐसा लोकापवाद सहन कर सकती है?"

दिलारा का यह कथन कुछ भी झूठा न था। इतना ही नहीं, किंतु बहुतेरे तो और भी बहुत कुछ कहते थे। शहादतअलीख़ाँ की मृत्यु के विषय में लोग, ख़ुदा जाने, क्या-क्या तर्क बाँधते थे। ऐसा भी एक लोकापवाद फैल रहा था कि काले बुख़ार का बहाना करकर अमीरुद्दीन ने शहादतअलीख़ाँ को मार डाला। कोई-कोई यह भी कहते थे कि दिलारा ने ही शहादत को ज़हर दिलवाकर मरवा डाला, जिससे अमीरुद्दीन से ख़ूब खुलकर बनेगी। दिलारा जानती थी कि अमीरुद्दीन के साथ उसका निकाह हो जाने पर फिर यह लोक-निंदा अत्यधिक उग्र रूप धारण कर लेगी। किंतु दिलारा ऐसे कच्चे दिल की न थी कि ऐसे लोकापवाद से डर जाती। उसको कच्चे हृदय की कहना तो उसका भारी अपमान करना है! मैं सहानुभूति दिखाता हुआ बोला—"दिल्ली-भर इस बात को जानती है कि नवाब पीरबख़्श दिलारा का कोई समीपी या दूर का रिश्तेदार है, और यह भी सारी दिल्ली जानती है कि नवाब पीरबख़्श कौन है, और उसे क्या सामर्थ्य है। इतना जानते हुए ऐसा कौन शख़्स शामत का मारा होगा, जो दिलारा की निंदा करे? किंतु दिलारा! सच-मुच ही क्या तू अमीरुद्दीन के साथ निकाह कराने में राज़ी नहीं है?"

दिलारा गंभीर स्वर में बोली—"कदापि नहीं। खुदा जाने आपके मन में ऐसी शंका ही क्यों उठी? अजी नवाब साहब! अमीरुद्दीन बड़ी ही क्षुद्र बुद्धि का मनुष्य है। अपने धर्म के अनुसार शराब का स्पर्श करना भी भारी पाप है; किंतु अमीरुद्दीन-जैसा शराबी तो मैंने आज तक भी कहीं नहीं देखा। फिर यह भी हो कि चार भले आदमियों में उसका कुछ मान-सम्मान हो, पर यह भी तो नहीं है। फिर भला, ऐसे मनुष्य के साथ निकाह मैं क्यों करने लगी? अमीरुद्दीन मेरे पति का मित्र था। बस, यही समझकर मैं उसे अपने यहाँ आने देती हूँ, अन्यथा मैं तो हृदय से उसका तिरस्कार करती हूँ।"

इस समय दिलारा का चेहरा लाल था, और ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह अमीरुद्दीन पर क्रोध के मारे काँप रही हो। मैं भी कुछ खिन्न स्वर में बोला—"तब तो बेचारे अमीरुद्दीन के हृदय पर निराशा की कुल्हाड़ी गिरेगी! तेरे-जैसी सुंदर स्त्री की आशा छोड़ना उसके प्राणों के लिये एक भारी संकट के समान हो जायगा। मुझे तो अमीरुद्दीन पर बड़ी दया आ रही है। किंतु साथ ही यह जानकर मुझे बड़ा आनंद हुआ कि तूने अमीरुद्दीन-जैसे साधारण मनुष्य को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया है, कारण कि—"

दिलारा बड़ी उत्सुकता और आग्रह से बोली—"कारण कि अमीरुद्दीन ने जो आशा बाँध रक्खी, उसकी वह आशा निष्फल हुई। अब कोई और ही तुम्हारी आशा लगाएगा।" यह कहकर मैंने हँसते हुए दिलारा की ओर देखा।

दिलारा ने हँसी का उत्तर हँसी में ही दिया, और फिर गंभीर बन खिन्नता से बोली—"किंतु अमीरुद्दीन किसी दूसरे का प्रवेश यहाँ क्यों होने देने लगा? मुझे तो उसका बड़ा डर लगता है। उसका स्वभाव बहुत ही बुरा है, और वह बड़ी ही क्षुद्र प्रकृति का मनुष्य है। उसने मेरे संबंध में झूठी आशा बाँधकर बड़ी मूर्खता की। मेरी ओर से अपनी आशा पर पानी फिरता हुआ देखकर अत्याचारी स्वभाव का अमीरुद्दीन

कदापि चुप न रहेगा। मुझे बड़ा डर है कि कहीं वह मुझे किसी घुटाले में न डाल दे। जब से वह लखनऊ गया है, मैं बड़ी अच्छी तरह से हूँ। मैं चाहती हूँ कि उसके दिल्ली आने के पहले ही मैं कहीं दूसरी जगह टल जाऊँ। क्या करूँ ? मुझे किसी का आश्रय भी तो नहीं है। केवल आप ही मेरे सगे-संबंधी हैं। यदि आप मेरे भविष्य के सुख-दुःख की चिंता अपने ऊपर ले लें, तो दुनिया को उचित भी प्रतीत हो, और मैं भी सभी झंझटों से छुट्टी पा जाऊँ। परंतु बहुत समय से तो आपके दर्शन तक नहीं मिलते। फिर मैं कैसे आशा करूँ कि आप इतना कष्ट उठाने की कृपा करेंगे।"

कपट-प्रेम से कहो या जो कहो मुस्किराता हुआ मैं दिलारा की ओर और सरक गया, और बोला—"मैं बड़े अच्छे मुहूर्त में दिल्ली आया, जो तेरी-जैसी सद्गुणी स्त्री के सुख-दुःख का भार मेरे ऊपर आ रहा है। मैं तो इसे अपना सद्भाग्य ही समझता हूँ। किंतु दिलारा ! यह सभी तेरी ही इच्छा पर निर्भर है। तू अकेली है, सो ठीक; किंतु तू चतुरा है। खुदा रक्खे, बुद्धिमान् है, और चार अक्षरों का ज्ञान रखती है। बस, केवल तेरी आज्ञा की ही देर है। मैं तो हर प्रकार से तेरी सेवा के लिये उपस्थित हूँ। यह मेरा कर्तव्य ही है। जहाँ तेरा सारा भार मुझ पर पड़ा कि अमीरुद्दीन तेरी ओर आँख उठाकर देखने का भी साहस न कर सकेगा; तुझको किसी घुटाले में डालना तो दूर की बात है।"

मेरे इस भाषण से दिलारा आश्चर्य-चकित-सी हो गई। गुलाब का एक ताज़ा खिला हुआ फूल उसके हाथ में था, सो नीचे गिर पड़ा, और वह विस्मय से बोली—"आपके कथन का मैं कुछ अर्थ नहीं समझ सकी !"

नीचे पड़ा हुआ फूल उठाकर मैंने उसके हाथ में दे दिया, और हँसता हुआ बोला—"मेरे कथन का अर्थ आप जो चाहें, सो लगा लें; किंतु दिलारा ! कृपया ऐसा अर्थ करना, जो मेरे और तेरे दोनो ही के अनुकूल हो।"

इस प्रकार कहकर मैं बड़ी उत्सुकता से दिलारा का मुँह देखने लगा,

और वह एक चामत्कारिक रीति से मेरी ओर देखने लगी। फिर शर्माकर नीचे की ओर देखती हुई बोली—"नवाब पीरबख़्श साहब !—"

दिलारा शर्माने का ढोंग रचकर कुछ आगे बोली नहीं; इस कारण मैं फिर बोला—"जो तू कहना चाहती है, सो मैं स्वयं समझता हूँ। ऐसी वृद्धावस्था में अपनी शादी की बात करना सचमुच हास्यास्पद है। मेरे यह श्वेत केश भी मुझे शादी का उच्चारण करने के लिये रोकते हैं; किंतु सचमुच दिलारा! मैं इतना अधिक वयोवृद्ध नहीं हूँ। हाँ, और यह भी बात सच्ची है कि मैं पूर्ण युवा-जैसा भी प्रतीत नहीं होता; परंतु उद्योग-धंधे का भी परिश्रम मुझे क्या कम है? यदि मैं थोड़े दिन भी चिंता त्याग कर विश्रांति लूँगा, तो मेरा चेहरा तरुणों को भी मात करनेवाला हो जायगा। अपने व्यक्तिगत गुणों के विषय में मैं स्वयं ही क्या कहूँ? आप जानती ही हैं कि मैं कोई कवि नहीं हूँ, और न मैं चित्रकार हूँ। मेरे पास तो केवल थोड़ा-सा रुपया है, और यही मेरा सर्वोत्कृष्ट गुण है, बस। ऐसी स्थिति में तेरे सौंदर्य की उपासना करना मेरे लिये एक प्रकार से निराशाजनक ही है। मेरी शारीरिक और सांपत्तिक जो कुछ मिलकियत है, यदि केवल इसी का विचार करके तू मेरे साथ निकाह करने की कृपा करे, तो मेरा अब तक का अविवाहित रहना सार्थक हो जाय। मैं तुझे तरुणों से भी विशेष प्रसन्नता-पूर्वक शिरोधार्य करूँगा। दिलारा! पति-पत्नी का संबंध बड़ा ही नाज़ुक होता है। इसलिये मैं चाहे जैसी उतावली कर रहा होऊँ; किंतु फिर भी तू ख़ूब सोच-विचारकर ही अपना मत प्रकट करना। मेरा दिल तो यही गवाही देता है कि तू मुझे निराश न करेगी। क्यों दिलारा?"

दिलारा का चेहरा लज्जा से लाल हो गया। भले ही मेरे मन में झूठा प्रेम उत्पन्न हुआ हो; परंतु दिलारा को तो इससे बड़ा आनंद हुआ, और उसका मुख-मंडल गुलाब के फूल की नाईं खिल गया। बहुरूपिया नवाब पीरबख़्श भी अपने नेत्रद्वय से दिलारा का सौंदर्य निरंतर पान करने लगा। मेरा हृदय अपने आप, भीतर-ही भीतर, कहने लगा—

"दिलारा ! मेरी प्यारी दिलारा ! मैं तेरा पहले का निंद्याचरण भुलाए देता हूँ, और अब—" हृदय में यह विचार उठते ही किसी ने मानो मेरे कान में कहा—'वैर ! वैर !" और उसी क्षण मेरा हृदय मारे क्रोध के जलने लगा। मेरा चेहरा गंभीर बन गया। मेरे चेहरे का फेर-फार देखकर शीघ्र ही दिलारा बोली—"प्यारे पीरबख्श ! आप शादी के लिये बड़े उत्सुक प्रतीत होते हैं, किंतु सच तो कहिए, क्या मुझ पर सच्चा प्रेम है ?" इस प्रकार कहते हुए दिलारा ने अपना बायाँ हाथ मेरे कंधे पर रक्खा। दिलारा के सुकोमल हाथ का स्पर्श होते ही मेरे अंतःकरण में प्रेम-तरंगें उठने लगीं; परंतु यह विचार आते ही कि यह हाथ मेरी गृहिणी का नहीं है, वरन् अपने सतीत्व को नष्ट करनेवाली एक कुलटा स्त्री का हाथ है, मैं सावधान हो गया। मेरे कान में किसी ने कहा—"सावधान ! सावधान ! देख इस कराल नागिन के दंश-प्रहार से बच। यदि इसका विष हृदय में स्पर्श कर गया, तो फिर तेरी सारी विचार-शक्ति भ्रष्ट हो जायगी।" दिलारा का मुख-मंडल और खिल आया, और वह अनुपम सुंदरी मानो वेग-पूर्वक चुंबक की नाईं मेरे चित्त का आकर्षण करने लग गई। मेरे कंधे पर हाथ रक्खे हुए रसीली दृष्टि से वह मेरी ओर देख रही थी, और उसके मुँह से निकलती हुई उष्ण श्वास मेरे मुख-मंडल पर प्रवाहित होकर मेरे दिल को उथल-पुथल-सा कर रही थी। मैंने बड़े प्रयत्न से अपने मन को क़ाबू में रक्खा, और विवेक-भ्रष्ट नहीं बना, यही बड़ी बात हुई। मित्रो ! मैं उस समय की अपनी मनःस्थिति आप पर किन शब्दों में प्रकट करूँ ? उसका वर्णन शब्दों में हो ही नहीं सकता। जिस दिलारा के सहवास में मैंने अनेक वर्षें काटी थीं, उसी दिलारा को फिर इतने सान्निध्य पाकर मेरा अंतःकरण तड़प रहा था। ऐसी विकट स्थिति में मुझे अपना क्रोध दबाकर चेहरे पर संतोष और कामुकता के भाव व्यक्त करने पड़ते थे। मित्रो ! आप ही विचार करके देखिए कि हृदय में मानसिक व्यथा की होली जलती हुई रहने पर भी मुख-मंडल पर हर्ष और काम-लिप्सा के भाव प्रत्यक्ष प्रकट रखना कैसा

सहा कठिन कार्य है । किसी दूसरे अंतःकरण में बैठकर तो कोई देख ही नहीं सकता कि वास्तविकता क्या ? अस्तु, दिलारा यही समझती थी कि मेरी डाली हुई काम-पाश सफल हुई । दिलारा ने अपना हाथ कंधे पर से हटा लिया, और फिर अपने हाथ की उँगलियाँ मेरे हाथ में फँसाकर अपने शरीर का भार मेरे ऊपर देती हुई बड़े प्रेम से कंपित स्वर में बोली—"नवाब साहब ! आपके मन की बात आप जानें या ख़ुदा जानता है, मगर मैं तो आप पर दिल से फ़िदा हूँ; और बख़ुदा आपके लिये जान दिए मरती हूँ । आप पर मेरा सच्चा प्रेम है ।"

मैं भी कंपित स्वर में पूछ बैठा—"सच्चा ? स्वर्गीय ?" प्रसन्न होकर दिलारा बोली—"हाँ, सच्चा, और स्वर्गीय प्रेम से भी अधिक पवित्र !"

मैं मन-ही-मन बोला—शाबाश पीरबख़्श ! तूने तो ख़ूब ही विजय प्राप्त की !! अमीरुद्दीन ! आ, और यह दृश्य देख । शहादतअलीख़ाँ को जो वेदना होती थी, उसका तू भी तनिक अनुभव ले ले ।" स्वर्गीय प्रेम से भी अधिक पवित्र प्रेम की साक्षी देने के लिये दिलारा ने जो अभिनय दिखाया, उसे देख कुशल-से-कुशल नट भी आश्चर्य करता । अक्षर-अक्षर झूठी बात को दिलारा ने इतनी बड़ी सरलता और स्वाभाविकता से सत्य सिद्ध कर दिखाने का प्रयत्न किया कि यदि नवाब पीरबख़्श के वेश में स्वयं शहादतअलीख़ाँ न होता तो ऐसा स्त्री-रत्न पाने के लिये ख़ुदा का अत्यंत कृतज्ञ होता, और अपनी सारी आयु को सार्थक समझता । परंतु मैं तो एक समय अपनी इन्हीं आँखों से दिलारा का हृदय स्पष्टतः देख चुका था, इसलिये उसके फंदे में न फँसा । दोनो हाथ अपने दोनों हाथों में पकड़कर दिलारा बड़े प्रेम-भाव से हँसती हुई बोली—"क्या मेरे ऐसे भाग्य हैं कि आप मुझ पर प्रेम करेंगे ?"

मैं भी हँसा, बाँकी आँखों से देखा, शर्माया और तनिक शरीर को ऐंठा भी । सारांश यह कि मैंने एक अच्छे कामासक्त का पार्ट कर दिखाया, और फिर उसके हाथ हौले से दबाकर हँसता हुआ बोला—"यह क्या पूछती है दिलारा ? प्यारी ! तेरे अनुपम लावण्य को देखकर

मैं तो तुझ पर निसार हो गया हूँ। क़ुर्बान जाऊँ, तेरे लिये तो मेरा दिल मुर्ग़नीम-बिस्मिल की तरह तड़पता रहता है। रातों को पूरी नींद ही किस कंबख़्त को आती है। बस, तेरा ही ध्यान रहता है।"

मेरे हाथ हिलाती हुई वह बोली—"आपका कहना सच है या झूठ, सो तो ख़ुदा जाने; किंतु प्यारे! मेरी तो ऐसी ही हालत हो रही है। जिस दिन से मैंने आपको देखा है, उसी दिन से आपकी तस्वीर मेरे दिल में बस रही है। आज तक यदि मैंने किसी की ओर प्रेम-दृष्टि से देखा है, तो बस आपकी ही ओर। आप अपनी प्रौढ़ावस्था के लिये खेद करते हैं; किंतु ख़ुदा ही जाने कि इस अवस्था में आपके अंदर क्या जादू भरा है, जिसके कारण आपने मुझे अपनी दासी से भी अधिक बना लिया है। वल्लाह—

"असर लुभाने का प्यारे तेरे बयान में है;
किसी की आँख में जादू तेरी ज़बान में है।

यही जी करता है कि दिन-रात बैठी-बैठी आपके मुखड़े को देखा करूँ, और प्यारी-प्यारी बातें सुना करूँ।"

मैं बड़ी जिज्ञासा और उत्सुकता, से दिलारा का यह भाषण सुन रहा था, मानो उसका हृदय-कपाट खोलकर यह देखता था कि यह शब्द दिलारा के दिल के किस कोने से निकल रहे हैं। दिलारा का सारा प्रपंच मेरे लक्ष्य में आ गया। पाशविक प्रेम की शक्कर परोसकर वह मुझे उन्मत्त बना देना चाहती थी। मैंने हँसते-हँसते विस्मय दिखाते हुए दिलारा से पूछा—"सच कह दिलारा! तुझे मेरे ही सिर की क़सम, क्या सचमुच ही तू मेरे साथ निकाह करने के लिये तैयार है?"

दिलारा ने हँसते हुए उत्तर दिया—"हाँ, प्यारे! आपके साथ मुझे निकाह मंजूर है—एक बार मंज़ूर और हज़ार बार मंज़ूर। मुझे आपको नवाब पीरबख़्श के नाम से संबोधन करने में बड़ी अड़चन पड़ती है। क्या मैं आपको मेरे प्यारे पीरबख़्श कहकर संबोधित कर सकती हूँ? आप बुरा तो न मानेंगे?"

मैं आनंदावेश में आकर बोला—"ऐं, बुरा ? अरे' बुरा क्यों लगने लगा ? 'प्यारे पीरबख़्श' अहाहा ! कैसा प्यारा शब्द है ! अजी, मैं तो इस संबोधन शब्द से बड़ा ही प्रसन्न हुआ हूँ । सचमुच मैं बड़ा भाग्य-शाली हूँ प्यारी दिलारा !"

"हाँ प्यारे पीरबख़्श !" इस प्रकार कहते हुए दिलारा ने अपने दोनो गौर बाहु-भुजंग बढ़ाए, और उनमें बेचारे वृद्ध पीरबख़्श को आबद्ध कर लिया। बड़े प्रयास से उस समय मैंने अपने मनोविकार का दमन किया। उस समय मेरे अंतःकरण में बहुतेरी पूर्व स्मृतियाँ उदय हो गईं, और मारे क्रोध के मेरा हृदय धधकने लगा। उस समय की अपनी सहनशीलता पर अब मुझे स्वयं ही बड़ा आश्चर्य हो रहा है। उस प्रसंग पर मेरे स्थान पर यदि कोई अन्य होता, तो ऐसा भारी आत्मसंयम कर सकता या नहीं, इसकी मुझे शंका ही है। एक बार तो जी में यह आया कि जो हुआ, सो हुआ, अब तो सब कुछ भूलकर प्यारी दिलारा को ख़ूब ही सीने से चिपटाकर उसका और अपना दिल एक कर डालूँ; किंतु साथ ही फिर मेरा हृदयस्थ क्रोध मुझसे कहता था कि 'अब क्या देरी करता है ? अरे, एक औरत की जान कितनी-सी ? बस, ऐसा दृढ़ा-लिंगन कर कि दिलारा के प्राण-पखेरू ही उड़ जायँ' परंतु मेरा विवेक जाग्रत् था, और वह मुझे 'कर्म-फल, कर्म-फल' कहकर मेरी पूर्व आयो-जना के अनुसार वैर भँजाने के लिये उत्साहित करके मुझे सावधान करता था। अस्तु, मैंने अपने विवेक का ही कहना माना, और दिलारा की नाईं मैंने भी नाटकी प्रेम दिखाना आरंभ कर दिया। मैंने उसे हर्ष-पूर्वक आलिंगन किया; किंतु उसने जब मेरा चुंबन लिया, तो मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो कराल विषधरा नागिन ने मेरे गाल पर दंश-प्रहार किया हो। नाटक का पार्ट पूरा उतरना चाहिए, इसलिये मैंने भी दिलारा के चुंबन का प्रत्युत्तर चुंबन द्वारा दिया। फिर, दिलारा ने अपना शरीर ढीला छोड़ दिया। मैंने उसे ख़ासा आलिंगन करके उसमें स्फूर्ति उत्पन्न कर दी। फिर दिलारा अपने बल बैठ गई, और मेरा हाथ अपने हाथों में

लेकर धीरे-धीरे दबाती हुई मेरी ओर करुण दृष्टि से देखकर बोली—"प्यारे पीरबख़्श ! ख़ुदा की क़सम, तुम मुझे कैसे ख़ूबसूरत लगते हो !" इस पहली ही बार दिलारा के मुँह से 'आप' की जगह 'तुम' निकला। वह कहती गई—"प्यारे ! वह मुआ अमीरुद्दीन बड़ा ख़राब है। ख़ुदा जाने, तुम्हारी शान में वह क्या-क्या बकता था। मुआ मेरे प्यारे को कुरूप बताता था। वाह, तुम तो ऐसे सलोने हो प्यारे कि तुम पर मैं हज़ार यूसुफ़ निसार कर डालूँ। मैं ही जानती हूँ कि आज मुझे कैसी भारी ख़ुशी हासिल हुई है। उहँ, मुझे तो रह-रहकर उसी मुए अमीरुद्दीन पर हँसी आती है। मुआ मेरे प्यारे को अरसिक बताता था ! वल्लाह मैं वारी, तुम तो ऐसे रसिया हो मेरे प्यारे कि लाखों में एक। वह मुआ जाने ही क्या ? उसे तो जीभ हिलाने से काम। मैंने तो प्यारे ! जिस दिन तुम्हें पहलेपहल देखा, उसी दिन से तुम्हारे ऊपर क़ुर्बान हो चुकी थी। मेरे पति के मरने के बाद दिल्ली के सैकड़ों रईस नौजवानों ने मेरे लिये कोशिशें शुरू कर दी थीं, मगर मैं तो प्यारे ! अपनी जानोमाल का तुम्हीं को मालिक बना चुकी थी, और इस इंतज़ार में थी कि कब मौक़ा पाऊँ और अपनी मुहब्बत का इज़हार करूँ। आज ख़ुदा ने मुझे वह घड़ी भी दिखा दी। इसलिये मैं समझती हूँ कि अब मेरे मुक़द्दर का सितारा बुलंदी पर आने लगा, लेकिन—"

मैंने विस्मय से पूछा—"लेकिन क्या ?"

अत्यंत नम्रता-पूर्वक दिलारा ने उत्तर दिया—"और क्या ? यही कि कहाँ आपकी शानोशौकत, और कहाँ यह ग़रीबिनी दिलारा ! मैं तो आपकी लौंडी भी बनने की क़ाबिलियत नहीं रखती।"

दिलारा के कंधे पर हाथ रखकर मैं प्रेम-पूर्वक बोला—"दिलारा ! मुझे फ़िज़ूल क्यों शर्मिंदा करती है प्यारी ! अरे, पीरबख़्श-जैसे बुड्ढे को तेरी-जैसी गुलबदन नौजवान हसीन स्त्री मिल रही है, यह तो मेरा भारी मुक़द्दर है। ख़ुदा ही जानता है प्यारी कि मैं तुझे कैसा जान से भी ज़्यादा प्यार करता हूँ। वल्लाह, मेरा तो दिल उछालें मार रहा है। यह जी ह

रहा है कि तुझे कहाँ बिठाऊँ और क्या करूँ ? दिलारा ! प्यारी ! तू है तो एक ही, मगर देख, तूने कहाँ-कहाँ अपना आसन जमा रक्खा है— मेरे दिल में, जिगर में और दोनो आँखों में। वाह री मेरी प्यारी दिल-रुबा दिलारा !"

दिलारा अपने शरीर को लचक देकर बड़े आश्चर्यजनक ढंग से बोली—"प्यारे ! अभी यह बात अमीरुद्दीन पर ज़ाहिर करने की कोई ज़रूरत नहीं है। क्यों, तुम्हारी क्या राय है ?"

"जब तक वह मनहूस लखनऊ में है, तब तक तो जानो कुछ भी डर नहीं है। जब वह यहाँ आ लेगा, तब उससे कहना चाहिए या नहीं, बस, इसी का विचार करना है। लेकिन मान लो अगर उसने हम लोगों का यह प्रेम-संबंध जान भी लिया, तो क्या ? वह कर ही क्या सकता है ?"

"न प्यारे ! वह निगोड़ा बहुत ही बुरा आदमी है। हम दोनों की हँसी-ख़ुशी यह बर्दाश्त न कर सकेगा, इसीलिये क़ब्ल निकाह किसी से भी कुछ कहने की कोई ज़रूरत नहीं है। प्यारे ! आपसे मेरी एक अर्ज़ है। क़बूल होगी या नहीं ?"

"अर्ज़ ? प्यारी दिलारा ! अर्ज़ कैसी ? तू तो मुझे हुक्म दे, हुक्म। जिन दो दिलों में सच्ची मुहब्बत का झरना बहता है, वहाँ अर्ज़ का फिर कोई काम नहीं रह जाता; अर्ज़ की जगह हुक्म पकड़ लेता है। बोलो प्यारी ! तुम्हारा मेरे लिये क्या हुक्म होता है ?"

विस्मित चेहरे से मेरी ओर देखती हुई दिलारा बोली—"कौन कहता है तुम्हें अरसिक ? निगोड़ा अमीरुद्दीन तो बकता है। वाह प्यारे, तुम तो ऐसे रसिया हो कि मानो दुनिया की सारी रसिकता अल्लाह मियाँ ने तुम्हीं को दे डाली हो। मैं यह कहती थी प्यारे कि आज के दिन की निशानी के बतौर हीरे की अँगूठी मैं आपकी उँगली में पहना दूँ।"

मैं हँसते हुए बोला—"यह बदला-बदलौअल आज ही करने की कोई ज़रूरत नहीं है; यह तो निकाह के वक़्त हो जायगी। मेरे हाथ में जो हीरे की अँगूठी है, वह मेरे अब्बा जान ने मुझे पहनाते वक़्त ताक़ीद

की थी कि जिस दिन तेरी शादी हो, उस दिन यह अँगूठी तू अपनी बीवी को दे देना। इसीलिये जिस दिन मैं तुझे अपनी यह अँगूठी दूँगा, उसी दिन तेरी अँगूठी क़बूल करूँगा।"

दिलारा कुछ उदास-सी होकर बोली—"जैसी आपकी मर्ज़ी। लेकिन फिर, निकाह कब होगा?"

मैंने उत्सुकता से कहा—"मैं तो चाहता हूँ कि निकाह आज ही हो जाय। लेकिन अपनी जाति के रीति-रिवाज के अनुसार ही सब काम करने की तेरी इच्छा हो, तो फिर कुछ दिन ठहरना ही पड़ेगा।"

दिलारा तिरछी आँखें करके बोली—"आपके-जैसे अरसिक निकाह के लिये ऐसे उतावले हो रहे हैं, यह देखकर मुझे बड़ा आनंद होता है। रसिकता के लिये इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है?"

"दिलारा! मैं रसिक हूँ या अरसिक, यह तो मैं स्वयं कुछ कह ही नहीं सकता; परंतु हाँ, यह तो मैं स्वीकार किए बिना नहीं रह सकता कि निकाह के लिये मैं बहुत ही उतावला हो रहा हूँ। प्यारी! अपने निकाह में देर होने से बीच में कोई विघ्न-बाधा तो न आ पड़ेगी?"

मेरे कंधे पर हाथ रखकर, बड़ी आशा से मेरी ओर देखकर दिलारा हँसती हुई बोली—"भला, प्यारे! अपने निकाह में कोई विघ्न-बाधा काहे को होने लगी? प्यारे! तुम्हारी यह बात सुनकर मेरा एक भारी भ्रम दूर हो गया है। मुझे शंका थी कि मेरे प्यारे! तुम प्रेमोपासक हो या नहीं; किंतु तुम्हारे इस कथन से मुझे स्पष्ट प्रतीत हो गया कि तुम्हारा हृदय वैवाहिक पवित्र प्रेम से ओत-प्रोत है। प्रियतम! ख़ुदा से मेरी यही प्रार्थना है कि इस दासी पर तुम्हारा ऐसा ही प्रेम सदा बना रहे।"

मैंने दिलारा को हृदय से चिपटाते हुए कहा—"प्यारी दिलारा! यह मैं खुले दिल क़बूल करता हूँ कि अब तक मैंने प्रेम की उपासना कभी नहीं की। अस्तु, प्रेम के संबंध में इस प्रकार अनभ्यासी होने के कारण मैं यह नहीं समझ सकता कि इस समय जो विकार मेरे हृदय में उत्पन्न हो रहे हैं, वे प्रेम के हैं या किसी अन्य विषय के। परंतु यह मैं

भली भाँति कह सकता हूँ कि तेरे सहवास से मेरी स्थिति बड़ी ही चामत्कारिक हो गई है, और मेरा हृदय कह रहा है कि मैं तेरे लिये क्या करूँ, और क्या न करूँ, जिससे तू प्रसन्न होवे; क्योंकि तुझे प्रसन्न-वदना देखकर ही मेरे हृदय को आनंद प्राप्त होता है। प्यारी! मैं यह बिलकुल नहीं जानता कि पति को पत्नी के साथ कैसे बर्तना चाहिए। अस्तु, ये सभी बातें तू ही मुझे सिखा लीजियो। दिलारा! तेरे जो-जो मनोरथ शहादत पूर्ण न कर सका हो, वे सब मुझसे खुलकर कह दीजियो, मैं तेरे सभी मनोरथ पूर्ण कर प्रसन्न होऊँगा। प्यारी! मैं तेरे सुख के लिये जो कहेगी, सो करूँगा।"

इस प्रकार कहकर मैंने दिलारा को अपनी ओर खींचा, और उसका खूब ही आलिंगन किया। दिलारा के चेहरे से ऐसे भाव स्पष्ट प्रतीत हो रहे थे, मानो वह अभी से अपने को पीरबख़्श और उसकी सारी संपत्ति की मालकिन समझने लग गई हो। दिलारा भावी ऐश्वर्य की सुंदर कल्पनाओं में मस्त बन रही थी। वह समझती थी कि अब पीरबख़्श पर प्रेम का जादू चल गया, और वह पूरा उल्लू बन गया, तथापि मुझ पर और भी पूरा अधिकार जमाने के लिये वह बोली—"प्यारे पीरबख़्श! मुझे तुम्हारी संपत्ति नहीं चाहिए। दिलारा वैभव की भूखी नहीं है, वह तो केवल तुम्हारे प्रेम की भूखी है। बस, आप इस दासी को अपना लें, मेरे लिये यही सब कुछ है।" इस प्रकार कहकर दिलारा कोच पर से उतरकर नीचे फ़र्श पर बैठ गई, और मेरे पाँवों से लिपट गई।

मैंने भी तत्काल इस नाटकी कला का नाटकी ढंग से ही उत्तर दिया। झट से मैंने दिलारा को उठाकर हृदय से लगाया, और फिर ऊँचे हाथ जोड़कर बोला—"ऐ पाक-परवरदिगार! मैं किन अलफ़ाज़ में तेरा शुक्रिया अदा करूँ? तूने मुझे ऐसी नेक और लाखों में एक ख़ूबसूरत और हसीन बीवी अता फ़रमाई, इसके लिये अगर हज़ार ज़बानें पाऊँ, तो भी तेरा शुक्रिया अदा करने में हज़ार ज़बानों को भी कोताह

पाऊँ !" इस प्रकार कहकर मैंने अपना बायाँ हाथ दिलारा के कंधे पर रक्खा, और दूसरे हाथ की हथेली चित करके उसकी ठोढ़ी पर रखकर रस-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ बोला—"प्यारी दिलारा ! तेरा भी मैं शुक्रिया अदा नहीं कर सकता। इस एक ज़बान में यह ताक़त नहीं कि उमर-भर रोज़-रोज़ भी तेरा शुक्रिया गा-गाकर पूरा कर सकूँ। मेरे-जैसे वृद्ध को तेरी-जैसी अनुपम सुंदरी और तरुण स्त्री मिली, यह मेरे भारी मुक़द्दर और तेरे विलक्षण स्वार्थ-त्याग का फल है।"

दिलारा हँसती हुई बोली—"धि, मैं वारी, यह क्या बहुत हुआ ? मैं तो आप पर अपनी जान क़ुर्बान कर देने के लिये तैयार हूँ। सच कहती हूँ प्यारे कि मैं तुम्हारे लिये जान दिए रहती हूँ।"

दिलारा के ये शब्द सुनकर मुझे सहज ही संतोष हुआ; क्योंकि मैं तो उसकी जान का भूखा था ही, और इसीलिये निकाह भी ठान रहा था। पहले मैं न जानता था कि दिलारा-जैसी पातालयंत्री स्त्री इस प्रकार सहज ही मेरे हाथ चढ़ जायगी; परंतु उसका मन वासना और स्वार्थ के विकारों से दब रहा था, इसलिये सहज ही मेरा मंत्र काम कर गया। अरसिक और वृद्ध पीरबख़्श ने उस दिन दिलारा के सामने बातों की ऐसी झड़ी लगा दी कि दिलारा को भी आश्चर्य हुआ, और वह अपने भावी ऐश्वर्य की कल्पना-तरंगों में ग़ोते खाने लगी। मैंने दिलारा का एक बार फिर आलिंगन किया, और ख़ूब प्रेम दिखाते हुए उसका चुंबन भी लिया, और उससे बिदा ले अपने घर चल दिया।

ज्यों ही मैं अपने मकान पर पहुँचा, एक नौकर ने अदब से सलाम करके मेरे हाथ में एक ख़त दिया। ख़त पर अमीरुद्दीन की लिखावट दिखाई दी। देखूँ, यह मेरा प्रतिस्पर्धी, मित्र-द्रोही, गर्दभराज क्या लिखता है ? यह सोचकर बड़ी जिज्ञासा से मैंने पत्र खोला, और पढ़ना आरंभ कर दिया। उसमें लिखा था—

"मेरे प्यारे दोस्त नवाब पीरबख़्श साहब,

बहुत-बहुत सलाम के बाद वाज़े हो कि आख़िर इस दुनिया पर

मेरे बुड्ढे खुर्राट चचा को रहम आया, और आज सुबह उसने अपनी कूच का डंका बजा दिया। यहाँ तो लोग कहते हैं कि बड़ा बुरा हुआ; लेकिन यार! मेरे लिये उस खुर्राट का चल बसना बहुत ही अच्छा हुआ, और इसीलिये मैं बहुत खुश हूँ। अब मैं अपने चचा के सारे मालोज़र का मालिक बन बैठा हूँ, और दिल्ली चले आने के लिये भी अब मैं खुद मुख़्तार हो गया हूँ। नक़दहू-हुर्मनहू पर तो मैंने यहाँ पहुँचते ही अपना क़ब्ज़ा कर लिया था; अब दो-एक दिन में मकान-ज़मीन वग़ैरा भी बेच-खोंचकर नक़दी बनाए लेता हूँ, और इसी बीच में इधर-उधर फैला हुआ रुपया भी जुटाए लेता हूँ। बस, इन दो-चार दिन के अंदर ही यह सब इंतज़ाम करके मैं दिल्ली के लिये रवाना हो जाऊँगा।

"हाँ, आपसे मेरी एक अर्ज़ है। वह यह कि मेरे आने का हाल आप दिलारा से हर्गिज़ न कहिएगा। मेरी मंशा है कि एकाएक दिलारा के सामने पहुँचकर उसके दिल में ताज्जुब और खुशी पैदा कर दूँ। मेरी ग़ैरहाज़िरी से दिलारा भी बड़ी परेशान रहती होगी, और उसके दिन बड़ी उदासी में बीतते होंगे। ऐसी हालत में वह मुझे अचानक ही देखकर बड़ी खुश होगी, और मारे खुशी के उसका गुलाब-सा मुखड़ा खिल जायगा। उसकी उस वक़्त की ख़ूबसूरती देखकर मैं बहुत खुश होऊँगा, और अपने को निहाल समझूँगा। दिलारा तो मेरे साथ निकाह करने के लिये क़बूल ही है; सिर्फ़ ज़रा लोगों की अंगुश्तनुमाई का ही मुझे कुछ ख़याल रहता था, लेकिन अब ख़ुदा के फ़ज़ल से चचा की दौलत पाकर मैं भी रईस बन गया हूँ, इसलिये अब उस अंगुश्तनुमाई का भी कोई डर नहीं रहा। दिलारा के भेजे हुए कितने ही ख़त मुझे यहाँ मिले हैं। इन ख़तूत से तो मुझे साफ़ ज़ाहिर हो रहा है कि उसके दिल में मेरी मुहब्बत दिन-पर-दिन बढ़ती ही जा रही है। शायद अब दिलारा यह समझे कि अमीरुद्दीन अब मालोज़रवाला हो गया है; इसलिये अब मुझ पर खुदा जाने, पहले ही जैसी मुहब्बत रक्खे या न रक्खे; मगर नवाब साहब!

'खुदा शाहिद किसी की और उल्फ़त हो;
उन्हीं पर जान देते हैं, उन्हीं पर दम निकलता है।'

"अजी नवाब साहब ! दौलत तो हज़ार जगह और हज़ार तरह पर दस्तयाब हो सकती है; मगर जनाब ! दिलारा-सी हूर मुझे कहाँ मिल सकती है ? मुझे चचा की दौलत मिलने पर दिलारा की जानिब और भी दूनी मुहब्बत बढ़ गई है। अब तो नवाब साहब ! आपकी दुआ से मेरी गाँठ गरम है, और ख़ुदा ने चाहा, तो दिल्ली आते ही जल्द ही मेरी बग़ल भी गरम हो जायगी। आपने वक़्तन्-फ़वक़्तन् रुपए-पैसे से जो मेरी मदद की है, उसके लिये मैं आपका निहायत ही शुक्रगुज़ार हूँ। दिल्ली आते ही मैं आपकी रक़म मय सूद अदा कर दूँगा। दिलारा की चौकसी का काम मैंने आपके हवाले किया था, उसके लिये मुझे उम्मीद है कि आप मुझे माफ़ फ़र्माएँगे, और जब तक मैं दिल्ली न पहुँच जाऊँ, तब तक मेरे कहने के मुताबिक़ आप दिलारा की देख-रेख रखने की मेहरबानी फ़र्माते रहेंगे। बाक़ी ख़ैरियत। इस बंदे पर मेहरबानी रखिएगा, और दिलारा की तरफ़ से ग़ाफ़िल न रहिएगा, यही अर्ज़ है।... ... ..."

इस पत्र में और भी कितनी ही बातें लिखी थीं। बीच-बीच में दिलारा पर पहरा रखने के लिये विशेष आग्रह था। यद्यपि इस पत्र में विशेषता कुछ भी न थी, तथापि यह मुझे बड़े ही महत्त्व का प्रतीत हुआ। अमीरुद्दीन ! जिस प्रकार तू दिलारा के दर्शन के लिये आज लखनऊ से उतावली दिखा रहा है, उसी प्रकार मैं भी एक बार उसके दर्शनों के लिये क़ब्रस्तान में उतावली कर रहा था। मेरी उस उतावली के बाद जैसा विचित्र दृश्य मुझे मेरे बाग़ में दिखा था, उससे भी कहीं अधिक विचित्र दृश्य लखनऊ से लौटने पर तुझे दीखेगा। प्रेम ! प्रेम !! जिस प्रेम से तू उन्मत्त बन रहा है, और जिस प्रेम की तरंगों पर तू विहार कर रहा है, उसी प्रेम-प्रवाह की निराशा-नामक भारी भँवर में अब तू पड़ा ही चाहता है। नर-पिशाच ! इस भँवर में पड़कर तुझे

आणांतक वेदनाएँ भोगनी पड़ेंगी। शहादतअलीख़ाँ के मस्तिष्क में तेरी नाईं प्रेम-कल्पनाएँ न उठती थीं, इसलिये उसका हृदय प्रेम की निराशा को जैसे-तैसे झेल ही गया; किंतु कंबख़्त! तू तो प्रेम ही को सर्व सुखों का मूल समझता है, इसलिये तू प्रेम की इस निराशा-भँवर में एक बार फँसा कि बस फिर गया; ख़ूब समझ रख मूर्ख कि तेरा हृदय इस धक्के को सहन करने में सर्वथा ही अयोग्य ठहरेगा, और उसके तड़-तड़ सौ टुकड़े हो जायँगे। अपने सूम चचा की जायदाद पाकर अब कंबख़्त अपने को लक्ष्मीचंद का बेटा ही समझने लगा है, और मेरा क़र्ज़ सूद समेत अदा कर देने के लिये तैयार है। नर-पिशाच! तेरे ऊपर मेरा जो खरा ऋण है, उसकी भी तुझे कुछ कल्पना है? तेरे सारे शरीर से रक्त की एक-एक बूँद करके तुझे नितांत ही रक्त-हीन बना दूँ, तो भी मेरा ऋण तुझसे भर पाई नहीं हो सकता। ब्याज की तो बात ही जाने दे! आ, अमीरुद्दीन, तू शीघ्र ही दिल्ली आ जा, और अपना कर्म-फल यहाँ आकर भोग!

उसी दिन हलकारा लखनऊ जाने को था, इसलिये मैंने शीघ्र ही अमीरुद्दीन के नाम एक पत्र लिखाया—

"मेरे प्यारे दोस्त मीर अमीरुद्दीन साहब,

बहुत-बहुत सलाम के बाद वाज़े हो कि ख़त आपका मिला, दिल को निहायत ही ख़ुशी हासिल हुई। ख़ुदावंद करीम से मेरी बार-बार दुआ है कि वह आपके चचा की रूह को बख़्शे, और बहिश्त नसीब करे। बमूजिब आपके हुक्म के मैं आपके दिल्ली आने की बात दिलारा से हर्गिज़ न कहूँगा। आप शौक़ से जब चाहें, दिल्ली तशरीफ़ लाएँ, और अचानक ही अपने दीदारों से दिलारा को ताज्जुब में डालकर उसे ख़ुश करें, और उसका हँसता हुआ मुखड़ा देखकर आप भी ख़ुश हों। मुझ बुड्ढे की तो ख़ुदा से यही दुआ है कि या पाक-परवरदिगार! इस जोड़े को ताउमर ख़ुशोख़ुर्रम रखना। आपके हुक्म के मुताबिक़ मैंने इतने दिन दिलारा की देख-रेख रक्खी है। जब तक आप दिल्ली न आ जायँगे,

बदस्तूर चौकसी करता रहूँगा। लेकिन अब मेरी बारी है, और मैं आपसे अपनी इस ख़िदमत का बदला चाहता हूँ। और, वह यह कि जब आप दिल्ली आ जायँ, तो पहले इस बंदे के ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाकर पहले मुझसे मिल लें; बादहू दिलारा से मुलाक़ात फ़र्माएँ। मैं यह इल्तजा सिर्फ़ इस ग़रज़ से कर रहा हूँ कि मैंने आपकी शान में एक दावत देने का इंतज़ाम किया है कि जो आपके दिल्ली पहुँचते ही बंदे के ग़रीबख़ाने पर सभी यार-दोस्तों और रऊसाए देहली को दी जायगी। इसीलिये आपसे अर्ज़ है कि आप दिल्ली पहुँचते ही सबसे पहले बंदे के ग़रीबख़ाने पर तशरीफ़ लाकर इस बंदे की रौनकअफ़ज़ाई फ़र्माएँ। बेशक आप कह सकते हैं कि इस दावत के पचड़े की वजह से दिलारा की मुलाक़ात में थोड़ी देरी हो जायेगी; मगर जनाब! आप-जैसे रसीले नौजवान को यह सिखाने की कोई भी ज़रूरत मैं नहीं देखता कि मुहब्बत का मज़ा इंतज़ार के बाद चौगुना हो जाता है। बाक़ी ख़ैरियत है। दिलारा की तरह मेरी आँखें भी इंतज़ारी से आपका रास्ता देख रही हैं।

आपका नियाज़मंद बंदा·········"

यह ख़त मैंने अपने मुंशी से लिखाया, और नीचे गिचपिच अक्षरों में दस्तख़त मैंने स्वयं अपने हाथ से कर दिए; किंतु यह पूरा ध्यान मैंने रक्खा कि उन गिचपिच हस्ताक्षरों में एक भी अक्षर शहादतअलीख़ाँ के जैसा न बन जाय। जब से मैंने नवाब पीरबख़्श का वेष धारण किया था, तब से एक अक्षर भी मैं स्वयं अपने हाथ से न लिखा करता था; किंतु जब मैं अपने (शहादतअलीख़ाँ के) किसी ऋणी को ऋण-मुक्त करना चाहता था, तब स्वयं अपने हाथ से ही ऋण-मुक्त-पत्रिका, बख़्शिशनामा या चुकते की रसीद लिखकर गुपचुप उस ऋणी के पास भिजवा दिया करता था।

अमीरुद्दीन को पत्र भेजकर मैं अपना भावी कार्य-क्रम निश्चित करने बैठा। कारण, अमीरुद्दीन के दिल्ली में पाँव रखते ही इस विलक्षण नाटक

का तीसरा, अर्थात् अंतिम अंक आरंभ हो जानेवाला था। मेरा निग्रह ऐसा दृढ़ हुआ करता है कि फिर चाहे हज़ारों विघ्न-बाधाएँ क्यों न आ पड़ें, किंतु मैं पीछे क़दम रखना नहीं जानता। अचानक मुझे एक युक्ति सूझी, और मैंने ज़ोर से 'ग़फ़ूर-ग़फ़ूर' करके आवाज़ मारी। तुरंत ही एक पच्चीस वर्ष की आयु का नौजवान मेरे सामने उपस्थित हुआ, और अदब से सलाम करके, सिर झुकाकर एक ओर खड़ा हो गया। ग़फ़ूर जाति का पठान था; और ईश्वर की कृपा से उसमें अपनी जाति के सभी सद्गुण पूरी मात्रा में उपस्थित थे। ग़फ़ूर हाथ-पाँव से ख़ूब ही मज़बूत था, और उसका शरीर क़द्दावर था; बल तो उसमें ऐसा था कि इकट्ठे दस आदमियों के प्रत्युत्तर में वह अकेला ही काफ़ी था। अन्नदाता के लिये प्राण देनेवाला, यह वाक्य तो मानो विधाता ने उसके कपाल पर ही स्पष्ट लिख रक्खा था। यद्यपि यह वाक्य किसी व्यावहारिक लिपि में न लिखा था, तथापि ऐसा न था कि जिसे कोई बाँच न सके। बहुतेरों के चेहरे से बहुतेरी बातें जान ली जाती हैं, इसी प्रकार इस पठान के चेहरे से उसके स्वामिभक्त होने का प्रत्यक्ष परिचय मिलता था ❀। ग़फ़ूर मुर्शिदाबाद से ही मेरे साथ दिल्ली आया था। मेरे परिचित उस हिंदू सेठ ने ही ग़फ़ूर का लालन-पालन करके बड़ा किया था। फिर जब यह बीस वर्ष का हुआ, तब उसी सेठ ने इसकी शादी भी कर दी थी। वह सेठ हिंदू था और ग़फ़ूर पठान; किंतु विश्वास और आश्रय ने जाति-वैमनस्य दूर

❀ जिस विद्या या कला के द्वारा मनुष्य का शिर, मुख, हाथ, पाँव आदि शरीर के पृथक्-पृथक् अंग देखकर उसका पूर्ण चरित्र जाना जाता है, उस विद्या को संस्कृत में 'सामुद्रिक' विद्या कहते हैं। योरप और अमेरिका में भी ऐसी एक विद्या प्रचलित है, उसे वे 'फ्रेनोलोजी' (Phrenology) कहते हैं। मै शीघ्र ही हिंदी में इन विद्याओं के सिखाने के लिये एक ग्रंथ लिखने का विचार कर रहा हूँ।

—बैजनाथ कोटी

कर दिया था, इसलिये वह सेठ ग़फ़ूर को बहुत ही प्यार से रखता था, और ग़फ़ूर भी अपने आश्रयदाता के लिये सदा अपने प्राण तक न्योछावर कर डालने के लिये तत्पर रहता था। अमीरुद्दीन और मैं, दोनो एक जाति के थे। बचपन ही से मेरी और उसकी दाँत-काटी रोटी थी; किंतु, फिर भी, विश्वासघात के कारण हम दोनो के बीच कैसी निपटी, सो मित्रो! आप सुन ही चुके हैं। अंतिम समय कैसी बीती, सो आप आगे सुनेंगे। हाँ, मित्रो! मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मुर्शिदाबाद में उस हिंदू सेठ से और मुझसे परस्पर बहुत ही अच्छा व्यवहार रहा, और वह सेठ मुझसे प्रेम भी ख़ूब रखने लगा था। अस्तु, उसी सेठ की कृपा से मुझे यह ग़फ़ूर प्राप्त हुआ था। जब से ग़फ़ूर मेरे यहाँ आया, सदा अपना काम बड़ी नमकहलाली के साथ करता रहा, और मेरे लिये सदा अपने प्राण तक न्योछावर करने के लिये तत्पर रहा करता था।

"ग़फ़ूर!"

"जी, हुक्म हुज़ूर!"

"मैंने जो तुझसे कहा था, वह किया?"

"हाँ, हुज़ूर! बमूजिब हुक्म सब काम पूरा कर चुका हूँ, और आगे क्या करना होगा, इसके लिये हुक्म का इंतज़ार है।"

"अपने यहाँ जो 'अमीरुद्दीन-अमीरुद्दीन' करके एक शख़्स आया करता था, उसे तू पहचानता है न?"

"जी हाँ हुज़ूर! बहुत अच्छी तरह।"

"आदमी कैसा जान पड़ता है?"

"अच्छा है। गोरे रंग का है और उमर से जवान—"

"नहीं; स्वभाव से वह आदमी तुझे कैसा जान पड़ता है?"

"हुज़ूर ख़फ़ा न हों, तो मेरी निगाह में वह जैसा जँचता है, अर्ज़ करूँ।"

"हाँ-हाँ; तुझे जैसा जँचता हो, ख़ुशी से कह। मैं हर्गिज़ नाराज़ होने का नहीं।"

"हुज़ूर ! यह तो पल्ले दर्जे का छटा हुआ बदमाश मालूम पड़ता है, भलमनसाहत तो उसे छू तक नहीं गई है।"

"हाँ, तेरा ख़याल बिलकुल ठीक है। अच्छा, अब जो कुछ मैं कहता हूँ, सो ख़ूब ग़ौर से सुन। इस दिल्ली-शहर में मेरे भाई का इकलौता बेटा शहादतअलीख़ाँ था। लड़का बड़ा सुंदर और व्यापार-रोज़गार में ख़ूब ही होशियार था। वह जो दिलारा नाम की एक नौजवान ख़ूबसूरत औरत कभी-कभी अपने यहाँ आया करती है, वह मेरे भतीजे शहादत की ही बीवी है, और यह बदमाश अमीरुद्दीन शहादत का बड़ा दोस्त था। अमीरुद्दीन शुरू से ही बड़ा ग़रीब था; मगर शहादत उसे रुपए-पैसे से ख़ूब आसूदा रखता था, और उसे एक सरदार के जैसे ठाट से रखता था, सिर्फ़ इतना ही नहीं, बल्कि शहादतअली के अमीरुद्दीन पर हज़ारों नहीं, लाखों एहसान हैं कि जिनका बदला अमीरुद्दीन ताउमर शहादत की ख़िदमत करके चुका नहीं सकता; लेकिन यह सब होते हुए भी, यह कंबख़्त बेईमान अमीरुद्दीन शहादत से छिपकर उसकी बीवी दिलारा पर घात लगाए रहा। शहादत की ज़िंदगी में ही इस बेईमान ने दिलारा का दामन नापाक कर दिया। शहादत बेचारे को कुछ पता भी न था कि उसकी बीवी और उसके दोस्त में चोरी-छिपा कैसी घुट रही थी। मुक़द्दर की बात है। बेचारा शहादत उस मनहूस काले बुख़ार में इस दुनिया से कूच कर गया; इसलिये उसके इंतक़ाल से फिर इन दोनो के बीच कोई काँटा ही न रह गया। ग़फ़ूर ! तू समझ रहा है, मैं क्या कहता हूँ ?"

"जी हाँ हुज़ूर ! अच्छी तरह।"

"ग़फ़ूर ! अब मेरे प्यारे भतीजे की पाक रूह आसमान में भटक रही है, और बदले की ख़्वाहिश दिखाती है। इसलिये दिलारा को क्या सज़ा दी जानी चाहिए, यह तो पीछे तय करेंगे; लेकिन सबसे पहले इस हरामज़ादे अमीरुद्दीन को ही मुनासिब सज़ा देनी चाहिए।"

मैंने अंतिम वाक्य कुछेक उच्च और उत्तेजना-पूर्ण कठोर स्वर में

उच्चारण किए थे; इस कारण ग़फ़ूर की आँखें रक्त-जैसी लाल हो गईं, और अपनी कमर से तेज़ छुरा निकालकर वह स्वामिभक्त नर-रत्न बोला—"हुज़ूर ! जब तक इस छुरे की धार साबित है, और इस क़ालिब में जान बाक़ी है, तब तक सिर्फ़ एक क्या, ऐसे दस अमीरुद्दीनों को, हुज़ूर का इशारा पाते ही, इस दुनिया से कूच करा देने के लिये तावेदार हाज़िर है। हुज़ूर जब कहें, तभी भरे बाज़ार में दिन-दोपहर उसका नापाक ख़ून बहा डालूं, और अपने इस छुरे की प्यास बुझा डालूँ।"

ग़फ़ूर की स्वामिभक्ति से मेरा हृदय भर आया। मैं उसे शांत करता हुआ बोला—"ग़फ़ूर ! तू तो पागल है। मैं उसके लिये यह सज़ा बहुत ही मामूली-सी समझता हूँ; उसे मैं इससे भी भारी सज़ा देना चाहता हूँ। अच्छा, जो तहख़ाने मैंने बनाने के लिये कहे थे, वे तैयार हो गए न ?"

"अच्छा, मैं अब समझ गया कि हुज़ूर उसे कैसी सज़ा देना चाहते हैं। उन तहख़ानों में से एक अमीरुद्दीन के लिये है। हाँ, हुज़ूर ! ऐसे कमीने आदमी को तो इसी तरह चूहे की मौत मारना चाहिए।"

"ग़फ़ूर ! देख, होशियारी से सुन। सात-आठ दिन में ही अमीरुद्दीन दिल्ली आ पहुँचेगा। उसके आते ही मैं उसे एक दावत दूँगा। दावत में शहर के दस-पाँच शरीफ़ लोग और भी मौजूद होंगे। उस वक़्त तू अमीरुद्दीन के पास ही खड़ा रहियो, और जब मौक़ा मिले, शिकार को अपने क़ब्ज़े में कर लीजियो। मगर इस बात का ख़याल रहे कि किसी को भी किसी तरह का शक न होने पावे, और काम भी हो जाय। अच्छा, अब जा, अपना काम देख।"

अदब से सलाम करके ग़फ़ूर मेरे पास से चला गया, और वह दिन मैंने विश्राम में ही व्यतीत कर दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल ही दिलारा का बुलावा आया। मैं भी पोशाक बदल, शीघ्र ही दिलारा के यहाँ पहुँचा। उसने हँसकर मेरा स्वागत किया। स्वागत के प्रत्युत्तर में मैंने उसे वही क़ब्रस्तानवाला हीरा-जटित शीशफूल अर्पण किया, और

बोला—"क्या यह अलंकार बेगम साहबा को पसंद होगा ?"

मेरे ही सामने वह फूल अपनी वेणी में खोंसती हुई दिलारा बोली—"आप ही देखकर कहिए कि अच्छा लगता है या नहीं ।"

मैं किंचित् उपहास करके बोला—"यह तो अमीरुद्दीन ही ठीक बतला सकता है । हाँ, ख़ूब याद आई; आज मेरे पास अमीरुद्दीन का एक पत्र और आया है ।"

दिलारा मुझे दीवानख़ाने में ले गई, और वहाँ हम दोनो एक ही कोच पर बैठ गए । एक विचित्र प्रकार से तेवरी चढ़ाकर दिलारा बोली—"हाँ, क्या कहता है पत्र में ?"

मैंने हँसकर कहा—"और तो कुछ भी नहीं; यही कि थोड़े ही दिन में जनाब दिल्ली तशरीफ़ ला रहे हैं ।"

दिलारा अचानक उद्विग्न हो बोली—"ऐ ख़ुदा ! अब क्या करूँ ?"

यह शब्द दिलारा ने ऐसे भारी विषाद-भरे स्वर में कहे कि मुझे सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ । दिलारा अमीरुद्दीन से डरती न थी, और न अमीरुद्दीन दिलारा का कुछ बिगाड़ ही सकता था; किंतु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि दिलारा केवल अपनी बदनामी के लिये ही डरती थी । वह जानती थी कि अमीरुद्दीन जब निकाह के लिये आग्रह करेगा, और मुझसे नकारात्मक उत्तर पाएगा, तब वह अवश्य ही टार-टारकर मेरी बदनामी करने पर उतारू हो जायगा । उसके साथ कुलिहया में मेरा जो गुड़ कई बार फूट चुका है, उसे वह दरपद न रक्खेगा । और जब यह बात नवाब साहब के कान तक पहुँचेगी, तब तो मेरी ख़राबी ही हो जायगी; फिर वह काहे को मुझसे निकाह करने लगे ? और तब "दोनो दीन से गए पाँड़े, हलुआ मिला न माँड़े ।" वाली गति मेरी हो जायगी । बस, दिलारा को यदि डर था, तो यही, और इसी कारण वह ऐसी उद्विग्न बन गई थी । समयोचित जान मैंने दिलारा को हृदय से चिपटा लिया, और बोला—"प्यारी दिलारा ! तू बड़ी ही सरला है; डरती क्यों है ? वह यहाँ आकर निराश ही होगा न ? बस ।"

दिलारा खिन्न होकर बोली—"प्यारे ! तुम उसका स्वभाव नहीं जानते। ख़ुदा ही जाने, उसने मुझसे ऐसी अनुचित आशा ही क्यों रक्खी ? वह निराश होने पर ख़ुदा जाने क्या कर बैठे। बस, यही मुझे डर है। इस विषय में आपसे मेरी एक प्रार्थना है। क्या आप स्वीकार करेंगे ?"

मैंने हँसकर उत्तर दिया—"हाँ-हाँ, बड़े हर्ष से। कहो, क्या हुक्म होता है प्यारी ? मैं तो तेरे हुक्म का बंदा हूँ। जो तेरी आज्ञा हो, सो ही करूँ।"

दिलारा भी हँसकर बोली—"प्यारे ! ऐसे अलंकारमय शब्द बोल-कर मुझे क्यों शर्माते हो ? मेरी यह प्रार्थना है कि अमीरुद्दीन के दिल्ली आने से पहले ही अपना निकाह हो ले, और वह भी दिल्ली में न होकर किसी दूसरे ही मुक़ाम पर किया जाय।"

थोड़ी देर तक विचार करके मैं बोला—"तेरी सलाह ठीक है दिलारा ! किंतु एक छोटे आदमी से डरकर भाग जाना मुझे पसंद नहीं है; तथापि मैं यह उचित समझता हूँ कि थोड़े दिन के लिये तू ही दिल्ली छोड़, कहीं बाहर चली जा। अमीरुद्दीन जब यहाँ आ लेगा, तब मैं दस-पाँच दिन उसका रंग-ढंग देखकर जहाँ तू होगी, वहाँ चला आऊँगा, फिर अपने निकाह की तजवीज़ की जायगी। अच्छा, बोल प्यारी ! कहाँ जाकर रहना चाहती है ?"

दिलारा दूर की सोचती हुई बोली—"यह तो आप जानते ही हैं कि फ़तेहपुर-सीकरी में मेरे मामूजान रहते थे। अब आजकल वह अज-मेर शरीफ़ में ख़्वाजा साहब की दर्गाह के प्रधान कामदार हैं। मैं उन्हीं के पास जाकर कुछ दिन रहूँगी।"

"ठीक है ! लो, यह राय मुझे ख़ूब पसंद आई; मुझे भी अजमेर देखना है। अस्तु, एक पंथ दो काज हो लेंगे। यह बहुत ही अच्छा होगा, जो तू और कहीं न रहकर अपने मामूजान के ही पास जाकर रहे। मैं कल ही आकर तेरी यात्रा का पूरा-पूरा प्रबंध कर दूँगा। हाँ, यदि तेरी

तैयारी पर किसी नौकर-चाकर को कोई शंका उत्पन्न हो, तो कह दीजियो कि मुर्शिदाबाद जा रही हूँ। समझी ?"

दिलारा एक विचित्र प्रकार से मुँह बनाकर बोली—"किंतु प्यारे ! तुम्हें देखे विना अजमेर में मुझे कैसे चैन पड़ेगा ?"

"प्यारी, क्या कहूँ ? यही मैं सोच रहा हूँ कि तुझे विना देखे मैं भी यहाँ कैसे रह सकूँगा ? किंतु प्यारी ! भविष्य के सुख के लिये अपने को जुदाई का थोड़ा-सा दुःख भी भोगने के लिये तैयार रहना चाहिए।"

दिलारा आँखों में आँसू भरकर बोली—"आप तो वहाँ जल्दी ही पहुँचेंगे न ? प्यारे ! कहीं ऐसा न हो कि तुम यहाँ अपने व्यापार-धंधे में फँस जाओ, और इस दासी को भुला बैठो !"

"प्यारी ! कैसी पागलपन की-सी बातें करती है ? तेरी जुदाई में यहाँ खाना-पीना भी किसे भाएगा ? मौक़ा पाते ही मैं अजमेर के लिये रवाना हो जाऊँगा। मैं तेरी यात्रा का बहुत ही अच्छा प्रबंध किए देता हूँ, तू अपनी तैयारी कर रखना। बस।"

मेरी बात का कोई भी उत्तर न देकर दिलारा हिलकियाँ भर-भरकर रोने लगी। उसकी उस समय की स्थिति देखकर सब कोई यही समझता कि बेचारी जुदाई के ध्यान में ही इस प्रकार बेचैन हो रही है; परंतु शहादतअलीख़ाँ ने अपनी इन्हीं दोनो आँखों से उसके मायावी प्रेम का सार देखा था। इसलिये नवाब पीरबख़्श के वेश में रहता हुआ भी वह दिलारा के जाल में न फँसा। इस मायावी प्रेम का प्रत्युत्तर मैंने भी मायावी प्रेम द्वारा ही दिया। मैंने दिलारा को छाती से लगा लिया, और बोला—"दिलारा ! प्यारी ! क्यों पगली-सी हो रही है ? वाह-वाह ! ऐसी चतुरा होकर भी ऐसी सिड़िन बन रही है ! दिलारा ! यात्रा से तेरा हवा-पानी बदलेगा, सो तेरी तबियत भी बहुत कुछ सुधर जायगी, और अपना काम भी बन जायगा। यह तो तू जानती ही है कि अजमेर शरीफ़ में ख़्वाजा साहब की पाक दर्गाह है, सो तू उस पाक दर्गाह की क़दम-बोसी करियो, इससे तेरे अंतःकरण को बड़ा समाधान होगा। फिर

एकआध दिन पीरानपीर की दर्गाह पर जाइयो, और उस पाक दर्गाह का दीदार करके अपनी आँखें सफल कीजियो। ढाई दिन का झोपड़ा देखियो, मदार साहब की टेकरी पर जाकर लोहे के चनों का झाड़ देखियो, फिर अजयपाल की टोल पर हज़रत ख़्वाजा साहब की उँगलियों के निशान, घोड़े की टाप का गड्ढा देखियो, और इन पवित्र स्मृतियों का ध्यान कर अपने को सफल बनाइयो। एकआध दिन अन्नासागर में भी स्नान को जाइयो, और मार्ग में अबरक के पहाड़ भी देखियो। प्यारी! चार-छ दिन तो तेरे ऐसे ही देखा-परखी, दर्श-दीदार में कट जायँगे, और इतने ही में मैं भी वहाँ आ पहुँचूँगा। फिर दो-चार दिन और अजमेर शरीफ़ में गामूजान के साथ हँसी-ख़ुशी में बिताकर हम दोनो दिल्ली चले आएँगे, और यहाँ आकर धूमधाम से अपना निकाह करेंगे। अब तू ही फ़ैसला कर कि प्यारी! यह यात्रा कैसी सफल और मनोरंजक होगी। अच्छा, अब मैं चलता हूँ; क्योंकि तेरी यात्रा का मुझे प्रबंध करना है; तू यहाँ अपना इंतज़ाम कर रखियो।"

मानो अब तक दिलारा की खिन्नता दूर नहीं हुई। ऐसा भाव दिखाते हुए उसने मुझे बिदा किया। अपने घर आकर मैंने दिलारा की यात्रा के लिये घोड़ा-गाड़ी और साथ जाने के लिये दो-तीन विश्वासपात्र नौकरों की व्यवस्था की। दिलारा के साथ भेजने के लिये मैंने ऐसे नौकर चुने थे, जो हर समय दिलारा पर कड़ा पहरा रख सकें। दूसरे ही दिन मैंने दिलारा को पूरे प्रबंध से अजमेर के लिये रवाना कर दिया। फिर संतोष की एक ठंडी साँस भरकर मैंने मन-ही-मन कहा—"चलो, एक शिकार तो आज अपने हाथ पड़ गया। अब दूसरे शिकार की चिंता रही; सो ख़ुदा ने चाहा, तो वह भी शीघ्र ही हाथ आया जाता है।" इस विचार से मेरे मन को बड़ा समाधान हुआ। मैंने अपनी सफलता के लिये सच्चे हृदय से ख़ुदा का शुक्रिया अदा किया। अब सहज ही मेरी दृष्टि अमीरुद्दीन का मार्ग देख रही थी। लखनऊ से दिल्ली आने के लिये एक ओर जिस प्रकार अमीरुद्दीन उतावला हो रहा था, उसी प्रकार दूसरी

ओर मैं भी बड़ी उत्सुकता से उसकी बाट जोह रहा था। लखनऊ में भी अमीरुद्दीन एकदम निरापद् न था। जिस दिन वह दिल्ली से लखनऊ गया था, उसी दिन उसके पीछे-ही-पीछे मैंने अपने अत्यंत विश्वासपात्र दो नौकर अमीरुद्दीन पर पूर्ण देख-रेख रखने के लिये भेज दिए थे। मैंने उन नौकरों को उनका कार्य भली भाँति समझा दिया था, और साथ ही इन बातों के मैंने उन्हें दिलारा की ओर से एक जाली विरह-व्याकुल प्रेम-पत्रिका देकर कह दिया था कि यदि तुम लोग देखो कि अमीरुद्दीन को लखनऊ में किसी स्त्री का रंग लगा जाता है, तो तुम इस चिट्ठी को अमीरुद्दीन तक पहुँचा देना। किंतु फिर ऐसी आवश्यकता ही नहीं पड़ी कि वह चिट्ठी अमीरुद्दीन को दी जाती। मैं एक-एक दिन उँगलियों पर गिन-गिनकर अमीरुद्दीन की बाट देख रहा था। एक दिन मेरे उन दो नौकरों में से एक ने आकर मुझे इत्तिला दी कि अमीरुद्दीन दिल्ली से केवल एक ही मुक़ाम दूर रह गया है। मैंने अपने नौकरों को दावत का प्रबंध करने की आज्ञा दी। शहर के कितने ही श्रीमान् तथा सभ्य गृहस्थों को न्योता भिजवा दिया। संध्या-समय मैं अपनी घोड़ा-गाड़ी में बैठकर शहर के बाहर गया, और वहीं से अमीरुद्दीन का स्वागत करके उसे बड़े ठाट-बाट के साथ अपने घर ले आया। इस प्रकार मैंने उसे कहीं भी इधर-उधर हिलने-डुलने का समय नहीं दिया, और यहाँ तक कि उसे यह भी पूछने का मौक़ा नहीं दिया कि दिलारा कैसी है? मैंने उसके मान-सम्मान की पूर्ण व्यवस्था की थी, इस कारण अपना इतना अधिक सम्मान होते देख चार भले गृहस्थों के सामने उसकी कुछ भी पूछने की हिम्मत न पड़ी। दावत का प्रबंध स्वयं मैं ही कर रहा था। इसलिये उसके पास बैठने का मुझे अधिक समय मिला ही नहीं। उस दिन की दावत के लिये मैंने अपना मकान विशेष रूप से सुसज्जित कराया था। बड़े-बड़े सुंदर झाड़-फ़ानूस रोशन कराए थे। अमीरुद्दीन का मैं और मेरे सभी नौकर भारी सम्मान कर रहे थे, इस कारण उसका दिमाग़ आसमान पर चढ़ गया था। अमीरुद्दीन

की दृष्टि में उसे अपना मान-सम्मान योग्य ही प्रतीत हुआ।

दावत का प्रबंध करते-करते इधर-उधर टहलता हुआ मैं अपने ख़ास दीवानख़ाने में पहुँचा, और 'ग़फ़ूर' करके ज़ोर से आवाज़ दी। मेरी आवाज़ सुनते ही ग़फ़ूर 'जी हुज़ूर' करता हुआ दौड़ा आया।

"ग़फ़ूर! अमीरुद्दीन आ गया।"

"जी हाँ हुज़ूर! मैं उसे देख चुका हूँ; मेरा छुरा भी तैयार है।"

"छुरे का कोई काम नहीं है; ग़फ़ूर! सुन, अमीरुद्दीन शराब का बड़ा शौक़ीन है। इसलिये जब हम सब लोग खाना खाने बैठेंगे, तब शराब के मामूली दौर तो चलेंगे ही; किंतु एक काम कीजियो, अमीरुद्दीन के पीछे ही लगा खड़ा रहियो, और रह-रहकर उसे जाम-पर-जाम उसी तेज़ अंगूरी के देते जाइयो। पहले दो-तीन दौर तो हम लोगों के साथ ही चलेंगे। लेकिन इन दो-तीन दौरों के बाद जब वह कुछ मज़े पर आ चले, तभी तू उसे अपने जाम चलाना शुरू कर दीजियो। समझा?"

"बहुत अच्छी तरह हुज़ूर!"

"अच्छा, और सुन। मैं कुछ ऐसी तजवीज़ करूँगा कि अमीरुद्दीन इस दावत में से ग़ुस्सा होकर बाहर निकल जायगा, और बहुत करके वह दिलारा के ही घर की ओर जायगा। दावत होते-होते आधी रात तो हो ही जायगी; बस, फिर आधी रात को सुनसान रास्ते से जब वह अकेला निकलेगा, तब तुझे क्या करना चाहिए, यह तू जानता ही है। देख ग़फ़ूर! अगर तू आज का मौक़ा चूका, तो फिर अमीरुद्दीन कभी हाथ न आएगा।"

"हुज़ूर! आपको इस कमतरीन ग़फ़ूर से ज़्यादा कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। आपकी जूतियों के तुफ़ैल से ग़फ़ूर भी कुछ थोड़ी-बहुत समझ रखता है।"

"अच्छा, तो जा, अब अपना काम देख।"

ग़फ़ूर के जाने के बाद शीघ्र ही दूसरे नौकर ने आकर अदब से अर्ज़ किया—"हुज़ूर! सब तैयारी हो गई है, आपके हुक्म-भर की देरी है।" मैंने उत्तम पोशाक पहनी, और जाकर उस सजे हुए दीवानख़ाने

में बैठ गया। धीरे-धीरे निमंत्रित सज्जन भी आ गए, तब मैंने अमीरुद्दीन को भी दूसरे कमरे से बुलवाया, और उसे मुख्य स्थान पर बैठाया। पान, इलायची, इत्र, हुक़्क़ा आदि सभी वस्तुओं का पूरा-पूरा प्रबंध मेरे नौकरों ने कर रक्खा था, और सभी नौकर हाथ बाँधे हुए आज्ञा-पालन के लिये यथास्थान खड़े थे। मैंने तुरंत ही एक प्रसिद्ध तायफ़ा बुलाया, और थोड़ी देर तक ख़ूब ही नाच-गाने का रंग रहा; फिर हम सब वहाँ से उठकर अंदर भोजन-गृह में गए। मेरे मित्रों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि मुझ-जैसा वैभवशाली नवाब क्यों इस अमीरुद्दीन-जैसे उठाऊ चूल्हा आदमी का ऐसा मान-सम्मान कर रहा था। अमीरुद्दीन का तो कहना ही क्या है? वह तो मन-ही-मन बड़ा प्रसन्न हो रहा था, और अपने भाग्य को धन्य समझ रहा था। वह मन में यही सोच-सोच बड़ा आनंदित हो रहा था कि अब तो मेरा ऐसा भारी मान-सम्मान हो गया है। चचा की दौलत भी ख़ूब ही हाथ आई। अब दिलारा-जैसी सुंदरी शीघ्र ही मेरी पत्नी बनने को है, और शहादत-जैसे कुबेर की संपत्ति भी एक प्रकार से दहेज़ में मिलनेवाली है। वाह रे मैं और मेरा मुक़द्दर! इन्हीं विचारों में अमीरुद्दीन ग़ोते मार-मार स्वर्गीय आनंद भोग रहा था। हम सबों के सामने अनेकानेक स्वादिष्ट और सुगंधित भोजन परोसे गए, और शराब का दौर आरंभ हुआ। बीच-बीच में नौकर पंखे झलते जा रहे थे, और शराब के दौर-के-दौर भी चलाए जा रहे थे। ग़फ़ूर अमीरुद्दीन के पास ही खड़ा था। अमीरुद्दीन आज मारे ख़ुशी के फूला न समाता था। इसलिये ख़ूब ही जाम-पर-जाम गटगट उड़ा रहा था। ग़फ़ूर भी अमीरुद्दीन का जाम ख़ाली न पड़ा रहने देता था; ज्यों ही अमीरुद्दीन पीकर जाम ख़ाली करके नीचे रखता था, त्यों ही ग़फ़ूर झट उसे फिर भर देता था, और बीच-बीच में बड़े अदब से अमीरुद्दीन से अर्ज़ करता था कि "वाह हुज़ूर! सभी साहबान अपने-अपने जाम उठा चुके हैं, और हुज़ूर का जाम अब तक भरा ही रक्खा है।" ग़फ़ूर की यह बात सुन कभी मैं और कभी सहज ही कोई निमंत्रित सज्जन अमीरुद्दीन

से उस जाम के उठा लेने की इल्तिजा करते थे। धीरे-धीरे भोजन में रंग जमने लगा, और अनेकानेक प्रकार की गप्पें होने लगीं। बीच-बीच में सबों के हास्य से मेरा भोजन-गृह गूँज उठता था। इसी प्रकार दावत में रंग बढ़ता ही गया, तब उपयुक्त समय जान मैं बोला—"हज़रात! हम सबों के दोस्त मियाँ मीर अमीरुद्दीन साहब आज इतने दिनों बाद दिल्ली वापस आए। जब तक आप लखनऊ रहे, आप साहबान जानते ही हैं कि उतने दिनों तक हम सबों के यहाँ सन्नाटा छाया रहा है। अब जनाब की तशरीफ़ आवरी से जहाँ-तहाँ नाच-जल्से और दावतें शुरू हो गई हैं। आप सभी साहबान जानते हैं कि मीर अमीरुद्दीन साहब कैसे ख़ुशमिज़ाज हैं, और वाह! सुभान अल्लाह! मिलनसारी तो ख़ुदा ने आप ही को बख़्शी है। जिसे मीर साहब एक बार दोस्त कह देते हैं, उसके लिये अपनी जान तक दे देने के लिये तैयार रहते हैं। सुभान अल्लाह! दोस्ती तो जनाब, इसी का नाम है। मीर साहब दोस्ती का हक़ अदा करना ख़ूब जानते हैं।"

मेरी बात सुनकर एक कुत्सित बुद्धि का दोस्त बोला—"हाँ-हाँ, नवाब साहब! आप बिलकुल बजा फ़र्माते हैं। जनाब शहादतअलीख़ाँ साहब के साथ भी इनकी ऐसी ही दिली दोस्ती थी।"

आई है, तो जाती कहाँ है? निमंत्रित सज्जनों में से एक दूसरे साहब भी बोल उठे—"अजी वाह ख़ाँ साहब! आपने भी ख़ूब कही; अजी दोस्ती के क्या माने? स्वर्गवासी जनाब सैयद शहादतअलीख़ाँ साहब के साथ तो मीर अमीरुद्दीन साहब की दो क़ालिब एक जान थी!"

सभी निमंत्रित सज्जन बड़े ख़ानदानी और प्रसिद्ध-प्रसिद्ध रईस थे; इसलिये अमीरुद्दीन होश सँभालकर बोला—"जनाबआली! आप मेरे प्यारे भाई शहादत की याद न दिलाइए। बख़ुदा उसकी याद आते ही रंज से मेरा बुरा हाल हो जाता है। मुझे यही भारी अफ़सोस है कि अल्लाह ताला ने उसे मुझसे पहले ही उठा लिया; नहीं तो वक़्त पड़ने

घर आप साहबान ख़ुद ही देख लेते कि यह अमीरुद्दीन शहादत के लिये किस तरह हँसकर अपनी जान दे देने को तैयार है।"

एक तीसरे महाशय धीमे स्वर में बोले—"और अब भी जनाब मीर साहब उस बेचारे की बीवी दिलारा के लिये अपनी जान देने के लिये तैयार हैं।"

इस तीसरे सज्जन का टोकना अमीरुद्दीन के लक्ष्य में न आया, इसलिये अपने दिए हुए उत्तर को संतोषजनक समझ मन-ही-मन प्रसन्न होने लगा। बात का रंग बदलता हुआ देखकर मैं फिर बोला—"हज़रत! यह जलसा मैंने अपने दिली दोस्त मीर अमीरुद्दीन साहब की शान में दिया है; लेकिन साथ ही एक दूसरा सबब भी है। मुझे उम्मीद है कि आप साहबान उस दूसरी वजह को जानकर और भी ज़्यादा ख़ुश होंगे।"

एक महाशय बड़े हर्ष से झट बोल उठे—"हाँ-हाँ, नवाब साहब! वह ख़ुशख़बरी ज़रूर सुनाइए। हम लोग भी उस ख़ुशख़बरी को सुनकर दावत-जलसों की तैयारी करना चाहेंगे।"

मैं बोला—"सुनिए, आप सभी साहबान मेरी इस बात को ग़ौर से सुनें। मेरे बाल पक चुके हैं, इसलिये मेरी अनोखी बात सुनकर आपको ताज्जुब तो ज़रूर ही होगा, मगर मुझे उम्मीद है कि मेरी बात सुनकर आप बहुत ही ख़ुश होंगे, और इस बुड्ढे को मुबारकबाद देंगे।"

"तब तो नवाब साहब! जल्द ही सुनाइए कि वह ख़ुशख़बरी क्या है? आपकी लच्छेदार बातें सुनकर हम लोग उस ख़ुशख़बरी के सुनने को उतावले हो रहे हैं।"

मैंने हँसते-हँसते कहा—"सिर्फ़ आप साहबान ही क्यों, बल्कि सारा दिल्ली-शहर यह अच्छी तरह जानता है कि नवाब पीरबख़्श औरतों से सख़्त नफ़रत करता है। दोस्तो! मैं आप साहबान के सामने खुले दिल क़बूल करता हूँ कि हाँ, यह ऐब मुझमें है; लेकिन अगर सच पूछिए, तो बात असल यह है कि मुझमें यह ऐब बुढ़ापे की वजह से ही आ घुसा-

है। अब तक तो मैं यह समझता था कि मुझ-जैसे बुड्ढे को कोई औरत आँख उठाकर भी न देखेगी; और इसलिये औरतों के बारे में मैं अब तक बेख़बर था; लेकिन साहबान! यह दुनिया न-मालूम कितने ताज्जुबों और कैसी-कैसी हैरतों से भरी है; मेरी बाबत भी इस दुनिया में एक ताज्जुब हो गया है। मेहरबान साहबान! इस शहर की एक बहुत ही ख़ूबसूरत और नौजवान परी-रूह नाज़नी मेरे साथ शादी करने के लिये तैयार हुई है; और मैंने भी उसकी अर्ज़ क़बूल कर ली है।"

मेरी यह बात सुनते ही सब लोग वाह नवाब साहब! वाह नवाब साहब! कह-कहकर आनंद-प्रदर्शन करने लगे, किंतु अमीरुद्दीन का चेहरा फ़क़ हो गया, और मारे ईर्ष्या के उसकी आँखें लाल हो गईं।

निमंत्रित सज्जनों में से एक महाशय बोले—"बड़ी ख़ुशी की बात है साहब! अब हम सबों की ख़्वाहिश है कि यह शादी बहुत ही जल्द हो जाय। भला, नवाब साहब! जो नाज़नी आप पर आशिक़ हुई है, उसका नाम हम लोग भी सुन सकते हैं क्या?"

मैं इस प्रश्न का उत्तर देता ही था कि अमीरुद्दीन बीच ही में बोल उठा—"हाँ जनाब! नवाब साहब को उस औरत का नाम बतलाने में शर्माना न चाहिए। लेकिन साहबान! मैं तो समझता हूँ कि वह औरत ख़ूबसूरत होगी, मगर हम लोगों की जान-पहचान की कोई औरत न होगी।"

मैंने हँसते-हँसते गंभीर स्वर में कहा—"दोस्त अमीरुद्दीन! आप ग़लती पर हैं। दिल्ली के सभी छोटे-बड़े लोग तो उसे पहचानते ही हैं, मगर आप तो उस नाज़नी को बहुत ही अच्छी तरह जानते हैं।" फिर मैं सभी निमंत्रित सज्जनों को संबोधन करता हुआ बोला—"दोस्तो! शहादतअलीख़ाँ की बेवा दिलारा के साथ मेरा निकाह होने को है।"

"झूठा! बिलकुल झूठा!" अमीरुद्दीन ने मारे क्रोध के थर-थर काँपते हुए कहा। अमीरुद्दीन के मुँह से इन भयंकर, कर्कश और मत्सर-ग्रस्त शब्दों के निकलते ही सारा भोजन-गृह स्तब्ध हो गया। अमीरुद्दीन

के पास पानी पीने के लिये चाँदी का एक प्याला रक्खा था, उसने उसी प्याले को उठाकर क्रोध से मेरे ऊपर फेका, और कर्कश स्वर में बोला—"ऐसी बेवक़ूफ़ी की बात कहते हुए शर्म नहीं आती? कंबख़्त कहीं का?"

सभी निमंत्रित सज्जन स्तब्ध थे; परंतु ज्यों ही उसका फेका हुआ प्याला मेरे शरीर में लगा, सभी गृहस्थ अमीरुद्दीन का तिरस्कार करने लगे। एक सज्जन ने कहा—"अमीरुद्दीन! यह कैसी बेशर्मी है? क्या तुझे नशा बहुत हो गया है? यह तूने सिर्फ़ नवाब साहब ही की नहीं, बल्कि हम सब लोगों की बेइज़्ज़ती की है। मैंने तो नवाब साहब से पहले ही कहा था कि इस रज़ील से दोस्ती रखना ठीक नहीं है।"

अमीरुद्दीन इस समय मारे क्रोध के पागल-सा बन गया था। उसकी आँखें लाल हो गई थीं, और सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। दाँत-पर-दाँत घिसता हुआ वह बोला—"क्या दिलारा इस बुड्ढे के साथ निकाह करेगी? झूठा! बेशर्म कहीं का!! इस नवाब ने ऐसी झूठी बात कहकर मेरी और दिलारा; दोनो ही की तौहीन की है। इस नवाब के बच्चे को मैं इसकी इस ढिठाई के लिये इसी वक़्त काफ़ी सज़ा देने के लिये तैयार हूँ।" इस प्रकार बड़बड़ाता हुआ अमीरुद्दीन अपने स्थान से उठने लगा; परंतु उसके पास ही बैठे हुए एक सज्जन ने उसका हाथ पकड़कर उसे बिठाया। अमीरुद्दीन अपने उस पड़ोसी पर भी बिगड़ उठा, और बोला—"छोड़ दे मुझे; नहीं तो मैं तुझे भी समझे लेता हूँ।"

एक दूसरा गृहस्थ बोला—"अमीरुद्दीन! तू पागल हो गया है क्या? अरे, यह तू किसकी हतक कर रहा है, यह भी तुझे मालूम है क्या?"

अमीरुद्दीन ज़ोर से बोल उठा—"हाँ-हाँ जानता हूँ; अरे, यह क्या हतक है? मैं तो इस मुर्शिदाबादी लुटेरे नवाब को वह मज़ा चखाऊँगा कि यह भी कंबख़्त उमर-भर याद रक्खेगा कि हाँ, पड़ा था कभी किसी

से पाला। आप लोग क्या जानें कि इस कंबख़्त ने मेरे साथ कैसी भारी दग़ाबाज़ी की है ?"

अब तक मैं शांत था। निमंत्रित सज्जनों में से एक महाशय बोले—"अमीरुद्दीन ! अब भी तू अपनी ज़बान बंद कर और निरे बेवक़ूफ़ की तरह बड़बड़ न किए जा।"

मैं हँसता-हँसता शांति से बोला—"मैं समझता हूँ कि इस मुआमले में अमीरुद्दीन भारी भूल कर रहा है। इसकी और दिलारा की थोड़ी बहुत जान-पहचान है; बस, बेचारा इतने पर ही अपने मन के लड्डू खा रहा था। इस बेचारे के मन के लड्डू मैंने बिखरा दिए; बस, इसीलिये यह मुझ पर चिढ़ गया है। जाने भी दीजिए, साहबान ! आप इस रज़ील के मुँह क्यों लगते हैं ?"

अमीरुद्दीन मारे क्रोध के अपने पास बैठे हुए सज्जन के हाथों से अपने को छुड़ाने का प्रयत्न करता हुआ बोला—"मैं और रज़ील ! वाह-वाह ! ज़रा देखना इस बुड्ढे को, क्या ही मनमाना बकता-झकता है ? अरे ओ मुर्शिदाबादी ठग ! अच्छी तरह समझ ले कि दिलारा तेरी इस सफ़ेद डाढ़ी पर झाड़ू तक मारने के लिये तेरी तरफ़ न देखेगी। अजी साहबान ! दिलारा मुझसे निकाह का वादा कर चुकी है; वह अपने वादे के ख़िलाफ़ जा नहीं सकती।"

मैं बोला—"वाह-वाह रे वादा ! अजी हज़रत ! दिलारा कोई दूध-पीती बच्ची तो है ही नहीं; उसे अपना भला-बुरा सोचने की तमीज़ है। दिलारा जिसके साथ अपनी भलाई समझेगी, उसी के साथ निकाह करेगी। दिलारा ऐसी कमनसीब नहीं, जो अमीरुद्दीन-जैसे बदमाश के साथ निकाह करेगी।"

जो गृहस्थ अमीरुद्दीन को पकड़े हुए थे, उनको थोड़ा ही असावधान पा अमीरुद्दीन उनके हाथों से छूट मेरे सामने आ खड़ा हुआ, और बोला—"बुड्ढे ! अबे, तू मुझे बदमाश बतलाता है, एँ ? मैं फिर भी कहता हूँ कि दिलारा मेरी है, मेरी ! अबे कंबख़्त ! तू दिलारा का एक

नाख़ून भी नहीं देख सकता। तू उसकी ख़ूबसूरती पर दीवाना हो गया है; लेकिन याद रख कि तू बुरा कर रहा है, और एक शेर को छेड़ रहा है।"

मेरा अब तक शांत बना हुआ हृदय इन शब्दों के सुनते ही मारे क्रोध के जल उठा। अस्तु, मैंने अपने सिर पर का साफ़ा और शरीर पर का अँगरखा उतार डाला, और अपने दोनो भुज-दंड ठोंककर अमीरुद्दीन के सामने खड़ा होकर बोला—"तू शेर होवे, चाहे गधा; अब मैं तुझे सज़ा दिए बिना छोड़ने का नहीं। आ, ज़रा सामने खड़ा हो, और तबियत चाहे, तो मेरे ऊपर पहला वार तू ही कर।"

मेरा शारीरिक गठन देखकर निमंत्रित सज्जन बोल उठे—"वाह! शाबाश नवाब साहब!" यह शाबाशी की ध्वनि सुनकर अमीरुद्दीन का धैर्य हवा हो गया; किंतु फिर भी वह धीरज का ढोंग दिखाता हुआ बोला—"ऐसा जंगलीपन ऐसी छोटी जगह में मैं हर्गिज़ नहीं करना चाहता। कल सुबह ही अगर तू उस बड़े मुल्लावाले मैदान में मेरे साथ तलवार चलाकर फ़ैसला करना चाहे, तो मैं तैयार हूँ; मगर यह जंगलीपन मुझे मंज़ूर नहीं है।"

मैंने ज़ोर से कहा—"हज़रात! आप ग़ौर से सुन लें कि अमीरुद्दीन क्या कह रहा है। कल आप सभी साहबान सुबह के वक़्त मय अपने यार-दोस्तों के उस बड़े मुल्लावाले मैदान में तशरीफ़ लाएँ। कल आप साहबान देखेंगे कि बनियों की तरह रोज़गार-व्यापार करनेवाला पीरबख़्श तलवार चलाने में भी कैसा होशियार है। अमीरुद्दीन! तू भी अपने दोस्तोंको अपनी दुर्गति दिखाने के लिये अपने साथ लिवा लाना।"

"अरे बुड्ढे शैतान! क्या अमीरुद्दीन के हाथ से ही तेरी मौत होना है?" इस प्रकार बड़बड़ाता हुआ अमीरुद्दीन पाँवों को पटकता हुआ मेरे घर से बाहर निकल गया; और इस प्रकार उस दावत का रंग भंग हो गया। निमंत्रित सज्जन भी मुझसे बिदा ले दुःख में भरे हुए अपने-अपने घर चल दिए। भोजन-गृह में जब कोई बाहरी मनुष्य न रहा,

तब मैंने ज़ोर से ग़फ़ूर को आवाज़ दी। शीघ्र ही एक नौकर दौड़ा आया, और बोला—"हुज़ूर-ग़फ़ूर तो थोड़ी देर से कहीं बाहर चला गया है; घर में नहीं है।" मुझे यह ख़बर पाकर बड़ा आनंद हुआ। मुख्य दीवानख़ाने में आकर मैं ग़फ़ूर को राह देखने के लिये बैठ गया। मुझे उस समय यही लग रही थी कि देखें, ग़फ़ूर अपने काम में सफल होता है या नहीं। मैं ग़फ़ूर के लिये ऐसा चिंतित हो रहा था कि यदि बाहर रास्ते में किसी प्रकार का शब्द होता था तो मुझे यही प्रतीत होता था कि ग़फ़ूर आ गया। लगभग दो घंटे बाद ग़फ़ूर वापस आया, और मुझे सलाम करके बोला—"हुज़ूर, काम फ़तेह!"

मैंने बड़े हर्ष से कहा—"शाबाश ग़फ़ूर! शाबाश!! देखूँ तेरा छुरा?"

तुरंत ही छुरा मेरे सामने नंगा कर ग़फ़ूर बोला—"हुज़ूर, ग़फ़ूर आपके हुक्म का बंदा है। मेरी क्या ताब, जो हुज़ूर के हुक्म के ख़िलाफ़ कुछ करूँ। देखिए यह छुरा; लोहू का इस पर एक दाग़ भी नहीं है। हुज़ूर! ऐसे नमकहराम के ख़ून से मैं अपना हथियार क्यों नापाक करने लगा?"

उस समय मुझे बड़ा ही विलक्षण संतोष हुआ। मैंने अपने हाथ की हीरा-जटित पहुँची खोलकर ग़फ़ूर की कलाई में बाँध दी, और बोला—"ग़फ़ूर, तेरी नमकहलाली से मैं सिर्फ़ ख़ुश ही नहीं हुआ हूँ, बल्कि तेरा एहसानमंद भी हुआ हूँ।"

बारहवाँ प्रकरण

निकाह

मेरा दीवानख़ाना शांत था। मैंने ग़फ़ूर से पूछा—"ग़फ़ूर! तू यहाँ से अमीरुद्दीन के पीछे-ही-पीछे गया था न? अच्छा, मुझे सुना कि वह तेरे हाथ कैसे आया।"

ग़फ़ूर नम्रता से बोला—"रात अँधेरी थी ही, और अमीरुद्दीन ख़ुद बहुत ही ज़्यादा घबराया हुआ था, इसलिये उसे यह कुछ भी शक न हुआ कि पीछे-पीछे कौन आ रहा है। वह अपने यहाँ से निकलकर सीधा बेगम दिलारा साहबा के मकान की तरफ़ चला। रास्ते में बीच-बीच बड़-बड़ाता जाता था। उसकी बड़बड़ाहट से मैं सिर्फ़ यही समझ पाया कि वह सबेरे होनेवाले मुक़ाबले के डर से घबरा रहा है। अमीरुद्दीन जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाए हुए बेगम साहबा के मकान पर पहुँचा; लेकिन दरवाज़ा अंदर से बंद था, इसलिये ज़ोर से कुंडी खटखटाने लगा। थोड़ी ही देर में हाथ में चिराग़ लिए हुए एक लौंडी आई, और दरवाज़ा खुल गया। दरवाज़ा खुलते ही अमीरुद्दीन अंदर बढ़ा, और 'प्यारी दिलारा' कहकर उस लौंडी के गले में हाथ डालने लगा। 'अरे, मैं तो घर की बाँदी हूँ, बाँदी, कहकर बेचारी लौंडी एक किनारे हो गई; तब कहीं कंबख़्त को होश आया, और चिढ़कर बोला—"दरवाज़ा खोलने तू क्यों आई? दिलारा ही ख़ुद क्यों न आई? क्या उसने पाँवों में मेहँदी लगा रक्खी है? जा, उससे कह दे कि अमीरुद्दीन साहब आए हैं।" अमीरुद्दीन की बेवक़ूफ़ी पर उस लौंडी को भी हँसी आई, और बोली—"आप नहीं जानते क्या, बेगम साहबा बाहर गई हैं?" यह उत्तर सुनकर अमीरुद्दीन उस लौंडी पर ख़ूब बिगड़ा, और बोला—

"झूठी ! चल लुच्ची कहीं की ! चल, आगे-आगे चिराग़ ले चल, और मुझे दिलारा के आरामगाह में ले चल।" बेचारी बाँदी बोली—"बेगम साहबा जाते वक्त हम सबको हुक्म दे गई हैं कि कोई भी शख़्स घर में न आने पाए।" यह उत्तर सुनकर अमीरुद्दीन का ग़ुस्सा और भी चौगुना हो गया। वह बड़े तैश में आकर बोला—"अरे लौंडी ! तेरी शामत तो नहीं आ गई ? मेरी और इस मकान में रोक-टोक, ऐं ? तू जानती है, मैं कौन हूँ ? मैं इस मकान का मालिक हूँ, मालिक। देरी की कोई वजह नहीं; चल, चिराग़ लेकर आगे हो ले। मैं सारे मकान की तलाशी लूँगा। वह ज़रूर मकान में ही है, और तुझे बहाने की पट्टी पढ़ाकर यहाँ भेज दिया है।" इस तरह बकता हुआ अमीरुद्दीन उस लौंडी को धक्के देने लगा। लाचार होकर बाँदी ने 'सैयद-सैयद' करके आवाज़ लगाई। आवाज़ सुनते ही एक नौजवान शख़्स आँखें मलता हुआ बाहर दौड़ा आया। अपनी नींद में ख़लल होने की वजह से उसी लौंडी से झल्लाकर बोला—"क्या गड़बड़ है ? अरे, सोने भी देगी या नहीं ?" बाँदी बोली—"अमीरुद्दीन साहब आए हुए हैं। मैं इनसे बहुत कह रही हूँ कि किसी को भी मकान के अंदर जाने की इजाज़त नहीं है; मगर फिर भी यह ज़ोर-ज़ुल्म से अंदर घुसे आते हैं।" सैयद एकदम अमीरुद्दीन के सामने आ खड़ा हुआ, और ज़ोर से बोला—"अरे भले आदमी ! हमारी मालकिन साहबा मुर्शिदाबाद गई हैं, मुर्शिदाबाद। इसलिये जिस रास्ते आया हो, उसी रास्ते लौट जा। रात देखे न बिरात; बस उठा और बेगम की तलाश में चल पड़ा; बेवक़ूफ़ कहीं का ! शर्म नहीं आती ? अरे भले आदमी ! यह जनाब शहादतअलीख़ाँ का मकान है, किसी भठियारे की सराय नहीं है।" अमीरुद्दीन ख़ूब ही खिसिया गया; और बोला—"मैं इस तौहीन का बदला लिए बिना नहीं रहने का। मेरी और दिलारा की एक बार ज़रा मुलाक़ात-भर हो ले, फिर तुझे बतलाऊँगा कि तेरी किससे बात पड़ी थी ?" इस तरह कहकर अमीरुद्दीन दरवाज़े पर से ही लौट पड़ा। मारे ग़ुस्से के अमीरुद्दीन का दिमाग़ ठिकाने न था, और रात

भी अँधेरी थी; इसलिये मैं निडर बना हुआ उसके पीछे-ही-पीछे हो लिया। छोटी-छोटी गलियों में होकर चलते-चलते अमीरुद्दीन रज़ीलों के मुहल्ले में पहुँचा, और एक फूस से छाए हुए छोटे-से घर के सामने खड़ा होकर ताली बजाने लगा। तड़-तड़-तड़ करके तीन ताली बजते ही उस घर की किवाड़ी खुली, और भीतर से एक आदमी ने निकलकर पूछा—"कौन ?" अमीरुद्दीन बोला—"मैं हूँ तुम्हारा दोस्त अमीरुद्दीन।" इस पर वह आदमी दरवाज़े से बाहर निकल आया, और अमीरुद्दीन के कंधे पर हाथ रखकर बोला—"वाह दोस्त ! बहुत दिनों बाद आए। कहो, क्या काम है ?" अमीरुद्दीन बोला—"चलो अंदर ही कहूँगा।" वह आदमी बोला—"अंदर तो एक और ही शख़्स बैठा है। उसके और मेरे दर्मियान कुछ ख़ास गुफ़्तगू चल रही है; इसलिये जो कुछ तुम्हें कहना हो, यहीं कह डालो। मरीना को जो ज़हर दिया था, वही चाहिए, या कोई दूसरा काम है ?" अमीरुद्दीन बोला—"कुछ महीनों से यहाँ मुर्शिदाबाद का एक नवाब आया है। उसे तुम जानते हो क्या ?" वह बोला—"हाँ-हाँ; खूब अच्छी तरह जानता हूँ। सारी दिल्ली नवाब पीरबख़्श साहब को पहचानती है।" अमीरुद्दीन धीमे स्वर में बोला—"अच्छा, तो सुनो यार ! कल सबेरे सात-आठ बजे के अंदर ही अगर तुम उसे इस दुनिया से उठा दो, तो मैं तुम्हें एक लाख रुपया दूँगा।" वह आदमी हँसकर बोला—"अरे पागल ! तू मुझे ऐसा नीच समझता है क्या ? अरे, तू अगर दस लाख रुपए भी दे, तो भी मैं उस सख़ी का एक बाल भी बाँका करने के लिये तैयार नहीं हूँ।" इतना कहकर वह आदमी अपने घर के अंदर घुस गया, और भीतर से दरवाज़े की कुंडी भी लगाता गया। अमीरुद्दीन अपना-सा मुँह लेकर वहाँ से लौटा, और मैं भी उसके पीछे हो लिया ! रास्ता चलते-चलते वह धीरे-धीरे बड़बड़ाया—'पीरबख़्श के साथ तलवार चलाने की एवज़ तो ख़ुदकुशी कर लेना ही हज़ार दर्जा बेहतर है।' मैंने सोचा कि अब ज़्यादा देरी करने में कोई मज़ा नहीं है। मैं फ़ौरन् ही आगे बढ़कर अमीरुद्दीन के सामने जा खड़ा हुआ;

और उसका हाथ अपने हाथ में पकड़कर कुछ कहना ही चाहता था कि वह घबराकर बोला—'कौन ?' मैं बोला—'तुम इतने घबराए क्यों जाते हो ? मैं तुम्हारे ही काम के लिये आया हूँ। अभी-अभी तुम जिस शख़्स के पास गए थे, उसी ने मुझे भेजा है। सुनो, अगर एक लाख रुपए तुम मुझे देने का इक़रार करो, तो तुम्हारा काम कर देने के लिये मैं अभी तैयार हूँ। मगर कान खोलकर सुन लो कि जब तक एक लाख रुपए मुझे न मिल जायँगे, मैं तुम्हारा पिंड न छोड़ूँगा। अगर काम हो जाने पर तुमने मुझे धोखा दिया, तो जो गति तुम उस नवाब की कराना चाहते हो, वही गति मैं तुम्हारी बना दूँगा। अगर क़बूल हो, तो लो, चलो। मुझे उस नवाब का घर इसी वक़्त दिखा दो।' अमीरुद्दीन बड़ा ख़ुश होकर बोला—'दोस्त, एक लाख क्या, मैं तुझे डेढ़ लाख रुपए दूँगा। ले, चल, उस कंबख़्त का घर दिखा दूँ।' मैं फ़ौरन् ही उसके साथ हो लिया, और दोनों घूमते-फिरते अपने इस मकान के पिछवाड़े पहुँचे।"

इतना कहकर ग़फ़ूर ने सहर्ष मुझे सलाम किया, और बोला—"हुज़ूर ! जैसे ही शिकार अपने मकान के पास आया, फ़ौरन् ही उछलकर मैंने उसके मुँह में कपड़ा ठूँस दिया, फिर ज़मीन पर गिराकर उसके हाथ-पाँव कस डाले, और उसकी गठरी-सी बनाकर मैं तहख़ाने में ले गया। वहाँ पहुँचकर तहख़ाने के दाहने बाज़ूवाले हिस्से में उसे रक्खा, और हाथ-पाँव खोलकर मुँह का ठुसा हुआ कपड़ा निकाल डाला; फिर वहाँ एक ठिलिया में पानी भरकर रख आया, और दरवाज़ा बंद कर, ताला डाल यहाँ हुज़ूर के क़दमों में हाज़िर हुआ।"

"शाबाश ग़फ़ूर ! जिस शैतान ने शहादतअलीख़ाँ की पाक रूह को सख़्त सदमा पहुँचाया, उसे तूने ख़ूब ही बहादुरी से गिरफ़्तार किया ! ख़ुदा तुझे ख़ुश रक्खे। जा, अब सारी फ़िकरें छोड़कर आराम कर।"

ग़फ़ूर के जाने के बाद मेरे अंतःकरण में अनेकानेक विचार उत्पन्न होने लगे, और मेरा मन बड़ा अस्वस्थ हो गया। एक बार मेरे मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि अभी हाल ही अपना यह नाटकी वेश बदलकर

शहादतअलीख़ाँ बन जाऊँ, और अमीरुद्दीन के समक्ष पहुँचकर उसके किए हुए पापाचारों का उत्तर माँगूँ। परंतु फिर मेरे विवेक ने मुझसे कहा—"अरे, अभी तेरा एक काम और बाक़ी है। नवाब पीरबख़्श के नाम से अभी तुझे दिलारा से निकाह पढ़वाना है, और फिर उसे तहख़ाने की हवा खिलानी है।" अस्तु, मैंने यही निश्चय किया कि अमीरुद्दीन और दिलारा, दोनो को साथ-ही-साथ अपने असल रूप में दर्शन देकर उनके पापाचारों का प्रायश्चित्त कराना योग्य है। वह बची-खुची रात्रि इन विचारों ही में व्यतीत हो गई।

सूर्योदय होते ही मैंने हाथ-मुँह धोकर थोड़ा-सा जलपान किया, और तलवार के द्वंद्व-युद्ध के लिये फ़ौजी पोशाक पहनकर एक बढ़िया ढाल और गुजराती तलवार ले, अपनी सुंदर घोड़ा-गाड़ी में बैठ उस बड़े मुल्लावाले मैदान की ओर चल दिया। वहाँ पहुँचकर मैंने देखा कि बड़ा हुजूम जमा है। उस हुजूम के पृथक्-पृथक् तीन दल थे। सबसे बड़ा दल मेरे इष्ट-मित्रों का था; उससे छोटा दल दर्शकों का था, जिसमें मेरे प्रशंसकों और शुभेच्छुकों की ही गिनती मुख्य थी; सबसे छोटा और केवल उँगलियों पर ही गिने जाने योग्य मनुष्यों का जो तीसरा दल था, वह अमीरुद्दीन के इष्ट-मित्रों और शुभेच्छुकों का था। मित्रो! मैं आपको बतला चुका हूँ कि मैं सारी दिल्ली में विख्याति पा गया था, इसी कारण मेरे द्वंद्व-युद्ध की ख़बर सारे शहर में फैल गई थी, और इसलिये ऐसी भारी भीड़ उस मैदान में जमा हो गई थी। ऐसी भारी भीड़ हम दोनो के द्वंद्व-युद्ध का चमत्कार देखने आई थी; किंतु अमीरुद्दीन की अनुपस्थिति सबों को निराश कर रही थी। नियत समय से चार घंटे अधिक व्यतीत हो गए। किंतु अमीरुद्दीन मैदान में न पहुँचा। अस्तु, सभी लोग उसे कायर ठहराते हुए, और नाना प्रकार से उसकी निंदा करते हुए अपने अपने घर चले गए, और मैं भी अपनी गाड़ी में बैठ अपने मकान की ओर चल दिया। बेचारा अमीरुद्दीन मैदान में पहुँचता भी तो कैसे? वह तो मेरे यहाँ तहख़ाने में क़ैद था। यदि यह बात भीड़ में से कोई एक

भी मनुष्य जानता होता, तो लोग अमीरुद्दीन को कायर न कहकर मुझी को कायर ठहराते। सच्ची बात तो यह थी कि मैं अमीरुद्दीन के साथ द्वंद्व-युद्ध करने के लिये हर प्रकार से तैयार था। मुझे अपने बल और अपनी तलवार पर इतना भरोसा था कि मैं अमीरुद्दीन पर पूर्ण विजय प्राप्त करता और उसे हज़रत मलिक-उल-मौत के दरबार का मेहमान बना देता; किंतु मित्रो ! मैं उसे मौत से भी अधिक भीषण सज़ा देना चाहता था, इसलिये मैंने उसे इस प्रकार द्वंद्व-युद्ध में मार डालना उचित न समझा था। दूसरा कारण यह भी था कि ग़फ़ूर के कथनानुसार अमीरुद्दीन मेरे साथ द्वंद्व-युद्ध करने की अपेक्षा आत्महत्या कर लेना ही अच्छा समझता था; यदि वह ऐसा कर डालता, तो उसकी आत्महत्या पर लोगों को बड़ा संदेह हो जाता ; सभी लोग यह समझते कि अमीरुद्दीन को नवाब ने ही किसी प्रकार मरवा डाला है; अगर वह मरना ही चाहता, तो मैदान में दो-दो हाथ करके ही न मरता, इस प्रकार हराम मौत क्यों मरता ? इस प्रकार मैं अमीरुद्दीन को समुचित दंड भी न दे पाता, और लोगों में व्यर्थ ही कायर समझा जाता। इन्हीं सब बातों का ध्यान करके मैंने अमीरुद्दीन को उसी रात पकड़वाकर अपने तहख़ाने में बंद करवा दिया था। जिस अमीरुद्दीन के साथ मैंने बचपन से ही निष्कपट स्नेह रक्खा था, जिस अमीरुद्दीन को मैं किसी समय अपना परम मित्र मानता था, उसी अमीरुद्दीन को इस प्रकार बंदी बनाते हुए मेरा मन बड़ा ही संतप्त हुआ; किंतु क्या करता ? अमीरुद्दीन का अपराध क्षम्य न था। अमीरुद्दीन का निंद्याचरण ऐसा भयंकर था कि उसे अपने पापाचारों के लिये इस दुनिया में और आक़बत में ख़ुदा के घर जो भी दंड दिया जाता, कम ही था। इसी कारण यह मेरा धर्म था कि मैं अमीरुद्दीन को समुचित दंड दूँ। यदि मैं उसे उसके पापाचारों का प्रतिफल न देकर उसे छोड़ देता, तो अपने ख़ुदा के घर में अपराधी ठहराया जाता। अस्तु, ख़ुदा की ही इच्छा थी कि पापी अमीरुद्दीन अपना कर्म-फल भोगे।

अब मेरी आँखें अजमेर की ओर फिरीं। परंतु अजमेर जाने से पहले मुझे एक भारी काम और करना था। वह यह कि जब मैं उस काले बुख़ार के रोग से मरा; उसके पहले ही दिलारा और अमीरुद्दीन के बीच जो घृणित संबंध था, उसके प्रमाण के लिये मुझे अमीरुद्दीन के यहाँ से काग़ज़-पत्र ढूँढ़ने थे। अस्तु; मैं अमीरुद्दीन के यहाँ पहुँचा, और उसके घर की तलाशी लेना आरंभ कर दी। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अंत में मुझे एक छोटी-सी पेटी में दिलारा के हस्त-लिखित सात-आठ प्रेम-पत्र मिले। इन पत्रों को लेकर मैंने अपने क़ब्ज़े में किया। फिर मैं दिलारा के मकान पर पहुँचा, और वहाँ भी तलाशी ली। उसके यहाँ भी अमीरुद्दीन के हस्त-लिखित आठ-दस प्रेम-पत्र मुझे मिल गए। इन सब पत्रों को लेकर मैं अपने घर लौट आया। घर आकर जब मैंने ये सब पत्र पढ़े, तब मारे क्रोध के मेरा अंतःकरण जल उठा। किंतु क्या करूँ? मेरे नाटक का ड्राप-सीन गिरने में अभी विलंब था; इस कारण मुझे मन मारकर चुपचाप यह संताप सह लेना पड़ा।

अब मैंने अजमेर जाने की तैयारी की, और सब तैयारी हो जाने पर मैं तहख़ाने में उतरा। वहाँ जाकर अमीरुद्दीन के सामने खड़ा हो गया, और बोला—"कहिए जनाब मीर अमीरुद्दीन साहब! आपके मिज़ाज तो अच्छे हैं?"

मुझे देखते ही अमीरुद्दीन लाल-पीला होकर बोला—"नवाब! इस रीति से मुझे यहाँ लाकर रखने का क्या कारण है? मैंने तो तुम्हारा कोई भी अपराध नहीं किया; फिर तुम व्यर्थ ही मुझे क्यों सताते हो? क्या तुम यह समझते हो कि हुज़ूर शहंशाह बादशाह औरंगज़ेब साहब के क़दमों में फ़र्याद करनेवाला मेरा कोई भी सगा-संबंधी, इष्ट-मित्र या हमदर्द नहीं है? केवल द्रव्य के बल पर तुमने यह तूफ़ान मचा रक्खा है; अरे, ज़रा ख़ुदा का भी डर रक्खो।"

मुझे बड़ा क्रोध चढ़ आया। मैं बोला—"अमीरुद्दीन! उसी पाक परवरदिगार की आज्ञा से मैंने तुझे यहाँ बंदी कर रक्खा है। उसी ख़ुदा

पाक की इच्छानुसार तुझे शिक्षा दी जाने को है। हाँ, यह सत्य है कि तूने मेरा कोई भी अपराध नहीं किया है; किंतु तेरे अक्षम्य अपराधों और पापाचारों का समुचित बदला लेने के लिये अंतरिक्ष में शहादतअली की आत्मा विकल हो रही है; इसकी भी तुझे कुछ ख़बर है? मुझे शहादत की पाक रूह की आज्ञा मिली है कि मैं तुझे तेरा कर्म-फल चखाऊँ।"

मेरे मुँह से शहादत का नाम निकलते ही अमीरुद्दीन का चेहरा फ़क़ हो गया; किंतु फिर भी वह दुष्ट चिढ़कर बोला—"शहादतअलीख़ाँ का भी मैंने क्या अपराध किया है? मैं उसकी स्त्री के साथ निकाह कराने के लिये तैयार हुआ, यही न? परंतु विधवा स्त्री के साथ निकाह कराना कोई गुनाह नहीं है; इसलाम धर्म में और समाज में इस के लिये सर्वथा आज्ञा है; फिर यह निकाह भी मैं दिलारा की स्वेच्छा से ही कराने के तत्पर हुआ था।"

मैं और भी अधिक संतप्त होकर बोला—"हरामी, नीच! तू तो शहादत की जीवितावस्था में ही दिलारा के साथ अनुचित संबंध रखता था। देख, यही हैं न वे तेरे हाथ के लिखे हुए प्रेम-पत्र? देख, यह शहादत के जीवन-काल के लिखे हैं, या कि अब के?" इस प्रकार कहते हुए मैंने दिलारा के यहाँ पाए हुए पत्र उसे दूर से दिखाए।

अमीरुद्दीन का चेहरा काला और निस्तेज पड़ गया; किंतु फिर भी वह बेशरम बोला—"तो इसमें मेरा क्या दोष? यह तो दिलारा का ही दोष है!"

"हाँ, दिलारा का भी दोष है, परंतु शैतान! तू तो शहादत का दोस्त था न? उसी शहादत का, जिसने सदा तुझ पर अपने प्राणों से भी अधिक प्रेम रक्खा, जो सदा ही तेरे साथ निष्कपट व्यवहार रखकर तुझे नाना प्रकार की सहायता देता रहा। जो तुझे एक नवाबज़ादे के जैसे ठाट में रखता था, जिसकी कृपा से तुझे दिल्ली के चार भले आदमियों की सुहबत में बैठने का मान मिला। उसी शहादत के साथ तुझे ऐसा मित्र-द्रोह करना चाहिए था? माना, दिलारा का ही अपराध था; परंतु शहादत

के मित्र के नाते क्या उसे उपदेश करने का तेरा कर्तव्य न था ? मित्र-द्रोही, नीच ! तूने अपना कर्तव्य-पालन न करके हर प्रकार से शहादत का सर्वनाश ही करने का प्रयत्न किया है ! यही है तेरा मित्र-धर्म ?"

मेरे ये शब्द सुनकर अमीरुद्दीन का चेहरा बहुत ही चामत्कारिक बन गया। मेरे चेहरे को अत्यंत तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए अमीरुद्दीन कंपित स्वर में बोला—"नवाब ! तुम कौन हो ? तुम्हारा चेहरा—" इतना ही कहकर अमीरुद्दीन अटक गया। अमीरुद्दीन के चेहरे पर भय की रेखाएँ स्पष्ट दीख रही थीं। उसका माथा पसीने से भीग गया था। मारे भय के शरीर कंपित हो रहा था। अमीरुद्दीन मारे भय के मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिरने ही वाला था कि मैंने झट उसका हाथ पकड़कर उसे सावधान किया, और बोला—"मैं शहादत का चचा हूँ। हमारे उच्च कुल को तूने जो कलंक लगाया है, उसी का दंड देने के लिये मैं मुर्शिदाबाद छोड़ दिल्ली आया हूँ। कंबख़्त ! देख, तेरे हाथ में जो अँगूठी है, वह मैंने अपने प्यारे भतीजे शहादत को दी थी; जिस दिन मेरा शहादत दफ़न किया गया, उसी दिन उस दुष्टा दिलारा ने यह अँगूठी तेरी नापाक उँगली में पहनाई थी। इससे यह सिद्ध होता है कि जिस दिन शहादत [illegible] उसी दिन तुम दोनो ने आपस में निकाह करने का निश्चय किया [illegible]"

अमीरुद्दीन के शरीर की कंपन और भी अधिक बढ़ गई, और उसमें खड़े रहने की सामर्थ्य न रही। 'अरे, भूत-भूत !' कहता हुआ वह धड़ से पृथ्वी पर गिर पड़ा। मैं झट उसके पास पहुँचा, और उसकी अचेतावस्था में ही उसकी उँगली से मैंने वह अँगूठी उतार ली। फिर मैंने ग़फ़ूर को बुलाया, और अमीरुद्दीन को होश में लाने की आज्ञा देकर मैं तहख़ाने से बाहर निकल आया। जब मैं अपने दीवानख़ाने में पहुँचा, तो मेरे एक नौकर ने मेरे हाथ पर एक चिट्ठी रख दी। यह पत्र दिलारा का था। खोलकर पढ़ा, तो उसमें विरह की बातें भरी पड़ी थीं। पत्र के अंत में यह शेर भी लिखी थी—

"हमनशीं जब मेरे ऐयाम भले आएँगे ;
बे बुलाए हुए वे आप चले आएँगे।"

दिलारा ! सचमुच ही अब तेरे भले दिन आ रहे हैं। निश्चय ही मित्रो ! मेरा यह कथन अक्षरशः सत्य है। पाप कर्म करने के दिन निश्चय ही बुरे दिन हैं, और उन पापों के प्रायश्चित्त के दिन अवश्य ही भले दिन हैं। पहला काल पाप-काल है। कारण, वह मनुष्य को पाप का भागी बनाता है ;किंतु उस कर्म फल का दूसरा भोग-काल अवश्यमेव महा पुण्य-काल है। कारण, वह मनुष्य को उस कृत पाप से निवृत्ति दिलाता है। दिलारा ! मैं भी तेरे विरह में व्याकुल हो रहा हूँ। मित्रो ! जिस प्रकार बिल्ली चूहे के विरह में, छिपकली पतंग के विरह में, भूखा सिंह भैंस के विरह में, चरखटा (ज़रक) कुत्ते के विरह में और भेड़िया भेड़ी-बकरी के विरह में विकल हो जाते हैं, उसी प्रकार मैं भी दिलारा के विरह में व्याकुल था। दिलारा ! तुझे तो अन्न-जल ही मीठा नहीं लगता; किंतु मुझे तो मिष्टान्न भी मीठा नहीं लगता। मित्रो ! उस समय यदि मुझे कुछ भी मीठा लगता था, तो वह अपने वैर-भँजाव की कल्पना ही थी !

मैं उसी दिन अजमेर के लिये चल दिया, और पाँच-छः दिन के अंदर ही अजमेर जा पहुँचा। अजमेर में जिस मकान में दिलारा के रहने की व्यवस्था की गई थी, उसी मकान में मैं जा पहुँचा। पहले तो मैंने अपनी थकावट मिटाने के लिये ख़ूब आराम किया, फिर दिलारा के दीवानख़ाने में गया। मुझे देखते ही दिलारा हँसती हुई और कमर को बल देती हुई मेरे स्वागत के लिये बढ़ी, और मेरा हाथ पकड़कर, मुझे एक उत्तम कोच पर बिठा, चिंतातुरा हो मेरा मुँह देखने लगी। कारण, मेरे मुख-मंडल पर उसे आनंद के बदले खिन्नता के भाव स्पष्ट दीख रहे थे। मनुष्य-स्वभाव के संबंध में यह बात बड़े ही मार्के की है कि मनुष्य अपने पापाचरण पर सदा ध्यान रक्खे रहता है, और अपने मन में सदा यही चिंता किया करता है कि कहीं उसके पापाचरण की अग्नि फूटकर

प्रज्वलित न हो पड़े कि जिसकी ज्वालाओं से वह जल उठे। दिलारा का मन भी इसी प्रकार से चिंताग्रस्त होने के कारण स्वतंत्र न था। अस्तु, स्वभावतः ही उसे यह चिंता हुई कि कहीं कुछ अनर्थ तो नहीं हो गया। मुझे स्तब्ध और खिन्न देख दिलारा बोली—"मुसाफ़िरी में बड़ी परेशानी उठानी पड़ी है? देखो तो, चेहरा कैसा सूख गया है। तबियत तो मेरे प्यारे की अच्छी है न?"

"हाँ, तबियत तो मेरी अच्छी है दिलारा! लेकिन मुझे तुझको एक अत्यंत ही दुःखदायक समाचार सुनाना पड़ रहा है।"

"दुःखदायक? अमीरुद्दीन लखनऊ से आ गया क्या?"

"हाँ, आ गया। मैं उससे अंतिम भेंट करके ही यहाँ आया हूँ। उसने तेरे लिये मेरे हाथ यह भेंट भेजी है।" ऐसा कहते हुए मैंने उसके हाथ पर वह अँगूठी रख दी, जो दिलारा ने मुझे शादी के समय परिवर्तन में दी थी, और जिसको फिर उसने मेरी मृत्यु के पश्चात् अमीरुद्दीन को अपने प्रेम-चिह्न-स्वरूप दे दिया था, और जिसको मैं अजमेर आते समय अमीरुद्दीन की उँगली से निकाल लाया था। उस अँगूठी को देखते ही दिलारा का चेहरा उतर गया, और उसका शरीर भी कंपित होने लगा। उसके मन में शंका हो आई थी कि अमीरुद्दीन ने अपना सभी रहस्य नवाब पीरबख़्श को सुना दिया है। अस्तु, वह भयाकुला हो बोली—"मैं नहीं समझती कि अमीरुद्दीन ने अँगूठी क्यों भेजी है। जब मेरे प्रिय पति का देहांत हो गया, तब मैंने अमीरुद्दीन को अपने पति की अंतिम यादगार की नाईं यह अँगूठी भेंट की थी। अब उसने यह अँगूठी वापस क्यों कर दी है?"

"अंतिम भेंट की नाईं उसने यह अँगूठी भेजी है।"

"अंतिम भेंट? इसका क्या अर्थ?"

"अर्थ क्या? यही कि उसने प्राण छोड़ते समय तुम्हारे लिये अपनी यह अंतिम भेंट भेजी है।"

"एँ, तो क्या अमीरुद्दीन मर गया? कैसे मर गया?"

मैंने दिलारा को यह विचित्र उपन्यास सुनाना आरंभ किया—"अमीरुद्दीन जब दिल्ली पहुँचा, तो उसे किसी प्रकार मालूम हो गया कि मेरे साथ तेरा निकाह होने को है। यह जानते ही वह मेरे घर में दस-पंद्रह सभ्य सज्जनों के सामने मुझे गालियाँ देने लगा। यह अपमान मैं सहन न कर सका; इसलिये हम दोनो की तकरार बढ़ गई। अंत में हम दोनो तलवार खींचकर एक दूसरे से द्वंद्व-युद्ध करने लगे! अमीरुद्दीन समझता था कि यह बनिए का पेशा करनेवाला नवाब तलवार चलाना क्या जाने? किंतु बेचारे को इसका अनुभव उलटा ही मिला। आधे घंटे के अंदर ही मैंने उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। मेरी तलवार का घाव उसे बहुत भयंकर लग गया था; इसलिये उसे अपने बचने की कोई भी आशा नहीं रही। अंत में उसने अपने प्राणोत्क्रमण-समय यह अंगूठी तुझे दे देने के लिये मुझे दी।"

"अरे रे! बहुत ही बुरा हुआ। किंतु मेरे प्यारे! तुम उस द्वंद्व-युद्ध से अक्षत बच गए। यह जानकर मुझे बड़ा ही आनंद हुआ।" इस प्रकार कहकर दिलारा ने अपने दोनो हाथ मेरे सिर पर वारे। फिर अपनी पुटपुरियों से लगाकर चट-चट उँगलियाँ चटकाते हुए कहा—"ऐ मैं वारी! ऐ वारे अल्लाह! मैं तेरी लाख बार शुक्र-गुज़ार हूँ। तूने मेरे प्यारे को बाल-बाल बचाया! प्यारे! इस ख़ुशी में मैं अल्ला मियाँ की कढ़ाही करूँगी, मुहताजों को गुलगुले बाँटूँगी, बड़े पीर की न्याज़ करूँगी, ख़्वाजा साहब की देग़ करूँगी, इमाम साहब का खिचड़ा, शर्बत बाँटूँगी, बड़े सैयद पर चद्दर चढ़ाऊँगी, पीरानपीर दस्तगीर की न्याज़ पढ़ाऊँगी और हर साल मुहर्रम-चेहल्लुम में सबील रक्खूँगी। मेरे प्यारे की जान बची, सो मैंने लाखों पाए।" यह कहते हुए दिलारा ने एक बार फिर मेरी बलैयाँ लीं, और फिर बड़े प्रेम से मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोली—"प्यारे! अमीरुद्दीन ने तुम्हें अँगूठी दी, फिर और क्या कहा?"

मैंने सारचर्य पूछा—"और क्या कहता? और तो मुझसे उसने कुछ भी नहीं कहा। कुछ उसे तुमसे कहना था क्या?"

दिलारा का चेहरा पहले से और भी अधिक प्रफुल्लित हो गया। अमीरुद्दीन ने अपना गुप्त रहस्य प्राणांत तक किसी से नहीं कहा, यह जानकर दिलारा को बड़ा संतोष हुआ। वह बात बनाकर बोली—"अजी, उसने अपने लखनऊ का भी कुछ हाल आपसे कहा या नहीं?"

"नहीं, सो तो वह कुछ भी नहीं कह पाया। उसके प्राण शीघ्र ही निकल गए। प्यारी दिलारा! अमीरुद्दीन की मृत्यु से तुझे तो बहुत ही बुरा लगा होगा?"

"ऊँह, मुझे बुरा क्यों लगने लगा। मुझे तो उसकी मृत्यु से एक प्रकार से आनंद ही हुआ है। प्यारे! जो वह कंबख़्त जीवित रहता, तो मेरे यहाँ आने की धृष्टता अवश्य करता। जब मैं उसका आना-जाना बंद कर देती, तो वह अवश्य ही बिगड़ता। फिर ख़ुदा जाने मेरा क्या अनिष्ट करने पर उतारू हो जाता। उसने मेरे विषय में दुराशा रक्खी। अस्तु, यह अच्छा ही हुआ कि वह इस दुनिया से कूच कर गया, और मुझे निश्चिंत बना गया।" यह कहकर दिलारा ने वह अँगूठी मेरी उँगली में पहनाते हुए कहा—"प्यारे! यह अँगूठी आप पहनें। अमीरुद्दीन को तो मैंने अपने पति का मित्र समझकर यह अँगूठी दी थी; किंतु आपको तो मैं जुदे ही संबंध के प्रेम-चिह्न-स्वरूप अर्पण कर रही हूँ।"

दिलारा की पहनाई हुई अँगूठी उँगली से उतारते हुए मैं गंभीर स्वर में बोला—"दिलारा! यह अँगूठी आनंद के साथ-ही-साथ एक दुःख का भी स्मरण कराएगी। अस्तु, इसे मैं स्वीकार न करूँगा। दूसरी बात यह भी है कि बेचारे अमीरुद्दीन ने अपने अंत काल में यह अँगूठी तेरे ही लिये भेंट की है, इसलिये इसे तू ही अपने पास रख। उसका तुझ पर स्नेह था; भले ही वह उसकी दुराशा-मात्र हो, किंतु अपने हृदय से तो वह तेरा प्रेमोपासक था। अस्तु, यह अँगूठी तुझी को अपने पास रखनी चाहिए; तेरे ऐसा करने से अमीरुद्दीन की रूह कुछ तो समाधान मानेगी।" ऐसा कहते हुए मैंने वह अँगूठी दिलारा को दे दी।

अँगूठी स्वीकार करती हुई वह बोली—"जैसी आपकी मर्ज़ी। परंतु

प्रिय पीरबख़्श ! भला, कहो तो, वह मेरे ऊपर प्रेम रखता था, तो इसमें मेरा क्या अपराध ? कितने ही आदमी ऐसे बड़े मूर्ख और अभासक्त होते हैं कि यदि उनके साथ कोई युवती शिष्टाचार से बर्ताव रक्खे, तो वे समझने लगते हैं कि वह तो मुझ पर प्रेम रखती है । अमीरुद्दीन भी ऐसा ही मूर्ख और आशावादी था । जो हो, मुझे तो अब उस मुए की बात भी नहीं भाती । हाँ, बताओ प्यारे ! अब दिल्ली कब चलोगे ? देखो, निकाह का नियत समय दिन-दिन पास आता जा रहा है ।"

"हाँ, प्यारी ! मुझे भी बस अब निकाह ही की लगन लग रही है; किंतु प्यारी दिलारा ! तुझे मेरे ही सिर की क़सम, सच तो बता कि तेरा मुझ पर सच्चा प्रेम है या नहीं । अभी तो अपने दोनो को निकाह-ही-निकाह सूझ रहा है; परंतु जब निकाह हो लेगा, तो फिर हम दोनो पर एक दूसरे के प्रति पूर्णतः निबाह देने का दायित्व आ पड़ेगा दिलारा ! तेरे लिये मैं सभी कुछ करने को तैयार हूँ । तू जहाँ कहे, वतन छोड़ वहीं तेरे साथ चला चलूँ; और की तो क्या, तेरे ऊपर मैं अपना सर्वस्व निछावर कर देने के लिये तैयार हूँ ।"

दिलारा ख़ुश होकर बोली—"प्यारे ! मैं भी जानती हूँ कि पति के प्रति पत्नी का क्या कर्तव्य है । मैं आपके सुख के लिये अपनी जान तक क़ुर्बान कर देने के लिये तैयार हूँ ।"

मैं दिलारा को हृदय से लगाकर बोला—"प्यारी दिलारा ! मुझे भी बस यही चाहिए । तेरे साथ निकाह पढ़ाने में मेरा केवल यही हेतु है ।" मित्रो ! दिलारा बड़ी चालाक थी; किंतु फिर भी मेरे इन द्व्यर्थी वाक्यों का सत्य अर्थ न समझ सकी । मैं आगे बोला—"हाँ, मेरा कहना सच है न प्यारी ? जहाँ परस्पर सच्चा प्रेम नहीं है, वहाँ शादी-निकाह से आनंद ही क्या मिल सकता है ? दिलारा, तुझे मेरे ही सिर की क़सम, सच तो बता कि तू सदैव मुझ पर ऐसा ही प्रेम रक्खेगी न ?"

"प्यारे ! यह आप क्या पूछ रहे हैं ? मन में तो आती है कि मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति जो असीम प्रेम है, उसे मैं अपना यह वक्षःस्थल

चीरकर दिखा दूँ। प्यारे! तुम्हारे ही पाक क़दमों की क़सम खाकर कहती हूँ कि मैं तुम पर अपनी जान निसार कर चुकी; अब और क्या पूछते हो ?"

"बस, तो प्यारी दिलारा! यही मैं भी चाहता हूँ। मैं अभी अपनी ज़बान से क्या कहूँ? अपना निकाह होते ही तू स्वयं ही मेरे बर्ताव से जान लेगी।" फिर भी मेरे प्रत्युत्तर का असल अर्थ दिलारा न समझ सकी। मैं बोलता ही चला गया—"मैं तेरे साथ निकाह भी इसलिये कर रहा हूँ कि मेरे शुष्क हृदय को सुख और शांति मिले। अस्तु, मुझे तो निकाह ही की लौ लग रही है। अच्छा, तो कल ही अपने यहाँ से दिल्ली के लिये रवाना होवें। वहाँ बहुतेरे स्थान देखने योग्य हैं; किंतु मुझे तो इस समय निकाह के आगे कुछ भी भला नहीं लगता। हाँ, केवल हज़रत ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की पाक दरगाह पर अवश्य ही क़दम-बोसी के लिये जाना चाहिए; सो कल चलते-चलते रास्ते में ही थोड़ी देर के लिये गाड़ी ठहराकर उनकी बंदगी बजा लेंगे। ऐसा करने से अपनी यात्रा भी सुख से और निर्विघ्न समाप्त होगी।"

मेरे इस कथन का दिलारा ने तुरंत ही अनुमोदन किया। अस्तु, दूसरे ही दिन हम दोनो अपने नौकरों-चाकरों के साथ दिल्ली की ओर चल पड़े, और पाँचवें दिन ही दिल्ली-शहर में जा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर मेरे घर और दिलारा के यहाँ, दोनो ही जगह निकाह की तैयारियाँ होने लगीं। निकाह का दिन ज्यों-ज्यों समीप आता गया, त्यों-त्यों मेरी मानसिक अवस्था भी अधिक-अधिक चामत्कारिक होती गई। निकाह के दो-एक दिन पहले से तो निद्रा ने भी मेरा पीछा छोड़ दिया था। एक दिन रात्रि-समय मैं अपने दीवानख़ाने में बैठा हुआ हिसाब-किताब की बही देख रहा था। दिल्ली-शहर में मैं पानी की नाईं अपना पैसा बहा रहा था; किंतु फिर भी मेरे पास लाखों की संपत्ति बच रही थी। अमीरुद्दीन अपने चचा की जो संपत्ति लखनऊ से अपने साथ लाया था, वह भी मेरे ही मकान में मौजूद थी। कारण, अमीरुद्दीन को मैं सीधा ही अपने

घर ले आया था, और इसलिये उसका माल-असबाब भी उसके साथ ही मेरे यहाँ चला आया था। दिलारा की सारी संपत्ति भी निकाह होने पर मुझी को मिलनेवाली थी। इसलिये मैं बैठा-बैठा यही विचार कर रहा था कि इस अगाध संपत्ति की क्या व्यवस्था करूँ। इतने में दरवाज़े के पास किसी के पाँवों की चाप मुझे सुनाई दी; मैंने पूछा—"कौन है?" तुरंत ही ग़फ़ूर ने अंदर आकर अदब से सलाम किया, और बोला—"हुज़ूर का नमकख़्वार ग़फ़ूर।"

मैं उसकी ओर कृतज्ञता-भरी हुई दृष्टि से देखता हुआ बोला—"ग़फ़ूर! तुझे मैं अपना नौकर नहीं समझता; तू तो मेरा परम विश्वास-पात्र मित्र है। इस दुनिया में विश्वास और कृतज्ञता की खोज करते-करते ये दोनो गुण मुझे दो ही चार प्राणियों में मिले हैं। उनमें से एक तू और दूसरा ज़फ़र है। मैंने भाग्य से ही तुम दोनो को पाया है। ग़फ़ूर! दूसरों की निगाह में तू मेरा नौकर है; किंतु मैं तुझे अपना दोस्त समझता हूँ। अच्छा, बोल, तुझे क्या कहना है? बाहर कोई और भी है क्या?"

ग़फ़ूर नम्रता से बोला—"जी हाँ हुज़ूर! बाहर ज़फ़र है।"

"ज़फ़र!" मैंने आवाज़ लगाई।

"जी हुज़ूर!" कहता हुआ ज़फ़र अंदर आया।

ग़फ़ूर और ज़फ़र, दोनो ही के चेहरे सचिंत प्रतीत हो रहे थे। उन दोनो को इस अवस्था में देखकर मैं बोला—"मालूम होता है, तुम दोनो मुझसे कुछ कहना चाहते हो। अच्छा, कहो, क्या बात है? डरो नहीं। तुम्हें रुपया-पैसा जो कुछ भी चाहिए, सो शौक़ से माँग लो।"

दोनो ही स्तब्ध बने खड़े रहे। फिर ज़फ़र ने ग़फ़ूर को आँख का एक संकेत दिया, जिस पर ग़फ़ूर बोला—"हुज़ूर! रुपए-पैसे के ग्राहक तो दूसरे ही हैं, जिनमें से एक तो उस तहख़ाने की हवा खा रहा है, और दूसरी के साथ आप जल्द ही निकाह पढ़वानेवाले हैं। हाँ हुज़ूर! सच तो बतलाइए, क्या आप दर असल दिलारा बेगम के साथ निकाह करनेवाले हैं?"

"दर असल ! अरे, दर असल के क्या माने हैं ? तुझे अब भी कुछ शक है ? निकाह का दिन भी क़ाज़ीजी ने मुक़र्रर कर दिया है।"

"लेकिन हुज़ूर !—"

"बोल-बोल, तुझे जो कुछ भी कहना है, साफ़-साफ़ कह दे। डर मत; बोल।"

"हुज़ूर ! मेरी और ज़फ़र की राय में आपका दिलारा बेगम के साथ निकाह कराना अच्छा नहीं है। ख़ता माफ़ फ़र्माइएगा हुज़ूर !"

"सो क्यों ? दिलारा के जैसी ख़ूबसूरत औरत तो सारी दिल्ली में कोई भी नहीं है।"

"लेकिन हुज़ूर ! उस ख़ूबसूरती के पर्दे के नीचे हम दोनो को तो कुछ काला-काला दीख रहा है। बेगम साहबा का चेहरा तो बेशक बड़ा ख़ूबसूरत है, लेकिन हुज़ूर उस चेहरे पर हम दोनो को पाक नूर नज़र नहीं पड़ता। अकेली ख़ूबसूरती तो बाज़ार में मनमानी मिल सकती है, लेकिन नूर नहीं मिलता हुज़ूर !"

ग़फ़ूर और ज़फ़र की स्वामिभक्ति देखकर मेरा हृदय भर आया। दिल्ली-शहर में मेरे अनेकानेक मित्र हो गए थे; किंतु इस प्रकार की सूचना मुझे किसी ने भी न दी थी। ग़फ़ूर और ज़फ़र मेरी सेवावृत्ति करनेवाले थे, और नौकरों की हैसियत से उन्हें मेरी शादी से कोई भी सरोकार न था; परंतु मेरे ये दोनो ही नौकर बड़े ही स्वामिभक्त और हृदय से मेरे सच्चे हित-चिंतक थे। और दिलारा की कितनी ही बातें वे जानते थे, इसलिये मेरे निकाह के विषय में वे दोनो ही गूँगे बने बैठे रह न सके, और समय पाकर मुझे सचेत कर देना ही उन्हें अधिक श्रेयस्कर प्रतीत हुआ। मैंने ग़फ़ूर से कहा—"यह सलाह शायद तुझे ज़फ़र ने दी है। लेकिन इस निकाह के बारे में तुम दोनो को कोई भी फ़िक्र न करनी चाहिए। ग़फ़ूर ! उस तहख़ाने में कितनी कोठरी हैं ?"

"हुज़ूर ! आपने दो कोठरियाँ बनवाने का हुक्म दिया था, सो दो ही

बनवाई गई हैं। उनमें से एक में अमीरुद्दीन साहब की सवारी है, और दूसरी अब तक ख़ाली ही पड़ी है।''

''मेरा निकाह हो जाने पर वह ख़ाली कोठरी भी भर जायगी। अच्छा, तुम दोनो अब बेफ़िक्र होकर सोओ, और फ़िज़ूल ही अपनी नींद बरबाद न करो।''

मेरी बात का अर्थ वे दोनो समझ गए, और फिर प्रसन्नवदन हो मुझसे विदा हो गए। बहुतेरी बातें सोचते-सोचते मेरी वह रात भी बैठे-ही-बैठे व्यतीत हो गई, और निकाहवाले दिन का सूर्य उदय हुआ। भाग्य की कैसी विचित्रता है! ज्ञाता लोग कहते हैं कि यह संसार एक प्रचंड रंगभूमि है, सो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। मैं तो वेशांतर करके ही इस रंगभूमि पर उतरा था; किंतु क्षण-क्षण झूठ बोलने-वाले, कृत्रिम हाव-भाव करनेवाले, पैसे के लिये ग़ुलामी करनेवाले, निज स्वार्थ के लिये दूसरों की आँखों में धूल झोंकनेवाले, ढोंगी और छली, ये सभी लोग इस रंगभूमि पर के नट नहीं हैं, तो और क्या हैं? वस्तुतः इस संसार के सभी व्यवहार एक नाटक ही के तुल्य हैं। दूर ही खड़ा रहकर जो पुरुष इस नाटक का निरीक्षण किया करता है, और सबसे अलिप्त रहता है, वही पुरुष सच्चा ज्ञानी है। ऐसे ज्ञानवान् पुरुष-श्रेष्ठ इस संसार में भला कितने होंगे?

निकाहवाले दिन मुझे दूल्हा राजा का वेश धारण करना पड़ा। किंतु मित्रो! क्या सचमुच ही मैं शादी की ख़ुशी में था? पति की मृत्यु से संतुष्ट हो जिसने अपने वैधव्य का ढोंग रचा था, वह भी क्या वस्तुतः वैवाहिक सुख के लिये ही दुलहिन बनी थी? नहीं, कदापि नहीं। मैं अपने उद्देश्य के लिये दूल्हा बना था। दिलारा अपने उद्देश्य के लिये दुलहिन बनी थी। हम दोनो के उद्देश्य भी पृथक्-पृथक् थे। एक ओर तो मैं सोचता था कि मैंने अपने ऐश्वर्य के बल से आज यह शिकार पकड़ा है, दूसरी ओर दिलारा सोचती थी कि मैंने अपने सौंदर्य के बल से आज अपना शिकार पकड़ा है। दिलारा को आज निकाह में अनेकानेक

झूठी प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ेंगी, और मुझे भी ख़ुदा, ख़ुदा के रसूल, क़ाज़ी और चार गवाहियों के सामने यही अपराध करना पड़ेगा। ऐ ख़ुदा! तू सभी के दिल की जानता है। तुझी को प्रथम और एकमात्र साक्षी बनाकर तेरी ही प्रेरणा से मैं यह सब करने के लिये प्रवृत्त हुआ हूँ। अब तू चाहे, तो मुझे इस कार्य में सफल बना या विफल। यह सब तेरे ही अधिकार में है। रात्रि को लगभग बारह बजे हमारा निकाह होने को था। अस्तु, दिलारा का मकान और मेरा मकान, दोनो ही ख़ूब सजाए गए थे। दोनो ही के मकान पर ख़ूब रोशनी की गई थी। समय होने पर ग़फ़ूर और ज़फ़र ने मेरा एक बालक वर की नाईं शृंगार किया। ज़ेवर और पोशाक पहनने के बाद मैंने दीवानख़ाने में जाकर दर्पण देखा, तो मैं वृद्ध-वेश में भी उस समय बड़ा सुंदर प्रतीत होता था। अस्तु, मित्रो! इस बात से आपको यह तो भली भाँति प्रतीत हो गया होगा कि बाह्य आवरण में दूसरों को फँसाने की कैसी सामर्थ्य है। एक सुंदर और उत्तम जाति के घोड़े पर इस वृद्ध दूल्हा की सवारी कराई गई, और नाना प्रकार के बाजों की धूमधाम के साथ दिलारा के मकान पर लाई गई। कहना न होगा कि एक प्रसिद्ध तायफ़ा भी इस बुड्ढे दूल्हा के आगे-आगे नाच-गायन करता हुआ चल रहा था। ज्यों ही हमारी सवारी दिलारा के दरवाज़े पर पहुँची, त्यों ही दस-पंद्रह बड़े-बड़े गृहस्थों ने हमारा स्वागत किया। उन्होंने मुझे घोड़े पर से उतारा और अत्यंत ही सम्मान-पूर्वक मुझे अंदर लिवा ले गए। अंदर लग्न-मंडप में सैकड़ों ही भले आदमी और दिल्ली के लगभग सभी अमीर-उमरा बैठे हुए थे। सबों ने यथोचित दुआ-सलाम से मेरा सत्कार किया। फिर सभी निमंत्रित सज्जनों की उपस्थिति में इसलाम धर्मशास्त्र के अनुसार क़ाज़ी ने मेरे साथ दिलारा का निकाह पढ़ा। इस प्रकार उसी शहादतअलीख़ाँ के साथ उसी दिलारा का पुनर्विवाह हो गया। मित्रो! यह कर्मों की विचित्र गति है। मेरी दृष्टि में तो यह निकाह अत्यंत ही रहस्यमय था; परंतु उपस्थित पुरुष-स्त्रियोंकी दृष्टि में इस निकाह में कोई भी विशेषता न

थी। हाँ, ग़फ़ूर बेशक बीच-बीच मन-ही-मन हँसता था। निकाह के बाद अपने कुल और समाज की रूढ़ि के अनुसार मुझसे कितने ही नेग-दस्तूर कराए गए; फिर थोड़ी देर कितनी ही प्रसिद्ध-प्रसिद्ध रंडियों के गायन हुए, और प्रत्येक रंडी के गाने में सेहरे की ही धूम रहती थी। दूसरे दिन बड़े ठाट-बाट से दावत उड़ी" फिर मेरी सवारी दिलारा को एक बड़ी ख़ूबसूरत डोली में बिठाकर बड़ी धूमधाम से अपने मकान पर पहुँची। अपने यहाँ पहुँचकर मैंने भी एक सुंदर भोज दिया, और ख़ूब ही नाच-गाने का रंग रहा। इस प्रकार मेरे निकाह का समारंभ समाप्त हुआ। फिर मेरी और दिलारा की परस्पर घातें चलने को थीं।

सभी निमंत्रित स्त्री-पुरुष मेरे यहाँ से चले गए, तो मुझे अपने घर में उदासीनता-सी प्रतीत होने लगी। अथवा कदाचित् इस उदासीनता का यह कारण हो कि मेरा मन स्वयं ही उदास था। इसलिये मुझे उस मकान में उदासीनता का भास होता हो। अथवा यह घर अब थोड़े ही समय में मनुष्य-रहित होने को था, कदाचित् इसलिये यह घर सूना-सूना और उदासीन प्रतीत होता हो। जो हो, असल कारण ख़ुदा ही जानता है। रात्रि-समय मैं अपने दीवानख़ाना ख़ास में बैठा हुआ एकांत में बहुतेरी बातें सोच रहा था। इतने ही में मोतिया रंग की चमकदार रेशमी साड़ी पहने हुए, बड़े नाज़ और अंदाज़ से कमर को बल देती हुई वहीं पर दिलारा जा पहुँची। उस समय दिलारा का मनोमुग्धकारी अनुपम सौंदर्य देखकर एक बार तो मेरी चित्त-वृत्ति भी चंचल हो गई। मैं अपने हृदय में सोचने लगा कि अब दिलारा को दुःख देने में क्या धरा है? अमीरुद्दीन की शिक्षा करने के लिये उसे मैंने तहख़ाने में बंद ही करा रक्खा है। फिर विचार किया कि अजी, जो कुछ हुआ, सो हुआ! बस गुज़श्तः रा सलवात। चलो, अमीरुद्दीन को भी माफ़ी देना चाहिए। एक समय मैं इन दोनो पर प्रेम रखता था, और दोनो ही को अपना परम सुहृद् मानता था। अमीरुद्दीन कृतघ्नी निकला, तो भले ही कृतघ्नी बना रहे; किंतु अब उसे भी अपनी असल पहचान करा दूँ, और उसकी

केवल इतनी ही शिक्षा कर उसे छोड़ देना चाहिये। दिलारा का सौंदर्य देख कर सहसा ऐसे-ही-ऐसे विचार मेरे मन में उठने लगे। परंतु तीक्ष्ण दृष्टि करके जब मैंने ध्यान-पूर्वक दिलारा का चेहरा फिर देखा, तो ग़फ़ूर के कथानुसार उसके सौंदर्य के पर्दे के पीछे मुझे एक काला-काला पर्दा और दिखाई दिया। बस, इस दृश्य के साथ ही मेरे कानों में आवाज़ सुनाई दी "वैर! वैर!! देख, इन दोनो को समुचित कर्म-फल चखाने में कोई ढील न होने पावे।" दिलारा को देखकर मैं कोच पर से उठ खड़ा हुआ। हृदय तो संताप से जल ही उठा था; किंतु फिर भी मैंने अपने चेहरे पर हर्ष-रेखाएँ उत्पन्न कीं, और हँसते हुए दिलारा को कोच पर बिठा लिया। दिलारा ने कोच पर मेरी बग़ल में बैठकर हँसते हुए मुझ पर एक नेत्र-कटाक्ष फेंका। फिर अपने गुलाबी गाल मेरे मुंह के बिलकुल ही पास लगाकर मेरे गले में अपनी बाँह डाल दी। इच्छा न रहते हुए भी मुझे उसका चुंबन लेना पड़ा। फिर दिलारा का आलिंगन करते हुए मैं बोला—"प्यारी दिलारा! वाह-वाह! तू कैसी अनुपम सुंदरी है! सचमुच ही मेरा मुकद्दर बड़ा ही ज़ोरदार है, जो तेरी-जैसी अप्सरा मुझे मिली। सचमुच ही मुझे इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग का आनंद प्राप्त हुआ। प्यारी! आज मैं बहुत से बहुमूल्य अलंकार तेरी भेंट करूँगा। तू जब उनसे अपने कोमलांग सजा लेगी, तब तो तू इस समय से भी अधिक सुंदरी प्रतीत होगी।"

दिलारा उत्सुकता से बोली—"कहाँ हैं वे अलंकार?"

पहले से ही मैंने अपने कोच के नीचे एक पेटी ला रक्खी थी। मैंने हाथ नीचे डालकर वह पेटी उठा ली, और बोला—"देख, इस पेटी में रक्खे हैं। सच कह प्यारी! ऐसे अलंकारों से तू प्रसन्न हुई या नहीं। देख, इन अलंकारों में जड़े हुए रत्नों के नग कैसे सुंदर और ऊँची आब के हैं। यह देख, कानों के पत्ते और झुमके; इसमें कैसे-कैसे बहुमूल्य नीलम जड़े हैं, और यह सुंदर-सुंदर लालों का रत्नहार भी देखा, कैसे सुंदर लाल जड़े हैं। ले देख, यह पुखराज के सुंदर कंकणों से जड़ी हुई

करधनी। इन कंकड़ों से प्रतिबिंबित होती हुई प्रकाश-किरणें कैसी विलक्षण प्रतीत होती हैं। यह ले मोतियों का सुंदर गलहार, इसमें तो मानो सूर्य का तेज ही भर दिया है। यह देख, सूर्यकांत मणि का कंकण; कैसा बिजली की नाईं दमक रहा है। दिलारा! ये सारे अलंकार तेरे ही योग्य हैं। अच्छा, तो प्यारी! लो, प्रसन्न हो मुझे आज्ञा दो, तो यह अलंकार मैं ही अपने हाथों से तुम्हें पहना दूँ।"

दिलारा उन अलंकारों को बड़ी आशा भरी दृष्टि से देखती हुई बोली—"यह आप क्या पूछते हैं मेरे प्यारे? भला, स्त्रियाँ कहीं अलंकारों के लिये नाहीं भी कभी करती हैं। फिर यह अलंकार तो ऐसे उत्कृष्ट और बहुमूल्य हैं। इन्हें पहनकर तो मैं आपको और भी अधिक सुंदरी प्रतीत होऊँगी, क्यों प्यारे?"

"हाँ, प्यारी दिलारा! तू सच कहती है कि स्त्रियाँ कभी भी अलंकारों के लिये नाहीं नहीं करतीं।" इतने में मैं सहसा घबराना-सा होकर बोल उठा—"अरे! वह चंद्रकांत मणिवाला चंद्रहार कहाँ रह गया? वह तो मुख्य शोभा का अलंकार है। हाँ, अब ध्यान आया; कदाचित् उसे मैं जमादारख़ाने में ही भूल आया हूँ। अरे, ग़फ़ूर!"

"जी हुज़ूर!" कहता हुआ तत्काल ग़फ़ूर दीवानख़ाने में आ उपस्थित हुआ।

मैं ग़फ़ूर को एक संकेत देकर बोला—"ग़फ़ूर! मैं जमादारख़ाने में चंद्रहार भूल आया हूँ। ला, जल्दी से कुंजियाँ तो ला। हाँ, जमादारख़ाने में चिराग़ तो जल रहा है न?"

"जी हुज़ूर! चिराग़ जल रहा है।" इतना कहकर ग़फ़ूर मन-ही-मन हँसता हुआ वहाँ से चला गया, और शीघ्र ही चाँदी की एक छोटी-सी थारी में चाबियों का गुच्छा रखकर मुझे दे गया। मैंने चाबियों का गुच्छा उठाकर कहा—"दिलारा! वह चंद्रहार जमादारख़ाने में ही रह गया है। मैं उसे अभी हाल ही उठाकर लिए आता हूँ, तब तक तू ज़रा यहीं बैठना।"

"जमादारख़ाना कहीं दूर है क्या ?"

"नहीं, नीचे तहख़ाने में है।"

"जमादारख़ाना देखने के लिये मैं भी आपके साथ आऊँ ?"

"हाँ-हाँ, बड़ी ख़ुशी से ! दिलारा ! मेरा जमादारख़ाना करोड़ों की संपत्ति से भरा है; किंतु वह है बड़ा गंदा, क्योंकि कोई नौकर वहाँ जा नहीं सकता, जो रोज़ ही झाड़ू-बुहारी होती रहे। बस, इसलिये कहता हूँ, तू वहाँ गंदगी देखकर—"

"किंतु आप जब वहाँ जा रहे हैं, तो फिर मैं गंदगी से क्यों डरने लगी ? स्त्री अपने पति की अनुचरी होती है; इसलिये जहाँ आप स्वयं ही जा रहे हैं, वहाँ मुझे चलने में कोई भी डर नहीं है।"

"अच्छा चल दिलारा ! ख़ुशी से चल। अब मैं समझा कि मुझे केवल सौंदर्य ही नहीं, वरन् स्वभाव भी भाग्य-वश बड़ा सुंदर मिला है। अच्छा, चल मेरे पीछे हो ले।"

मैं दिलारा को लेकर नीचे तहख़ाने में उतरा, और वहाँ पहुँचकर मैं उसे उस ख़ाली कोठरी में ले गया। उस कोठरी में ग़फ़ूर ने पहले से ही एक सुंदर फ़र्श बिछा रक्खा था, और एक ओर चाँदी-सोने के सुंदर पात्रों में खाने-पीने का सामान रक्खा हुआ था। ऊपर चाँदनी से एक प्रज्व-लित फ़ानूस लटक रहा था। उस कमरे में से मैं एक बहाना बनाकर बाहर निकला। बाहर निकलते ही चट से मैंने उसका सलाख़ोंदार दरवाज़ा बंद कर दिया और ताला लगा दिया। अब दिलारा घबराई, और मुझे तहख़ाने से निकलकर ऊपर जाता हुआ देख, बड़े आर्त्त-स्वर से आवाज़ देने लगी; किंतु मैंने उसकी एक न सुनी।

तेरहवाँ प्रकरण

उपसंहार

दिलारा और अमीरुद्दीन को मैंने जिस तहख़ाने में बंद कर रक्खा था, वह तहख़ाना मैंने एक कुशल कारीगर से तैयार कराया था। उस कारीगर ने मेरी इच्छानुसार काम बनाया था, इसलिये मैंने उसे इनाम भी दिया था। मैंने उस कारीगर और उसके साथ वाले बेलदार और बेलदारिनी से कहा था कि मैं अपनी करोड़ों की संपत्ति रखने के लिये यह तहख़ाना बनवा रहा हूँ; किंतु मित्रो! उस तहख़ाने के बनवाने का असल कारण आपको ज्ञात ही हो गया है। यह तहख़ाना असल में एक ही था, किंतु उसके बीच में लोहे की मोटी-मोटी छड़ों की एक हाथ के अंतर पर परस्पर दो समानांतर क़तारों को लगवाकर, उस एक तहख़ाने को दो कोठों में विभाजित करा दिया था। इन छड़ों की दोनो समानांतर क़तारों के बीचोबीच उस तहख़ाने की पूरी चौड़ाई-भर का बड़ा भारी लकड़ी का एक तख़्ता लगवाया था। उस तख़्ते को तहख़ाने के ऊपरवाले खंड में एक कल से जोड़ दिया था। इस कल के घुमाते ही वह बीचवाला तख्ता एकदम धड़धड़ाता हुआ ऊपर उठ जाता था। फिर दोनो कमरों के क़ैदी परस्पर एक दूसरे को देख सकते थे; किंतु एक दूसरे से हाथ न मिला सकते थे, और न एक दूसरे के पास जा सकते थे। कारण, उन दोनो कमरों के दरवाज़े पृथक-पृथक रक्खे गए थे, और जब वे बाहर से बंद कर दिए जाते थे, तो कोई भी मार्ग एक-दूसरे के पास जाने का न रहता था। मित्रो! इसी तहख़ाने के एक कमरे में अमीरुद्दीन और दूसरे में दिलारा बंद की गई थी। अब तक मैंने बीचवाला लकड़ी का पर्दा न उठवाया था। यह कहना न होगा कि ग़फ़ूर उन दोनो के खाने-पीने की पृथक-पृथक् व्यवस्था कर दिया करता था।

नवाब पीरबख़्श का नट-कार्य (पार्ट) अब मैं समाप्त कर चुका था। अस्तु, अब इस नाटक का अंतिम प्रधान कार्य मुझे अपने असल वेश में करना शेष था। अस्तु, अब मैंने धीरे-धीरे अपने वेशांतर का त्याग करना आरम्भ किया। पहले मैंने कुछ औषधियाँ अपने श्वेत किए हुए बालों पर लगाईं। फिर उन्हें एक विशेष प्रकार की औषधि के योग से बनाए हुए पानी से धो डाला। फिर केशों को स्वच्छ जल से धो लिया। दीवान-ख़ाने में जाकर दर्पण देखा, तो मेरे बाल पहले की ही नाईं फिर काले हो गए थे। पहले मेरे डाढ़ी न थी; इसलिये तुरंत ही हज्जाम को बुला-कर मैंने अपनी डाढ़ी को उस्तरा से साफ़ करा डाला। दिलारा का सारा मकान अब मेरे ही अधीन था; इसलिये वहाँ से मैंने अपनी पोशाक मँगा ली। नवाब पीरबख़्श बनने के लिये तो मुझे चार महीने तक प्रयत्न करने पड़े थे, किंतु शहादतअलीख़ाँ बनने के लिये मुझे केवल दो ही घड़ी व्यतीत करनी पड़ीं। मेरा मूल स्वरूप देखकर ग़फ़ूर को विलक्षण आश्चर्य हुआ; किंतु ज़फ़र के आनंद का तो पार ही न रहा। ज़फ़र मेरे पाँव पकड़कर आनंदाश्रु गिराने लगा। ज़फ़र ने सभी बातें ग़फ़ूर को भी सुनाईं, जिन्हें सुनकर ग़फ़ूर भी साश्चर्य आनंदाश्रु बहाने लगा। वह दिन मैंने यों ही आराम करने में बिता दिया; फिर दूसरे दिन मैं दिलारा से मुलाक़ात करने के लिये दोपहर-समय तैयार हुआ। गत दिवस मैंने अपनी डाढ़ी के बाल बड़ी होशियारी से बनवाए थे। जब हज्जाम हजा-मत बना चुका था, तब मैंने अपनी डाढ़ी के बाल बिनवाकर सावधानी से रख लिए थे। दिल्ली-शहर में कितने ही चतुर कारीगर ऐसे हैं, जो दूर-देशों तक नक़ली डाढ़ी-मूछ और सिर के बाल बनाने के लिये विख्यात हैं। मैं कह चुका हूँ कि दिल्ली शहर में मैं नवाब पीरबख़्श के नाम से ऐसा विख्यात था कि मुझे छोटे-बड़े सभी पहचानते थे। अस्तु, मैंने आज प्रातःकाल से ही एक कुशल डाढ़ी-मूछ बनाने वाले को बुला लिया था, और अपनी डाढ़ी के बाल उसे देकर तार की जाली पर पहले-जैसी डाढ़ी बनाने की आज्ञा दी, और वैसी ही मूछ भी गुथवाई। घड़ी-भर में ही उस कारीगर ने

वह मूछ-डाढ़ी तैयार कर दी थी। दोपहर-समय मैंने अपने पहले के पहननेवाले कपड़े पहन ऊपर से अपने परिवर्तित वेश के कपड़े पहन लिए। फिर वही बनी हुई मूछ-डाढ़ी पहनकर मैंने ग़फ़ूर और ज़फ़र से पूछा—"देखो तो तुम लोग कि अब मैं फिर नवाब पीरबख़्श ही जँचता हूँ कि नहीं?" उन दोनो ने विश्वास दिलाया कि मैं निस्संदेह फिर उसी परिवर्तित वेश में हूँ। तब मैं तहख़ाने में पहुँचा। इधर ऊपर की छत से ग़फ़ूर ने पाँच-छ रोशनदान खोल दिये। अस्तु, तहख़ाने में जब मैं पहुँचा, बहुत अच्छी रोशनी हो गई थी। मुझे देखते ही दिलारा बाघिनी की नाईं गर्जकर बोली—"चोर, लुटेरा, ख़ूनी! कहता है कि मैं नवाब पीरबख़्श हूँ। जो कुछ अमीरुद्दीन कहता था, उसमें रत्ती-भर भी झूठ नहीं है। आज ऐसे-ही-ऐसे ख़ून करके तूने यह अथाह संपत्ति लूटी है, और मेरी संपति डकारने के लिये ही अब तूने मुझपर भी हाथ साफ़ किया, और मुझे इस आपत्ति में फँसाया। लखनऊ से बेचारा अमीरुद्दीन भी अपने साथ अपने चचा की बहुत सी संपत्ति लाया था, सो इसी लालच से तूने उसे भी अपने ही यहाँ उतारा। फिर बेचारे का ख़ून करके उसकी सारी संपत्ति तू हड़प कर गया, और मुझ से अजमेर में यह गप दी कि मैंने उसे युद्ध में मार डाला। हाय-हाय! मैं न जानती थी कि तू ऐसा ख़ूनी है।"

मैं शांत और गंभीर स्वर में बोला—"दिलारा! चुप रह, वृथा क्रोध में मनमाहा न बक। आज तक मेरे कुटुंब के किसी पुरुष ने कभी कोई ख़ून नहीं किया, और न कभी मेरे बाप-दादों ने या मैंने लालच में आकर किसी के साथ कोई असदाचरण का व्यवहार किया है। हाँ, यदि अब मुझे ख़ून करने की आवश्यकता भी कदाचित् पड़ जाय, तो तू ध्यान रख कि यह विद्या मैंने तुझ से ही सीखी है। यदि मान भी लिया जाय कि मैंने अमीरुद्दीन का ख़ून किया है, तो बोल, इसमें मेरा क्या दोष है? यदि यह भी मान लिया जाय कि मैंने तेरा ख़ून करने के लिये ही तुझे यहाँ पर क़ैद कर रक्खा है, तो बोल, मेरे इस काम में भी मेरा क्या दोष

है ? देख दिलारा ! माना कि तू और अमीरुद्दीन दोनो ही मेरे परकीय हो; किंतु मरीना तो तेरी ही गर्भजात लड़की थी, जिसे तू नौ मास तक अपने पेट में रक्खे रही, उस बेचारी निर्दोषा मरीना को किसने ज़हर दिया, और किसकी सम्मति से और कैसे वह ज़हर दिया गया ? शहादतअली की संपत्ति पर मरीना का हक़ पहुँचता था, सो उस हक़ को गड़प करने के लिये कौन उस ज़हर को लाया था, और कैसे घुला-घुलाकर उस बेचारी के प्राण लिए गए ? अब दिलारा ! बोल कि ख़ूनी तू या मैं। शहादत-अलीख़ाँ की संपत्ति लूटने का प्रयत्न किसने किया ? दिल्ली-शहर में क़स्साब-ख़ाने के पास रहनेवाले रमज़ान के पास से तूने और अमीरुद्दीन ने मिलकर वह कराल विष प्राप्त किया। फिर तूने स्वयं ही अपने हाथों से वह विष बेचारी निर्दोषा मरीना के दूध में मिलाकर अपने ही हाथ से उसे वह विष-मिश्रित दूध पिलाया। धिक्कार है तेरे ऊपर पिशाचिनी दिलारा ! तेरे ऊपर हज़ार बार धिक्कार ! दिलारा ! ख़ूबसूरत स्त्री-वेश में तू शैतान है, शैतान !!"

मेरा क्रोध बढ़ता ही चला गया। मारे क्रोध के मेरा कंठ रुकने लगा, और आँखों में अश्रु भर आए। मारे क्रोध के मेरा मन विकल हो गया, और यह इच्छा होने लगी कि इस राक्षसी की गर्दन पर अपने दाँत जमाकर इसका ख़ून पी जाऊँ। मेरा यह क्रोध और अश्रुपात देखकर दिलारा का क्रोध न जाने कहाँ चला गया। मरीना की मृत्यु का पाप उसके ध्यान में आते ही उसका मन क्लेश से पीड़ित होने लगा; किंतु दिलारा फिर सँभलकर क्रोध-भरे शब्दों में बोली—"निरा झूठ ! साफ़ झूठ !. यह निरा लोकापवाद है। इस लोकापवाद पर विश्वास करके तू मुझे दंड दिया चाहता है ? दंड देने का तुझे क्या अधिकार ? क्या तू औरंगज़ेब है ?"

मैं बड़े तीव्र स्वर में बोला—"दिलारा ! मैं औरंगज़ेब नहीं हूँ; परंतु तुझे दंड देने का मैं अधिकार रखता हूँ। यदि मुझे यह अधिकार न होता तो मैं कभी तुझे पकड़ने का प्रयत्न न करता। दिलारा ! याद रख कि मैं

निरे लोकापवाद पर विश्वास रखकर तुझे सज़ा नहीं देना चाहता। मेरे पास तेरे दुष्कृतों के प्रमाण हैं। तू सभी कुछ स्वयं देखेगी। तूने ही मरीना को विष दिया था, यह बात अक्षरशः सत्य है। और जारिणी! तूने अपने पति की जीवितावस्था में ही अमीरुद्दीन से जारकर्म कराया था। अब बोल, विश्वासघात तूने किया या मैंने? जिस समय तेरा पति फ़क़ीरों की दरगाह में अपनी मृत्युशय्या पर पड़ा था, उस समय तू अपने विलास में मग्न थी और उस बेचारे की मृत्यु के दिन ही रात-समय तू अपने बाग़ में अमीरुद्दीन को गलबहियाँ डाल चाँदनी का मज़ा ले रही थी। अब बोल पिशाचिनी! पाप कर्म करनेवाली तू है कि मैं? अब बोल, तुझे दंड देने का मुझे कैसा अधिकार प्राप्त है। यह तुझे मैं सुनाऊँ क्या?"

दिलारा का शरीर काँपने लग गया, और उसके चेहरे पर मृत्यु की काली रेखाएँ स्पष्ट प्रतीत होने लगीं। वह भीति-विह्वल हो बोली—"तुम कौन हो? मुझे माफ़ करो। मैं निस्संदेह निरपराधिनी हूँ। मुझे तुम छोड़ दो। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

"तू अभी जानेगी कि तूने मेरा क्या बिगाड़ा है। तुझे छोड़ दूँ? कदापि नहीं। तू शहादतअलीखाँ की जिस मृत्यु के लिये उत्सुकता से बाट देख रही थी, उसी मृत्यु की बाट तुझे इस कोठरी में बंदी बनी रह कर देखनी पड़ेगी। तू समझती थी कि शहादतअलीख़ाँ का वैर भँजाने के लिये कौन खड़ा होनेवाला है; सच है न? किंतु दिलारा! ख़ुदा के घर का हिसाब ऐसा सरल और सच्चा होता है कि उससे बचने के लिये मनुष्य को कोई स्थान ही नहीं है। दिलारा! शहादतअलीख़ाँ मरा नहीं है; अब तक वह जीवित ही है। तुम दोनो नर-पिशाचों को तुम्हारा कर्म-फल देने ही के लिये ख़ुदावंद करीम ने उसके जीवन की डोरी दृढ़ बना रक्खी है।" इतना कहते हुए मैंने वह नक़ली डाढ़ी-मूछ और ऊपर के कपड़े उतार डाले, और बोला—"दिलारा! देख मेरी ओर देख और अच्छी तरह आँखें खोलकर देख।" दिलारा मेरी ओर देखने लगी, तब मैं फिर बोला—

"दिलारा! तूने पहचाना क्या मुझे? सुन, मैं नवाब पीरबख़्श नहीं हूँ, किंतु शहादतअलीख़ाँ हूँ। और सुन तेरे साथ केवल एक बार नहीं, वरन् दो बार ब्याहा हुआ तेरा पति हूँ। इसलिये मुझे तेरी शिक्षा करने का पूर्ण अधिकार है। अस्तु, मैं तुझे तेरे दुष्कर्मों का जो भी दंड दूँ, वह तुझे स्वीकार करना ही होगा।"

दिलारा भयभीता हो गई, और एक दम नीचे बैठकर दोनो हाथों से अपनी आँखे ढाँपकर अति आर्त्तस्वर में बोली—"ओ ख़ुदा! ख़ुदा!" फिर एक बार मेरी ओर देखकर बोली—"प्यारे शहादत! मुझे माफ़ करो। सचमुच ही मैं निरपराधिनी हूँ। तुम्हारी मृत्यु के उपरांत यदि मैंने किसी अन्य पुरुष के साथ निकाह पढ़ाने का प्रयत्न किया, तो तुम्हीं कहो इसमें मैंने क्या अपराध किया?"

मैंने क्रोध से कहा—'लेकिन चांडालिनी! जब मैं जीवित था, तभी तूने अमीरुद्दीन से कई बार घृणित जार-कर्म कराया है।"

"नहीं, मेरे नाथ! यह बात सरासर झूठी है।"

"दिलारा! देख, यह तेरे ही हाथ के लिखे हुए प्रेम-पत्र हैं। देख, यह अमीरुद्दीन के भेजे हुए पत्रोत्तर हैं। यह तो हैं स्वयं तुम दोनो के हस्त-लिखित प्रमाण? दिलारा! जिस दिन मेरी मृत्यु का समाचार तेरे पास पहुँचा, उसी दिन तूने अमीरुद्दीन के साथ निकाह पढ़ाने का प्रस्ताव किया था। दिलारा! जिसने तुझको अपनी प्राण-पत्नी बनाकर तेरे ऊपर विश्वास रख अपना जानोमाल तुझे समर्पण कर दिया। जिसे तू अपना पति समझती थी, उसके लिये तुझे एक दिन भी विधिवत् सूतक मनाना भारू पड़ गया; क्यों? क्यों दिलारा! यह पत्र झूठे हैं क्या? और स्वयं मेरी इन्हीं आँखों का देखा हुआ दृश्य क्या झूठा है?"

दिलारा कुछ भी न बोली। कुन-कर्म के पश्चात्ताप की रेखाएँ उसके चेहरे पर प्रत्यक्ष प्रकट हो आईं। यहाँ पर मैंने उसकी चुप्पी का सदुपयोग किया; और आदि से अंत तक मैंने अपनी सारी कथा उसे कह सुनाई। फिर अंत में बोला—' दिलारा! बोल, अब तू ही कह कि तेरे

कृत घोर पापाचार अक्षम्य हैं या नहीं ? तूने अपने पति का कलेजा चीर दिया है। फिर ख़ूब ही उस घाव पर नमक-मिर्च छिड़का है। तेरे अपराधों के लिये भारी-से-भारी सज़ा भी थोड़ी है। दिलारा ! ध्यान देकर सुन। मैं तुझे तलवार या किसी अन्य अस्त्र-शस्त्र से मारूँगा नहीं; और न तेरे शरीर पर हाथ लगाऊँगा। मैं तेरे पापी हृदय में छुरी भोंककर उस पवित्र हथियार को कदापि कलुषित न करूँगा, और न तेरे पापी शरीर को स्पर्श करके अपने हाथ अपवित्र बनाऊँगा। तेरे लिये मैंने यही दंड निश्चित किया है कि तेरी स्वतंत्रता छीन कर मैं तुझे तेरी आयु-भर इसी कोठे में बंद रक्खूँगा; किंतु हाँ, तेरे खाने-पीने, सोने-बैठने और तेरी आवश्यकतानुसार तुझे सभी चीज़ें देता रहूँगा। इस संसार में परतंत्रता के दुःख के बराबर अन्य कोई भी यातना नहीं है। किसी हिंदू ने ठीक ही कहा है—

'यदि संसार में दुःख कम हों, तो मुझे नर्क ही में भेजिये ;
किंतु हे दयामय ! मुझको न आप परतंत्रता दिखलाइए।'

और भी किसी ने कहा है—

'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।'

"एक समय मैंने तुझ पर पूर्ण विश्वास रखकर तुझे स्वतंत्रता दे रक्खी थी; किंतु दिलारा ! अब तू ही विचारकर देख कि तूने स्वतंत्रता का क्या ही दुरुपयोग किया, और मेरे साथ कैसा भारी विश्वासघात किया ! इसका तुझे पूरी-पूरी शिक्षा मिलना ही चाहिये। अस्तु, तेरी-जैसी रूपोन्माद से उन्मत्त बनी हुई स्त्री को समाज में न रहने देकर ऐसे तहख़ाने में ही क़ैद कर रखना अधिक श्रेयस्कर नहीं है क्या ? दिलारा ! बस अब यह अधिक वादविवाद की मैं कोई भी आवश्यकता नहीं समझता। तुझको जीवन पर्यंत यहीं क़ैद रहना पड़ेगा। अस्तु, सुख से यहीं खा-पी, और आनंद से नींद-भर सो। तू यह न समझ कि तू यहाँ अकेली है; वह मित्र-द्रोही, विश्वासघाती, नर-रूप में प्रत्यक्ष शैतान अमीरुद्दीन भी तेरे साथ ही इस तहख़ाने में क़ैद है। बस उसी के साथ आनंद में रह।"

इतना कहकर मैंने उस पटिया से संबंध रखनेवाली ऊपर की कल से जुड़ी हुई एक चर्ख़ी घुमाई, और तत्काल ही वह पटिया ऊपर उठ गई और अमीरुद्दीन तथा दिलारा को एक-दूसरे के दर्शन मिले।

अमीरुद्दीन को सामने ही दूसरे कोठे में देखकर दिलारा की अवस्था बड़ी ही चामत्कारिक हो गई। उसने पहले एक दृष्टि अमीरुद्दीन पर डाली, फिर शून्य दृष्टि से नीचे की ओर देखने लगी। मैंने क्रोध से कहा—"दिलारा! देख सामने अपने यार, अपने हृदय-रत्न, अपने उपपति अमीरुद्दीन को। अब पूछ इसी से कि मैंने जो दोष तुझ पर आरोपित किए हैं, वे कहाँ तक सत्य हैं। दिलारा! तूने शहादत को ख़राब ख़स्ता करने में कोई बात भी तो उठा नहीं रक्खी है। पिशाचिनी! बोल तो दिलारा! कि तूने और अमीरुद्दीन ने मेरे किस दुर्गुण के कारण मेरा सर्वनाश किया? ऐ ख़ुदा! तेरा हज़ार बार शुक्रिया है कि तूने उस काले बुख़ार को मेरे पास भेज मुझे जीवित बचा लिया। अन्यथा इन पिशाचद्वय ने मेरी भी एक दिन मरीना की-सी गति की होती। क्योंरी दिलारा! बोलती क्यों नहीं है? अबे तू भी क्यों नहीं बोलता नमकहराम! क्यों? थीं न तुम दोनो की यही गुटपुट कि शहादत के खाने में वही घोलना ज़हर मिला दिया जाय, और इस तरह इसे इस संसार से कूच कराकर हर प्रकार बेखटके हो मौज-मज़े उड़ाए जायँ? परंतु मेरे ख़ुदा ने मुझे काले बुख़ार का आश्रय दिया, और मेरी जीवन-डोरी को दृढ़ बनाकर मुझे इस योग्य बनाया कि मैं तुम दोनो ही को तुम्हारा समुचित कर्म-फल चखाऊँ। दिलारा और अमीरुद्दीन तुम दोनो कान खोलकर सुन लो कि तुम्हारे अपराध एक या दो नहीं हैं तुम्हारे अपराध अगणित हैं, और एक-एक अपराध ऐसा संगीन है, जिसके लिये मुझे कोई दण्ड ही सूझ नहीं पड़ता। यदि उन अपराधों में से प्रत्येक के लिये कदाचित् कोई दंड भी निकल आए, तो भी मैं तुम दोनो के प्रत्येक अपराध के लिये कहाँ तक दंड दिया करूँगा? फिर मैं वे सब दंड देकर अपने हाथ कलुषित नहीं किया चाहता। अस्तु, मैंने तुम्हारे लिये यही शिक्षा नियत की है कि तुम

दोनो इसी प्रकार एक दूसरे को देख-देखकर इन्हीं कोठों में अपना जीवन समाप्त कर डालो। विश्वास रक्खो, तुम्हें खाने-पीने पहनने-ओढ़ने को तुम्हारे इच्छानुसार ही मिलेगा, और कोई भी शारीरिक कष्ट न दिया जायगा। इस पर भी यदि तुम किसी मानसिक पीड़ा से व्यथित रहो, तो इस पीड़ा के उत्पन्न करनेवाले तुम्हीं होगे। इसमें मेरा कोई भी दोष नहीं है। बोल दिलारा! यह शिक्षा तुझे पसंद है या नहीं?"

दिलारा स्तब्ध थी। उसके कृत अपराध उसकी आँखों के सामने तांडव-नृत्य कर रहे थे। उसके चेहरे पर मृत्यु की काली रेखाएँ एक बार फिर स्पष्ट हो आईं। सौन्दर्य में हूरों का मुक़ाबला करने वाली दिलारा उस समय एक राक्षसी-जैसी भयंकर और कुरूपा प्रतीत हो रही थी। अगर ऐसी स्थिति में कोई निरपराधिनी, सदाचारिणी एवं पतिव्रता स्त्री होती, तो उसके मुख पर का तेज दूना प्रकाशित हो जाता। उसके सतीत्व का बल भयानक-से-भयानक दोषारोपक को जलाकर भस्म कर देता, किंतु दिलारा तो स्वप्न में भी न जानती थी कि सतीत्व धर्म क्या वस्तु होती है। अंत में वह मेरी ओर सकरुण दृष्टि से देखकर बोली—"क्या तुम्हारे अंतःकरण में दया का एक छींटा भी नहीं है?"

"मेरे अंतःकरण में दया भी है और निष्ठुरता भी है। अपने ज़फ़र, ग़फ़ूर, प्यारे बाघा और उस बुढ़िया दासी-जैसे नमकहलालों के लिये मैंने अपने अंतःकरण का दया-भाग रख छोड़ा है। तेरे एवं अमीरुद्दीन-जैसे नमकहरामों के लिये मैंने अपने अंतःकरण का सारा-का-सारा निष्ठुर-भाग रख छोड़ा है। दिलारा! इस संसार का यह दृढ़ नियम है कि जो जैसा बोवेगा, वैसा काटेगा। भला नीम बोनेवाला आम के मीठे फल कैसे पा सकता है? दिलारा! तू कह सकती है कि ऐसे सैकड़ों ही मनुष्य थे, जो अपने जीवन-भर पापाचार करते रहे, किंतु जीवन-भर हर प्रकार से प्रसन्न रहे; परंतु दिलारा! सुन, किसी के कर्मों का हिसाब इस दुनिया में हो-होकर उसका कर्म-फल उसे यहीं और इन्हीं आँखों के सामने मिल जाता है। किसी के कर्मों का हिसाब आक़बत में होकर

उसका कर्म-फल उसे वहाँ और उस पाक परवरदिगार के सामने दिया जाता है। विश्वास रख कि किए हुए कर्मों का फल कभी छूट नहीं सकता। मिलता अवश्य है; चाहे इस दुनिया में मिले, और चाहे आक़बत में। चाहे राजा हो या रंक, किए हुए प्रत्येक भले या बुरे कर्म का फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है। अल्लाह मियाँ के घर किसी का पक्षपात नहीं किया जाता। यदि उस पाक बेन्याज़ ने समुचित कर्म-फल की योजना न की होती, तो इस दुनिया का एक क्षण-भर भी चलना असंभव हो जाता। संसार का प्रत्येक व्यक्ति, समाज और क़ौम इसी कर्म-फल के नियम में बँधकर अपनी-अपनी उन्नति या अवनति प्राप्त कर रहे हैं। दिलारा! तेरे अपराधों का फल तुझे देनेवाला वही पाक परवर-दिगार है। मैं तो उसी की प्रेरणा के अनुसार तेरा कर्म-फल तुझे चखाने के लिये निमित्त-मात्र हूँ। यदि तू तनिक भी बुद्धि दौड़ाकर ध्यान करेगी, तो अवश्य ही समझ जायगी कि हाँ, वास्तव में यह सभी उस पाक परवरदिगार ही की योजना है।"

दिलारा ने कोई भी उत्तर देने की हिम्मत न की। उसके कृत कर्मों का उसे ऐसा अनुताप हो रहा था कि वह मेरी ओर या अमीरुद्दीन की ओर भी आँख उठाकर देख न सकती थी। मैंने दिलारा को इसी स्थिति में छोड़ा, और अब चार-छः क़दम बढ़कर अमीरुद्दीन के सम्मुख हो बोला—"अमीरुद्दीन! इस संसार में मित्र-धर्म परम श्रेष्ठ है, सो यही मित्र का मान मैंने तुझे अर्पण किया था। निष्कपट वृत्ति का मित्र-प्रेम इस दुनिया में श्रेष्ठतम आनंदप्रद है। इस दुनिया में अनेकानेक असाध्य कार्य भी प्रयत्नों से साध्य हो जाते हैं; परंतु सच्चा मित्र भाग्य से ही प्राप्त होता है। मा, बाप, भाई, भगिनी और पत्नी प्रसंग पड़ने पर मनुष्य का साथ छोड़ दे सकते हैं, परंतु जो सच्चा मित्र होता है, वह आजन्म अपने मित्र का साथ नहीं छोड़ता, इसीलिये मित्र-प्रेम को अन्य प्रेमों से बुद्धिमानों ने श्रेष्ठतर माना है। सच्चा मित्र अपने मित्र के दुःख से दुखी और अपने मित्र के सुख से सुखी होता है। अमीरुद्दीन, यही

अनुपम प्रेम मैंने तुझे अर्पण किया था। मैं ईश्वर की कृपा से धनवान् था, इसलिये जब-जब तुझे धन की आवश्यकता हुई, तब-तब मैंने तेरे बिना माँगे ही तुझे धन से असंख्य बार सहायता दी। ख़ैर, यह तो कोई भी बड़ी बात नहीं है, परंतु तुझे स्मरण है अमीरुद्दीन! मैंने कितनी बार तेरे प्राण बचाए, कितनी बार तेरे उपकार के लिये अपनी जान पर खेलकर तेरा काम किया? तुझे याद है कि जब एक बार हम दोनों जमुना में तैर रहे थे, उस समय तुझे डूबने से किसने बचाया था? एक बार जब हम दोनो उस टेकरी पर घूमने गए थे, घूमते-घूमते तू उस टेकरी की चोटी से खिसकता हुआ नीचे आ गिरा था, तब कौन तुझे अपनी पीठ पर लादकर घर ले आया था, और पाँच-पाँच छ-छ हकीम और जर्राहों को बुलाकर किसने तेरे प्राण बचाए थे? एक समय जब तू भयानक तिजारी से पीड़ित था, तब किसने तेरी सेवा-शुश्रूषा करके दवा-दारू कराके तेरे प्राण बचाए थे? अमीरुद्दीन! यह सब बखानकर मैं तेरे सामने अपने बड़प्पन को प्रकट नहीं करता, और न मैं तुझे अपने उपकारों से दबाना चाहता हूँ। यह तो सभी मेरा एक मित्र की नाईं कर्तव्य था, सो मैंने बजाया; किंतु यह तो तू बता कि तूने अपना कर्तव्य क्यों न बजाया? अच्छा, जाने दे, यह अपने कर्तव्य की बात भी थोड़ी देर के लिए एक किनारे रख दे; परंतु जो तूने मित्र-द्रोह किया, उसके लिए तेरे पास क्या उत्तर है? मैंने तेरा कुछ भी न बिगाड़ा था; किंतु फिर भी तूने मेरे अंतःकरण पर तीक्ष्ण दंश-प्रहार करके मुझे आजन्म वेदना क्यों दी? इसका तुझे प्रायश्चित करना चाहिए या नहीं? लंपट, नीच, नर-पिशाच! यही सब कुछ तूने दिलारा को ही प्राप्त करने के लिये किया न? ले, अब दिलारा आजन्म तेरे पास ही रहेगी। आजन्म तू भी उसके साथ यहीं रह। सलाम! अमीरुद्दीन! सलाम!! सलाम! दिलारा! सलाम!! अब तुम दोनों यहीं बंद रहकर आजन्म अनुभव करो कि पश्चात्ताप से जीव को कैसा असह्य कष्ट होता है। यदि तुम ...नों से हो सके, तो अपने जीवन के शेष दिन ख़ुदा की इबादत में

बिताओ। ऐसा करने से तुम्हें दुःख अधिक न व्यापेगा। लो सलाम ! सलाम !!"

इस प्रकार कहकर मैं उस तहख़ाने से निकल आया, और तहख़ाने का अंतिम फाटक भी ताले से बंद करता गया। फिर उस तहख़ाने के ऊपर पहुँचकर मैं एक ऐसी खिड़की में जाकर बैठ गया कि जहाँ से मैं तहख़ाने के दोनो कोठों का दृश्य पूर्णतया देख सकता था, किंतु तहख़ाने के क़ैदी ऊपर को दृष्टि करके मुझे न देख सकते थे। थोड़े समय तक तो दिलारा और अमीरुद्दीन विषण्ण, खिन्न और उद्विग्न बने बैठे रहे, यहाँ तक कि वे परस्पर एक-दूसरे की ओर आँख उठाकर देख भी न रहे थे। थोड़ी देर बाद दोनो ने एक-दूसरे पर दृष्टि डाली, और धीरे-धीरे दोनो ही के चेहरे मारे क्रोध के लाल होते गए, और आँखों से मानों ख़ून बरसने लगा। फिर दोनो ने एक-दूसरे की ओर दाँत किटकिटाए। जिस प्रकार दो पींजड़ों में बंद बाघ एक-दूसरे पर क्रोधित हो घुर्राते हैं, उस प्रकार गर्जती हुई दिलारा बोली—"राक्षस ! तूने ही मेरी यह दुर्दशा की।"

अमीरुद्दीन भी वैसे ही क्रोध से बोला—"राक्षसिनी ! तेरे ही कारण मेरी यह दुर्दशा हुई। चांडालिनी ! क्या करूँ ? क्रोध के मारे तो मेरा हृदय जल रहा है; पर कोई उपाय नहीं दीखता। तेरे पास तक पहुँचने का यदि मुझे मार्ग मिलता, तो तेरे ख़ून से हाथ रँगकर अपना क्रोध शांत करता।"

दिलारा चिढ़कर बोली—"यदि ऐसा मार्ग होता, तो पहले मैं ही उसका उपयोग करती। फिर तुझे मालूम पड़ता कि स्त्रियों के दाँत कैसे विषैले और तीक्ष्ण होते हैं। तू तो मेरे रक्त से हाथ धोकर ही अपना क्रोध शांत करनेवाला था; परंतु मैं तो तेरा रक्त पीकर ही शांत होती।"

दोनो ही एक-दूसरे पर इतने क्रोधित हो गए कि उनका कंठ रुँधने लगा; किंतु अंतःकरण में आग वैसी ही तेज़ी से प्रज्वलित हो रही थी। थोड़ी देर तक चुप रहकर दिलारा अपने आप ज़ोर से बड़बड़ाई—

"हाय! क्या इस नरक-तुल्य तहख़ाने में एक चूहे की मौत मरना पड़ेगा? निकल भागने का मार्ग कहीं दीखता नहीं है! शहादत! मुझे इस प्रकार चूहे की मौत मारने से तो कहीं यह हज़ार दर्जे अच्छा होता, जो तू मेरी गर्दन उड़वा देता। इस अनुपात का महा दुःख तो न भोगना पड़ता। ओहो! या मेरे खुदा! इस पश्चात्ताप की अग्नि मुझसे सही नहीं जाती है। पाप का परिणाम ऐसा भारी भयंकर होता है, इसकी तो कभी मुझे कल्पना ही नहीं हुई। उँह! ऐसी स्थिति में जीवित रहने से तो मर जाना ही हज़ार गुना श्रेष्ठ है; किंतु हाय! आत्महत्या कर लेने के लिये भी तो कोई उपाय नहीं है!! या मेरे अल्लाह! अब क्या करूँ? ऍ, हाँ ठीक याद आई; निकाह के वक्त मैंने एक छोटी छुरी अपनी कमरपेटी में खोंस ली थी, देखूँ वह है क्या? हाँ, है। छुरी! प्यारी छुरी! मैं स्त्री हूँ और तू भी स्त्री-जाति है। ले बहन! अब मैं तेरी ही शरण हूँ। सौंदर्य! कंबख़्त सौंदर्य! मैंने इतने दिनों तक तेरी उपासना की; तेरे सामने सभी को तुच्छ गिना। उसी का यह परिणाम आज मुझे मिल रहा है। कंबख़्त तेरे ही कारण मैं अब नरक-भागिनी हो रही हूँ।" फिर दिलारा अमीरुद्दीन की ओर देखकर क्रूर स्वर में बोली—"मुए शैतान! तूने ही मेरा सत्यानाश किया है। क्यों? काहे के लिये? दिलारा के सौंदर्य ही के लिये न? देख दुष्ट अमीरुद्दीन! अब देख दिलारा अपने सौंदर्य पर कैसा वैर भँजाती है; आँखें खोलकर देख।" इस प्रकार कहकर दिलारा ने वह छुरी चलाकर अपनी नाक काट डाली। फिर अपने दोनो गालों में भी गहरे-गहरे छ-सात घाव कर डाले। उस राक्षसी के धैर्य को तो देखिये! मित्रो कंबख़्त ने अपने कोमल शरीर को पीड़ा पहुँचाते हुए एक आह भी न की, और उलटी गर्जकर अमीरुद्दीन से बोली—"देख चांडाल! अब दिलारा के सौंदर्य को भर नज़र देख।"

यह दृश्य देखकर अमीरुद्दीन भी मारे अनुताप के पागल-सा बन गया। वह भी आत्म-हत्या पर तुल गया। अमीरुद्दीन के भाग्य से

उसकी कमरपेटी में भी एक छुरी उसे मिल गई। दिलारा को संबोधन करके वह नर-पिशाच बोला—"राक्षसिन, जिस प्रकार तूने अपने सौंदर्य पर वैर भँजाया, उसी प्रकार मैं भी अपनी आँखों पर वैर भँजाता हूँ। इन आँखों ही ने मुझे आज यह दुर्दशा दिखाई। दिलारा! तेरी-जैसी क्षुद्र वृत्ति और नीच-बुद्धि की स्त्री को सौंदर्य देना, मानो चंचल वानरी के हाथ में जलती हुई मसाल पकड़ा देना है। तेरा इस समय का ऐसा चेहरा यदि प्रारंभ से ही तेरे भाग्य में होता, तो ये आँखें कदापि तेरे जाल में न फँसतीं। हाय! हाय!! इन आँखों ही ने मुझे यह दिन दिखाया। अस्तु, पहले मैं इन आँखों को ही शरीर से दूर करता हूँ; फिर अपना विषैला अंतःकरण चीरकर इस दुनिया से अभी कूच किए देता हूँ। किंतु ठहर, अमीरुद्दीन! ज़रा ठहर। जिन आँखों ने तुझे ऐसा अधोगामी बनाया है, उन आँखों को अपने रक्त से लिखे हुए चार अक्षर तो दिखा दे।" इस प्रकार कहकर अमीरुद्दीन ने अपनी छुरी से बाएँ हाथ में घाव करके रक्त निकाला। फिर उसी रक्त में अपने दाहने हाथ की तर्जनी उँगली भिगोकर अपनी कोठरी के पिछवाड़ेवाली दीवार पर कर्म-फल शब्द लिखा। फिर उसी छुरी से उसने अपनी आँखें झट से फोड़ डालीं, और बोला—"दिलारा! अँधेरा, अँधेरा, निपट अँधेरा, चारो ओर अँधेरा। अहाहा! ख़ुदा ने अगर मुझे जन्म से ही अंधा बनाया होता, तो क्या ही मज़े की बात होती! अरे रे! किंतु यह स्मृति दूर नहीं होती। इस स्मृति के कारण अब भी मुझे दिलारा का रूप दीखता है। उस रूप के दीखने से मेरा हृदय जला जाता है। अरे! अब देर किस-लिये? छोड़ इस दुनिया को कंबख़्त अमीरुद्दीन!" इस प्रकार कहकर अमीरुद्दीन ने बड़े बल-पूर्वक वह छुरी अपनी छाती में भोंककर इस संसार का त्याग कर दिया।

दूसरे कोठे से दिलारा अमीरुद्दीन के इस कृत्य को बड़ी चामत्कारिक दृष्टि से देख रही थी। अमीरुद्दीन की मृत देह भूमि पर पड़ते ही वह सावधान हो गई। फिर अपने कपोलों से बहते हुए रक्त में अपनी

तर्जनी उगली को भिगोकर उसने भी अपने कोठे की दीवार पर कर्म-फल शब्द लिखा। फिर क्रोध से दाँत पीसती हुई बोली—"मुए शैतान! चल, आगे-आगे। अरे, मैं तुझे यों ही छोड़नेवाली नहीं हूँ। चल शैतान, मैं भी तेरे पीछे-ही-पीछे दोज़ख़ में आती हूँ; वहीं तुझसे पूरा-पूरा बदला लूँगी।" इस प्रकार कहकर उसने वह तीचण छुरी अपनी गर्दन पर फेर ली, और इस दुनिया से कूच कर गई।

मित्रो! अब आप लोगों की समझ में आ गया होगा कि आप लोगों के पास बैठा हुआ, अपनी आत्मकथा आप लोगों को सुनानेवाला शहादतअलीख़ाँ मृत किस प्रकार है, और जीवित किस प्रकार है। मैं शहादतअलीख़ाँ के नाम से जीवित रहकर अपना परिचय न देना चाहता था। इस कारण मैंने अपनी संपत्ति का एक बड़ा भाग ग़रीब-ग़ुरबों को बाँट दिया। अपना नया मकान मैंने ग़फ़ूर को दिया, और पुराना मकान ज़फ़र को दिया। उस बुड्ढी दासी को मैंने ग़फ़ूर और ज़फ़र के सुपुर्द कर दिया, और उन दोनो को हिदायत कर दी कि वे दोनो ही उस बुढ़िया पर अपनी निज माता के नाईं स्नेह करें, और उसकी आज्ञा-पालन करने में अपने को धन्य मानें। ग़फ़ूर और ज़फ़र को मैंने लाखों का सामान, करोड़ों रुपयों के अलंकार, लाखों रुपयों के चाँदी-सोने के बर्तन, घोड़े और गाड़ी आदि सभी सामान आधा-आधा बाँट दिया। फिर लाखों रुपए नक़द भी उन्हें दिए। अंत में मैंने अपने प्यारे कुत्ते बाघा से अंतिम भेंट की। मेरी जुदाई से उसके हृदय में ऐसा शोक समाया कि ज्यों ही मैं घर से बाहर निकलनेवाला था, त्यों ही वह एक बार ज़ोर से रोया, फिर ज़मीन पर गिरकर उसने अपने प्राण तज दिए। उस समय मेरी आँखों में आँसू भर आए। मरा हुआ लौटता थोड़े ही है, ऐसा सोच मैंने धीरज बाँधा। मैंने उसी समय दो लाख रुपए ज़फ़र और ग़फ़ूर को दिए, और उन्हें आज्ञा दी कि बड़े समारंभ से मेरे प्यारे कुत्ते की क़ब्र बँधाना, और उसकी क़ब्र के पास एक मस-जिद और एक छोटा तालाब बँधा देना। फिर फ़क़ीर बनकर जब मैंने

अपने नमकहलाल ज़फ़र, ग़फ़ूर और उस बुड्ढी दासी से अंतिम भेंट की, तब वे बेचारे नमकहलाल दास-दासी हिलक-हिलक रोने लगे, और मेरी भी आँखों से सर-सर आँसू बह रहे थे। इस प्रकार मैं उनसे बिदा हो, दिल्ली छोड़ सूरत आया, और वहाँ से जहाज़ में बैठ मक्के शरीफ़ की इस पाक भूमि पर पहुँचा।

मित्रो! आप लोगों के सामने बैठे हुए फ़क़ीर की ऐसी विचित्र आत्मकथा है।